एमएएचआई – 503

मास्टर ऑफ आर्ट्स (हिस्ट्री)

प्रथम सेमेस्टर

भारतीय राष्ट्रीय आन्दोलन: स्वतंत्रता के लिए संघर्ष

अध्ययन मण्डल

अध्यक्ष,

कुलपति,

उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय,हल्द्वानी

अध्ययन मण्डल के सदस्यों के नाम

1. प्रोफेसर गिरिजा प्रसाद पाण्डे, निदेशक समाज विज्ञान विद्याशाखा, उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय, हल्द्वानी
2. प्रोफेसर रामेश्वर प्रसाद बहुगुणा, इतिहास विभाग एवं संस्कृति विभाग, जामिया मिल्लिआ इस्लामिय विश्वविद्यालय , दिल्ली
3. प्रोफेसर शन्तन सिंह नेगी , इतिहास एवं पुरातत्व विभाग, एच.एन.बी. गढ़वाल केन्द्रीय विश्वविद्यालय,गढ़वाल
4. प्रोफेसर वी.डी.एस. नेगी , इतिहास विभाग, कुमाऊँ विश्वविद्यालय, एस.एस.जे. परिसर, अल्मोड़ा
5. डॉ. मदन मोहन जोशी, समन्वयक इतिहास विभाग, उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय, हल्द्वानी

पाठ्यक्रम समन्वयक

डॉ. मदन मोहन जोशी

इकाई लेखन- प्रोफेसर जी.एम. जैसवाल

इकाई एक-	पुनर्जागरण एवं धर्मसुधार
इकाई दो-	पुनर्जागरण एवं समाजसुधार
इकाई तीन-	प्रथम स्वतन्त्रता संग्राम 1857: भूमिका, प्रमुख नेता एवं कारण
इकाई चार-	प्रथम स्वतन्त्रता संग्राम 1857: विस्तार, परिणाम, महत्व एवं प्रकृति
इकाई पांच-	आर्थिक राष्ट्रवाद का उदय एवं संवृद्धि
इकाई छह -	कांग्रेस पूर्व संगठनों का उदय एवं संवृद्धि
इकाई सात -	भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस का प्रथम चरण
इकाई आठ -	बंगाल विभाजन तथा स्वदेशी आन्दोलन
इकाई नौ -	क्रान्तिकारी चरमपंथ
इकाई दस -	प्रथम विश्वयुद्ध, रूसी क्रान्ति तथा भारतीय राष्ट्रीय आन्दोलन
इकाई ग्यारह -	होमरूल लीग, खिलाफ़त आन्दोलन तथा असहयोग आन्दोलन
इकाई बारह -	क्रान्तिकारी आन्दोलन - संवृद्धि, विचारधारा एवं उपलब्धियां
इकाई तेरह -	स्वराज्य पार्टी एवं साइमन कमीशन
इकाई चौदह -	सविनय अवज्ञा आन्दोलन, नमक सत्याग्रह एवं गोलमेज़ सम्मेलन
इकाई पन्द्रह -	प्रत्यक्ष कार्यवाही दिवस, व्यक्तिगत सत्याग्रह एवं भारत छोड़ो आन्दोलन
1. इकाई सोलह-	वेवेल योजना तथा शिमला सम्मेलन

आई.एस.बी.एन.	:
कॉपीराइट	: उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय
प्रकाशन वर्ष	:
Published by	: उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय, हल्द्वानी, नैनीताल-263139
Printed at	:

सर्वाधिकार सुरक्षित। इस प्रकाशन का कोई भी अंश उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय की लिखित अनुमति लिए बिना मिमियोग्राफ अथवा किसी अन्य साधन से पुन: प्रस्तुत करने की अनुमति नहीं है।

इकाई.एक पुनर्जागरण एवं धर्म सुधार

1.1. प्रस्तावना
1.2 इकाई के उद्देश्य
1.3 19वीं शताब्दी में धर्म सुधार से पूर्व भारत की धार्मिक स्थिति
1.4 प्रमुख धर्मसुधार आन्दोलन
1.4.1 ब्रह्म समाज
1.4.2 प्रार्थना समाज
1.4.3 आर्य समाज
1.4.4. रामकृष्ण परमहंस, स्वामी विवेकानन्द और रामकृष्ण मिशन
1.4.5 थियोसोफ़िकल सोसायटी
स्व मूल्यांकन हेतु प्रश्न
1.5. अन्य धर्म सुधार आन्दोलन
1.5.1 वेद समाज
1.5.2 देव समाज
1.5.3 राधास्वामी सत्संग
1.5.4 स्वामी नारायण सम्प्रदाय
1.5.5 परमहंस मण्डली
1.5.6 नामधारी आन्दोलन
1.5.7 निरंकारी आन्दोलन
1.5.8 सिंह सभा
1.5.9 स्मारत सम्प्रदाय
1.5.10 रहनुमाई मजदेआसन सभा
1.5.11 फ़रैज़ी अथवा फ़रैदी आन्दोलन
1.5.12 वहाबी आन्दोलन
1.5.13 अलीगढ़ आन्दोलन
1.5.14 अहमदिया आन्दोलन
1.5.15 देवबन्द आन्दोलन
स्व मूल्यांकन हेतु प्रश्न
1.6. सारसंक्षेप
1.7. पारिभाषिक शब्दावली
1.8. सन्दर्भ ग्रंथ
1.9 स्व–मूल्यांकित प्रश्नों के उत्तर
1.10 अभ्यास प्रश्न

1.1. प्रस्तावना

18 वीं तथा 19 वीं शताब्दी में भारत के राजनीतिक पराभव का एक प्रमुख कारण भारतीय धार्मिक अवनति और धर्म के ठेकेदारों की विकृत मानसिकता का तत्कालीन समाज पर दूषित प्रभाव था। धर्म के नाम पर अंधविश्वास को बढ़ावा दिया जा रहा था। कर्मकाण्ड की जटिलता से भी धर्म के विशुद्ध रूप के दर्शन हो पाना दुष्कर हो गया था। धर्म के नाम पर पुरोहित और मौलवी भोली जनता का आर्थिक शोषण तो कर ही रहे थे। अनाचार और छल–कपट से भरी उनकी चालें धर्म को विकृत रूप प्रदान कर रही थीं और आध्यात्मिक उन्नति के लक्ष्य को प्राप्त करने की बात लोग भूलते जा रहे थे। भारतीय पुनर्जागरण में धर्म सुधार का अत्यधिक महत्व है। इस काल के धर्म सुधारकों ने धार्मिक विकृतियों का विरोध किया। धर्म सुधार आन्दोलनों ने तत्कालीन अनेक सामाजिक, शैक्षिक तथा राजनीतिक आन्दोलनों को भी प्रभावित किया।

भारतीय पुनर्जागरण काल में समाज सुधार को शिक्षा प्रसार के साथ सबसे अधिक महत्व दिया गया। इस काल में मानवतावादी विचारधारा का विकास हुआ, सामाजिक असमानता की विभीषिका को कम करने के प्रयास हुए तथा स्त्रियों की स्थिति सुधारने के लिए व्यापक स्तर पर कार्य किया गया। इस काल में पुरोहितों तथा मौलवियों के धार्मिक तथा सामाजिक प्रभुत्व में कमी आई। शिक्षा प्रसार तथा सामाजिक चेतना ने अंधविश्वासों के ऊपर विजय प्राप्त करने में तो सफलता नहीं पाई किन्तु शिक्षित समाज में अंधविश्वास में कमी का अनुभव अवश्य किया गया। इस काल की दो महत्वपूर्ण उपलब्धियां नारी–उत्थान तथा दलितोद्धार हैं। पुनर्जागरणकालीन समाज सुधार ने आर्थिक तथा राजनीतिक चेतना की पृष्ठभूमि तैयार की।

1857 के विद्रोह ने भारत में लगभग एक सदी से शक्तिशाली होते हुए और फैलते हुए ब्रिटिश साम्राज्य के अस्तित्व को खतरे में डाल दिया था। इस विद्रोह का न केवल भारतीय इतिहास में अपितु विश्व इतिहास में महत्वपूर्ण स्थान है। ब्रिटिश औपनिवेशिक शासन की शोषक एवं दमनकारी नीतियों के विरुद्ध यह भारतीयों का संगठित और व्यापक विद्रोह था। इस विद्रोह का महत्व यह है कि इसने अपमानित, प्रताड़ित और सोए हुए भारत में स्वाभिमान, साहस और नवजीवन का संचार किया।एक विदेशी सत्ता के विरुद्ध भारतीयों के इस प्रथम संगठित प्रयास को कुछ इतिहासकार भारत का प्रथम स्वतन्त्रता संग्राम मानते हैं।

इस प्रतिरोध में संगठन और सुनिश्चित योजना का सर्वथा अभाव था अतः इनका दमन करने में अंग्रेज़ों को सफलता मिली। विद्रोह की असफलता और उसके निर्मम दमन के बावजूद इसने ब्रिटिश सरकार को राजनीतिक और संवैधानिक सुधार करने के लिए बाध्य किया और इसके परिणामस्वरूप ही ईस्ट इण्डिया कम्पनी का अत्याचारी शासन समाप्त हुआ। सरकार को साम्राज्य विस्तार का परित्याग करना पड़ा। किन्तु उसने फूट डालकर शासन करने की नीति को अपना लिया। इस विद्रोह ने भारतीयों में राजनीतिक चेतना का प्रसार किया। इतिहासकारों ने इस विद्रोह को अलग–अलग दृष्टि से देखा। अंग्रेज़ इहिासकारों ने इसे सिपाही विद्रोह तो राष्ट्रवादी इतिहासकारों ने इसे प्रथम स्वतन्त्रता संग्राम की संज्ञा दी।

विश्व इतिहास में धर्मसुधार आन्दोलनों का अत्यधिक महत्व रहा है। हम सब जानते हैं कि छठी शताब्दी ईसा पूर्व, एवं 15वीं, 16 वीं शताब्दी तथा 19 वीं शताब्दी में हुए धर्मसुधार आन्दोलनों ने विश्व में व्याप्त धार्मिक विकृतियों तथा कुरीतियों के उन्मूलन के क्षेत्र में उल्लेखनीय योगदान दिया था। धर्म के नाम पर होने वाले अनाचारों के प्रति धर्म सुधारकों ने विद्रोह किया और धर्म के शुद्ध स्वरूप को प्रतिष्ठित किया। ज़ोरेस्टर, कन्फ्यूशियस, भगवान महावीर तथा भगवान बुद्ध ने प्राचीन काल में धर्मसुधार आन्दोलनों का नेतृत्व किया था। मध्यकाल में मार्टिन लूथर, कॉल्विन, ज़्विंगली, कबीर, गुरुनानक, चैतन्य आदि ने धर्म के विशुद्ध रूप को पुनर्प्रतिष्ठित करने का प्रयास किया था।

आपने 19वीं शताब्दी के भारत में हुए धर्मसुधार आन्दोलनों के विषय में अवश्य सुना होगा। राजा राममोहन राय, स्वामी दयानन्द सरस्वती, विवेकानन्द और श्रीमती एनीबीसेन्ट के नाम से हम सब परिचित हैं। इन सभी ने धार्मिक अनाचार के विरुद्ध आवाज़ उठाई और धर्म के विशुद्ध रूप को स्थापित करने का प्रयास किया। इन सभी धर्म सुधारकों ने पुरोहित वर्ग के धार्मिक प्रभुत्व के विरुद्ध अभियान छेड़ा तथा धर्म के मानवीय रूप को विकसित करने का प्रयास किया।

19 वीं शताब्दी में हुए धर्मसुधार आन्दोलनों का अध्ययन कर हम भारतीय पुनर्जागरण को भलीभांति समझने में सक्षम हो सकेंगे और भारत के आधुनिकीकरण की प्रक्रिया के एक महत्वपूर्ण चरण से अवगत हो सकेंगे।

1.2 इकाई के उद्देश्य

19 वीं शताब्दी में धर्मसुधार की लहर ने पूरे भारत को अभिसिंचित किया। विश्व में हुई भौतिक और वैचारिक प्रगति ने भारत को भी प्रभावित किया था। इस इकाई में 19 वीं शताब्दी के भारत में हुए धर्मसुधार आन्दोलनों की पृष्ठभूमि, उनकी प्रकृति एवं उनके महत्व पर प्रकाश डालने का प्रयास किया गया है और साथ ही साथ उनकी सीमाओं तथा दुर्बलताओं की समीक्षा भी की गई हैं। इससे विद्यार्थियों को इन आन्दोलनों के विषय में पर्याप्त जानकारी मिल सकेगी। इस इकाई को पढ़ने के बाद आपको ज्ञात होगाः

- भारत में धर्मसुधार कब, कैसे और क्यों प्रारम्भ हुए।
- धर्मसुधार आन्दोलन के प्रमुख स्तम्भों के तथा उनके कार्य।
- इन सुधारों की प्रकृति, सुधारों की व्याप्ति तथा उनकी सीमाएं।

1.3 वीं शताब्दी में धर्म सुधार से पूर्व भारत की धार्मिक स्थिति

18 वीं तथा 19 वीं शताब्दी में भारत के राजनीतिक पराभव का एक प्रमुख कारण भारतीय धार्मिक अवनति और धर्म के ठेकेदारों की विकृत मानसिकता का तत्कालीन समाज पर दूषित प्रभाव था। धर्म के नाम पर अंधविश्वास को बढ़ावा दिया जा रहा था। कर्मकाण्ड की जटिलता से भी धर्म के विशुद्ध रूप के दर्शन हो पाना दुष्कर हो गया था। धर्म के नाम पर पुरोहित और मौलवी भोली जनता का आर्थिक शोषण तो कर ही रहे थे, साथ ही उसे दिग्भ्रमित कर दलितों, निरीह कन्याओं और स्त्रियों का हर सम्भव शोषण भी कर रहे थे। धर्म के माध्यम से आध्यात्मिक उन्नति के लक्ष्य को प्राप्त करने की बात लोग भूलते जा रहे थे। भारत में यह सब कुछ तब घट रहा था जब पाश्चात्य जगत में वैचारिक क्रान्ति आ चुकी थी और हर बात को बुद्धि तथा विवेक की कसौटी पर परखा जा रहा था।

19 वीं शताब्दी में भारत की धार्मिक स्थिति अत्यन्त शोचनीय थी। नियतिवाद में घोर आस्था ने आस्तिकों को कर्मठता से दूर कर दिया था। अब रामभरोसे बैठे रहकर ईश्वरीय कृपा की प्रतीक्षा करते रहने के सिवा भक्तों को कोई काम नहीं रह गया था। सती प्रथा, नर बलि, तन्त्र–मन्त्र में, जादू, टौना, गण्डा, ताबीज, मन्नत आदि में आस्था ने धर्म के मूल स्वरूप को धूमिल कर दिया था। जनता में अंधविश्वास बढ़ता जा रहा था। पुरी में जगन्नाथ रथ से खुद को कुचलवाकर अपने प्राण देकर भक्त मुक्ति प्राप्ति की लालसा करते थे। चरक पूजा में भक्त खुद को अपार कष्ट देते थे। मोहर्रम के दिनों में अनेक मुसलमान आत्मपीड़न की सभी सीमाएं पार कर जाते थे। नैतिक और आध्यात्मिक उन्नति को प्राप्त करना अब धर्म का लक्ष्य नहीं रह गया था। धार्मिक दुरूहता ने भक्त और भगवान के बीच दूरियां बढ़ा दी थीं। धर्म अब खर्चीले अनुष्ठानों का आयोजन मात्र रह गया था।

धर्मानुयायी असंख्य समुदायों और सम्प्रदायों में बंट गए थे। धार्मिक सहिष्णुता और समन्वयवाद की चर्चा करना भी अपराध सा माना जाने लगा था। वेद, कुरान और गुरुग्रंथ साहब की मूल शिक्षाओं के प्रति अब बहुत कम लोगों का रुझान था। तीर्थस्थल और सूफ़ी सन्तों की मज़ारें प्रायः अनाचार के केन्द्र बन चुके थे। गण्डे, ताबीज़ के बदले में मोटी रकम हासिल करना मौलवियों का व्यवसाय बन गया था। तन्त्र, मन्त्र और काले जादू को भी अब धर्म में स्थान मिल चुका था। ओझाओं तथा कलन्दरों और फ़कीरों का भी सामाजिक प्रभुत्व स्थापित हो चुका था। अब समय आ चुका था कि धर्म के शाश्वत मूल्यों तथा उसके शुद्ध स्वरूप की पुनर्स्थापना हो।

1.4 प्रमुख धर्मसुधार आन्दोलन

1.4.1 ब्रह्म समाज

राजा राममोहन राय का जन्म 1774 में बंगाल में बर्दवान जिले के राधानगर ग्राम के एक सम्भ्रान्त धनाढ्य ब्राह्मण परिवार में हुआ था। अपनी प्रारम्भिक शिक्षा के काल में ही उन्हें विभिन्न धर्मों के विषय में जानकारी प्राप्त करना अच्छा लगता था। वैदिक धर्म और इस्लाम की मूल शिक्षाओं से उनका तभी परिचय हो चुका था। उनका मूर्तिपूजा और बहुदेववाद से विश्वास उठ चुका था और वो ईश्वर के निर्गुण निराकार रूप की उपासना करते थे। वर्षों तक वैदिक तथा बौद्ध दर्शन का अध्ययन कर उन्होंने एकेश्वरवाद के प्रचार का निश्चय किया। मुर्शिदाबाद रहते हुए उन्होंने वैदिक धर्म, इस्लाम तथा ईसाई धर्म की एकेश्वरवाद विषयक विचारधारा से प्रभावित होकर *तुहफ़ुतुल मुजाहिदीन* ग्रंथ की रचना की। इस ग्रंथ में मूर्तिपूजा का खण्डन किया गया था और अंधविश्वासों पर प्रहार किया गया था।

राजा राममोहन राय ने जॉन डिग्बी के सम्पर्क में आकर पाश्चात्य दर्शन साहित्य और धर्म का गहन अध्ययन किया। 1815 में उन्होंने आत्मीय सभा की स्थापना की। इस सभा का उद्देश्य हिन्दू शास्त्रों में एकेश्वरवाद के समर्थन का प्रचार–प्रसार करना था। 1820 में उन्होंने अपने ग्रंथ *दि पर्सेप्ट्स ऑफ़ जीसस, दि गाइड टु पीस एण्ड हैप्पीनेस* में चमत्कारों को नकारते हुए ईसा मसीह की मूलभूत शिक्षाओं पर प्रकाश डाला। एकेश्वरवाद के प्रचार हेतु उन्होंने अपने अनुयायी विलियम एडम के साथ कलकत्ते में यूनिटेरियन मिशन की स्थापना की। 1825 में उन्होंने वेदान्त कॉलेज की स्थापना की। इस विद्यालय में छात्रों को एकेश्वरवाद के शुद्ध और मौलिक स्वरूप की शिक्षा दी जाती थी। उपनिषदों के गहन अध्ययन से वह वे इस निष्कर्ष पर पहुंचे कि भारत में एकेश्वरवाद की जड़ें बहुत गहरी हैं।

राजा राममोहन राय ने 20 अगस्त, 1828 को ब्रह्म समाज की स्थापना की। राजा राममोहन राय ने अपने बंगला पत्र *सम्बाद कौमुदी* में इस नए समाज के सिद्धान्तों के विषय में विस्तार से चर्चा की। कट्टरपंथियों ने उनका घोर विरोध किया। ब्रह्म समाज के द्वार सभी के लिए खोल दिए गए। धर्म, सम्प्रदाय, वर्ण, लिंग और शिक्षा या आर्थिक स्थिति का कोई भी बन्धन आस्तिकों के लिए नहीं रखा गया। ईश्वर के निर्गुण–निराकार रूप की उपासना और आध्यात्मिक उन्नति के लक्ष्य को ही इसमें प्रधानता दी गई। इस समाज में भगवान और भक्त के बीच में किसी मध्यस्थ जैसे किसी पुजारी या किसी पुरोहित का कोई स्थान नहीं था। प्राणिमात्र के प्रति प्रेम और मानव सेवा को इसमें ईश्वर भक्ति का सर्वश्रेष्ठ रूप स्वीकार किया गया।

राजा राममोहन राय की 1833 में मृत्यु के बाद उनके अनुयायी देवेन्द्रनाथ टैगोर ने 1839 में तत्वबोधिनी सभा की स्थापना की। इसका मुख्य उद्देश्य उपनिषदों के ज्ञान का प्रसार करना भी था। देवेन्द्रनाथ टैगोर ने इस सभा में *ब्रह्म धर्म* का संकलन किया। इसमें ब्रह्मोपासना की विधि पर भी प्रकाश डाला गया। इसके सदस्यों में ईश्वरचन्द्र विद्यासागर, राजेन्द्रलाल मित्र, ताराचन्द्र चक्रवर्ती और प्यारेचन्द्र मित्र प्रमुख थे। देवेन्द्रनाथ टैगोर ने

एलेक्ज़ण्डर डफ़ प्रभृत ईसाई मिशनरियों द्वारा भारतीय संस्कृति और धर्मों पर किए गए प्रहारों का निर्भीकतापूर्वक सामना किया।

केशबचन्द्र सेन ने ब्रह्म समाज की लोकप्रियता में महत्वपूर्ण योगदान दिया। उन्होंने समाज के कार्यों में समाज सुधार कार्यक्रम को भी सम्मिलित किया गया। उनके द्वारा स्थापित संगत सभा का उद्देश्य आध्यात्मिक और सामाजिक समस्याओं का निराकरण करना था। संगत सभा में जाति के बन्धनों और यज्ञोपवीत धारण करने, जन्मोत्सव, नामकरण, अन्त्येष्टि जैसे संस्कारों के परित्याग पर बल दिया गया। उन्होंने मूर्तिपूजा का खण्डन किया। उनका अंग्रेज़ी भाषा में प्रकाशित पत्र *इण्डियन मिरर* ब्रह्म समाज का मुख्य पत्र बन गया। उनकी प्रेरणा से बम्बई में प्रार्थना समाज और मद्रास में वेद समाज की स्थापना हुई। केशब ने धर्म में समानता और स्वतन्त्रता को अत्यधिक महत्व दिया। केशबचन्द्र धीरे–धीरे रहस्यवाद की ओर उन्मुख होने लगे। 1878 में उन्होंने स्वयं अपने प्रयासों से बनाए गए 1872 के ब्रह्म विवाह अधिनियम का उल्लंघन करके अपनी अल्पवयस्क बेटी का विवाह कूच बिहार के अल्पवयस्क महाराज से कर दिया। इस विवाह में मूर्तिपूजा भी की गई। समाज का एक बड़ा वर्ग केशबचन्द्र से अलग हो गया। 1878 में ब्रह्म समाज 'आदि' और 'साधारण' ब्रह्म समाज में विभाजित हो गया। 'साधारण ब्रह्म समाज की स्थापना में आनन्दमोहन बोस और शिवनाथ शास्त्री की प्रमुख भूमिका रही।

ब्रह्म समाज ने मूलतः मानवधर्म को ही प्राथमिकता दी और परम्पराओं तथा मान्यताओं के स्थान पर बुद्धि और विवेक को महत्व दिया।

1.राजा राम मोहन राय पर एक टिप्पणी लिखिये–

1.4.2 प्रार्थना समाज

केशब चन्द्र सेन की प्रेरणा से और उनके 'साधारण ब्रह्म समाज' से प्रभावित होकर बम्बई में 1867 में आत्माराम पाण्डुरंग ने प्रार्थना समाज की स्थापना की। आर0 जी0 भण्डारकर और एम0 जी0 रानाडे ने इस समाज से जुड़कर इसको नई शक्ति प्रदान की। इस समाज में एकेश्वरवाद और समाज सुधार कार्यक्रम, दोनों को ही समान महत्व दिया गया। ईश्वर के निर्गुण–निराकार रूप की उपासना करना, मूर्तिपूजा का खण्डन करना और जाति व वर्ण पर आधारित सामाजिक असमानताओं को अस्वीकार करना, इसके अभियान में सम्मिलित था परन्तु यह समाज हिन्दू परम्पराओं से भी जुड़ा रहा और इसमें मूर्तिपूजकों का प्रवेश भी सर्वथा निषिद्ध नहीं था। प्रार्थना समाज में वेदों को ईश्वरीय रचना नहीं माना जाता था और न ही अवतारवाद में विश्वास रखा जाता था। रानाडे का विचार था कि समाज में विद्यमान अधिकांश कुरीतियां प्राचीन परम्पराओं के प्रतिकूल हैं। हिन्दू शास्त्रों और महाराष्ट्र के सन्तों की मराठी भाषा में रचित भक्ति रचनाओं का पाठ इस समाज के धार्मिक अनुष्ठानों में सम्मिलित था।

1.4.3 आर्य समाज

स्वामी दयानन्द सरस्वती

1875 में बम्बई में स्वामी दयानन्द सरस्वती द्वारा स्थापित आर्य समाज ने भारत में वैदिक मूल्यों और आदर्शों को पुनर्जीवित करने का प्रयास किया। उन्होंने कहा – 'वेदों की ओर लौटो'। मूर्तिपूजा, बहु–देववाद व कर्मकाण्ड और धर्म के नाम पर व्याप्त अंधविश्वास का आर्यसमाज ने विरोध किया और यज्ञों को उपयोगी माना। बचपन से ही मूर्तिपूजा में उनका विश्वास जाता रहा था। वेदों की प्रामाणिकता में दयानन्द का अगाध विश्वास था। ब्रह्म समाज के प्रमुख नेता केशबचन्द्र सेन के सुझाव पर उन्होंने अपने विचारों के व्यापक प्रसार–प्रचार के लिए हिन्दी को अपनाया। अपने ग्रंथ *सत्यार्थ प्रकाश* की रचना भी उन्होंने हिन्दी में ही की। 1875 में बम्बई में उन्होंने आर्यसमाज की

स्थापना की।

आर्य समाज ने केवल वेदों को ही ज्ञान का सच्चा और एकमात्र आधार माना। शास्त्रों और पुराणों को आर्य समाज ने कपोल कल्पनाओं से ग्रस्त माना। वैदिक साहित्य में भी ऋग्वेद संहिता को ही समाज ने सर्वाधिक महत्ता प्रदान की। शास्त्रों और पुराणों में प्रतिपादित बहुदेववाद और ईश्वर के साकार रूप की परिकल्पना को पूर्णरूपेण अस्वीकार किया गया और ईश्वर के निर्गुण–निराकार रूप में अपनी आस्था व्यक्त की गई। आर्य समाज का यज्ञों की महत्ता में अगाध विश्वास था परन्तु उत्तर वैदिक काल में विकसित अनेक कर्मकाण्डों को इसने पूरी तरह अस्वीकार कर दिया। उत्तर वैदिक काल में अनेक धार्मिक कुरीतियां समाज में प्रवेश कर गई थीं और धर्म का मूल स्वरूप विकृत हो गया था। आर्य समाज ने अंधविश्वासों के विरुद्ध अभियान छेड़ दिया। गुण और कर्म के स्थान पर वंश पर आधारित वर्ण–व्यवस्था को इसने वेद–विरुद्ध बताया तथा शूद्रों में शिक्षा–प्रसार का समर्थन किया।

आर्य समाज ने वैदिक धर्म पर प्रहार करने वालों के प्रति आक्रामक रूप धारण किया। वैदिक धर्म की रक्षा करते हुए उन्होंने मुस्लिम और ईसाई धर्म प्रचारकों की आक्रामकता का उनकी ही शैली में उत्तर दिया। आर्य समाज के शुद्धि आन्दोलन तथा गो रक्षा आन्दोलन विवादास्पद रहे। जिन हिन्दुओं ने अपना धर्म परिवर्तित कर लिया था, उनके लिए अपने धर्म में वापस लौटने के सभी मार्ग हिन्दू समाज ने अवरुद्ध कर दिए थे परन्तु दयानन्द सरस्वती ने अपने शुद्धि आन्दोलन के द्वारा ऐसे लोगों के लिए अपनी शुद्धि करा के फिर से हिन्दू बनने का रास्ता साफ़ कर दिया। आर्य समाज द्वारा अपनाई गई इस धार्मिक आक्रामकता का परिणाम साम्प्रदायिक कटुता में वृद्धि के रूप में दिखाई दिया। परन्तु आर्य समाज को इस बात का श्रेय दिया जा सकता है कि इसने हिन्दुओं में व्याप्त हीनभावना का उन्मूलन करने में उल्लेखनीय सफलता प्राप्त की। आर्य समाज द्वारा स्थापित विद्यालयों और पाठशालाओं में वैदिक मूल्यों के संरक्षण का समुचित प्रबन्ध किया गया और संस्कृत भाषा को विशेष महत्व दिया गया। अपने समकालीन धार्मिक–सामाजिक आन्दोलनों में आर्य समाज सबसे अधिक लोकप्रिय आन्दोलन था। पश्चिमोत्तर प्रदेश के पश्चिमी भाग और पंजाब में आर्य समाज के अनुयायियों की संख्या लाखों में पहुंच गई।

2. **आर्य समाज के विषय में चर्चा कीजिए–**

1.4.4. रामकृष्ण परमहंस, स्वामी विवेकानन्द और रामकृष्ण मिशन

कलकत्ते के दक्षिणेश्वर में स्थित काली माता के मन्दिर के पुजारी गदाधर चट्टोपाध्याय अर्थात् स्वामी रामकृष्ण परमहंस ने ईश्वर भक्ति के नए आयाम स्थापित किए। अल्पशिक्षित रामकृष्ण ने इस विषय में ज्ञान से अधिक महत्ता भावना को प्रदान की। उन्होंने ईश्वर तक पहुंचने के लिए अनेक परम्परागत विधियों का प्रयोग किया। सन्यासिनी भैरवी से उन्होंने साधना की तान्त्रिक विधि सीखी। इसके बाद उन्हें वैष्णव साधना पद्धति से भगवान कृष्ण के दर्शन की अनुभूति हुई। परमात्मा से आत्मा के साक्षात्कार हेतु उन्होंने सूफ़ी साधना पद्धति का अभ्यास किया। इसके पश्चात उन्होंने ईसाई साधना पद्धति का प्रयोग किया। अपने दिव्य अनुभवों से उन्होंने भक्तजनों को अवगत कराया। धीरे–धीरे उनकी ख्याति बढ़ने लगी। एक से एक प्रतिष्ठित विद्वान और प्रभावशाली लोग उनके दर्शन के लिए आने लगे। रामकृष्ण ने अपने सरल सम्भाषण के माध्यम से श्रोताओं को परम सत्य और आध्यात्मिक उन्नति की अनुभूति कराने में सफलता प्राप्त की। उन्होंने इस बात पर बल दिया कि मुक्ति की प्राप्ति का मार्ग प्राणिमात्र की सेवा से होकर गुज़रता है। परम लक्ष्य को प्राप्त करने के लिए उन्होंने सन्यास को महत्व नहीं दिया। एक गृहस्थ का धर्म निभाते हुए भी भक्त अपने धर्म का पालन कर सकता था। उन्होंने स्त्री को आध्यात्मिक उन्नति में बाधक नहीं माना अपितु उसे अखिल ब्रह्माण्ड की जननी की प्रतिनिधि के रूप में महत्ता दी।

रामकृष्ण ने अपनी पत्नी शारदामणि को अपनी पत्नी के रूप में नहीं अपितु माता काली के रूप में देखा। उन्होंने शारदामणि को आजीवन सम्मान और आदर दिया परन्तु उन्हें वो एक पति का प्यार कभी नहीं दे सके। रामकृष्ण परमहंस ने चारित्रिक विकास को बौद्धिक विकास की तुलना में अधिक महत्व दिया। रामकृष्ण अपने साधना विषयक प्रयोगों के बाद इस निष्कर्ष पर पहुंचे थे कि किसी भी धर्म का सत्य और निष्ठा से अनुपालन कर भक्त भगवान तक पहुंच सकता है। रामकृष्ण का विचार था कि ईश्वर एक ही है परन्तु विभिन्न भक्त उसे भिन्न–भिन्न रूप में देखते हैं।

नरेन्द्रनाथ दत्त नामक नवयुवक प्रारम्भ में ब्रह्म समाज की विचारधारा और पाश्चात्य दार्शनिकों जॉन स्टुअर्ट मिल, ह्यूम और हर्बर्ट स्पेन्सर के दर्शन से प्रभावित था परन्तु उसके मन–मस्तिष्क को शांति नहीं मिली थी। उसने 1881 में, दक्षिणेश्वर में, स्वामी रामकृष्ण से भेंट की। इस प्रथम भेंट के बाद ही दोनों एक–दूसरे के प्रशंसक बन गए। स्वामीजी ने नरेन्द्रनाथ को नारायण के रूप में देखा और उसे प्राणिमात्र के दुखों का निवारण करने का दायित्व सौंपना चाहा। नरेन्द्रनाथ को ज्ञात हो गया कि भक्ति की पराकाष्ठा परोपकार में और प्राणिमात्र की सेवा में है। नरेन्द्रनाथ ने संकल्प लिया कि वह विश्व के समक्ष इस परम सत्य का उद्घाटन करेगा। अपने गुरु की मृत्यु के बाद नरेन्द्रनाथ ने अपनी ही भांति शिक्षित नवयुवकों के साथ सन् 1887 में काशीपुर के निकट बारानगर में एक मठ की स्थापना की। अब नरेन्द्रनाथ का नाम विवेकानन्द हो गया और वो अब रामकृष्णमिशन के प्रमुख संचालक बन गए। उन्होंने अपने अनुयायियों के साथ देश–भ्रमण किया। प्राचीन काल के गौरवशाली भारत का ऐसा अधःपतन देखकर उन्हें अपार कष्ट हुआ। दरिद्रता, अज्ञान, निराशा, विघटन और कट्टरता ने भारतीयों की उन्नति के सभी द्वार बन्द कर दिए थे। दरिद्र भारतीयों की दशा सुधारने के लिए उन्हें धनधान्य से परिपूर्ण पाश्चात्य जगत की सहायता की आवश्यकता थी पर इस धन को वो भीख में नहीं लेना चाहते थे, इसके बदले में वो पश्चिम को भारतीय आध्यात्म से अवगत करा वहां के निवासियों की आध्यात्मिक उन्नति का मार्ग प्रशस्त करना चाहते थे।

विवेकानन्द ने शिकागो में आयोजित होने वाली विश्वधर्म सम्मेलन के बारे में सुना। इसमें सभी धर्मों के प्रतिनिधि सम्मिलित होने वाले थे। बिना आर्थिक संसाधन के और बिना किसी प्रतिष्ठित धार्मिक संस्था का विधिवत प्रतिनिधि हुए विवेकानन्द ने इस विश्व धर्म–सम्मेलन में भाग लिया। इस सम्मेलन में उनके पाँच भाषण हुए। अपने प्रारम्भिक भाषण में विवेकानन्द ने हिन्दू धर्म की महानता के विषय में बताया और यह कहा कि हिन्दू धर्म के शब्दकोश में 'असहिष्णुता' शब्द है ही नहीं। 19 सितम्बर, 1893 को हिन्दू धर्म पर दिए गए अपने भाषण में उन्होंने पाश्चात्य देशों की समृद्धि का आधार उनके द्वारा अन्य जातियों पर किए गए अत्याचार और लूट को बताया। उन्होंने यह दर्शाया कि हिन्दू धर्म में ऐसे साधनों से समृद्धि प्राप्त करने की अनुमति नहीं है। उन्होंने अन्य धर्मावलम्बियों की असहिष्णुता और उनके द्वारा किए गए संहार की भर्त्सना करते हुए यह दर्शाया कि हिन्दू धर्म का आधार करुणा और प्रेम है। शिकागो में दिए गए अपने भाषणों के बाद विवेकानन्द एक विश्वविख्यात सन्त और विद्वान के रूप में प्रतिष्ठित हो गए। विवेकानन्द ने अमेरिका लौटते हुए पेरिस और लन्दन में भी अपने भाषणों से श्रोताओं को अभिभूत कर दिया। पाश्चात्य देशों में वेदान्त के अध्ययन के लिए अनेक केन्द्रों की स्थापना की पृष्ठभूमि उन्हीं के भाषणों के कारण तैयार हुई।

भारत लौटने पर कन्याकुमारी से लेकर हिमालय तक विवेकानन्द का हार्दिक स्वागत किया गया। पर स्वामीजी को भारतीयों को उनकी दरिद्रता और अज्ञान से मुक्ति दिलानी थी। उन्होंने पश्चिम से समानता तथा स्वतन्त्रता की भावना और कार्य करने की ऊर्जा ग्रहण कर उसे भारतीयों के उत्थान हेतु प्रयुक्त किया परन्तु उन्होंने आत्मनिर्भरता को उन्नति और मुक्ति की आवश्यक शर्त माना। 1899 में बेलूर में उनका मठ स्थापित हुआ। उनके अंग्रेज़ी पत्र *प्रबुद्ध भारत* और बंगला पत्र *उद्बोधन* में उनके विचारों का नियमित रूप से प्रकाशन किया गया। रामकृष्ण परम हंस, ज्ञानयोग, राजयोग, कर्मयोग तथा भक्तियोग पर उनके ग्रंथों का भी प्रकाशन हुआ।

1899 में अमेरिका की अपनी दूसरी यात्रा के दौरान विवेकानन्द ने न्यूयॉर्क, लॉस एन्जेलिस तथा

सैनफ्रान्सिसको में वेदान्त केन्द्रों और कैलिफ़ोर्निया में शांति आश्रम की स्थापना की। स्वामीजी ईश्वर को सभी आत्माओं का समुच्चय मानते थे। वो मानते थे कि उनका भगवान दरिद्रों, पीड़ितों और निर्बलों का रक्षक और उद्धारक है, इसीलिए उन्होंने भगवान को दरिद्र नारायण कहा।

स्वामीजी पश्चिम की भौतिक उन्नति व वैज्ञानिक प्रगति के प्रशंसक थे किन्तु उसकी आध्यात्मिक अवनति से वो चिन्तित भी थे। भौतिक प्रगति और आध्यात्मिक उन्नति के बीच संतुलन स्थापित करने के विषय में भारत, पाश्चात्य देशों की सहायता कर सकता था। इसी प्रकार अपने भौतिक संसाधनों को उपलब्ध करा पाश्चात्य देश भारतीयों की निर्धनता को दूर करने में अपना योगदान दे सकते थे। स्वामीजी धर्म के नाम पर कटुता फैलाने वालों के विरोधी थे। उन्होंने इस्लाम की मुस्लिम विश्व बन्धुत्व की अवधारणा की भूरि–भूरि प्रशंसा की थी। स्वामीजी धार्मिक कर्मकाण्डों और ब्राह्मणों के धार्मिक व सामाजिक प्रभुत्व के विरुद्ध थे। हिन्दू धर्म के विकृत रूप को वो स्वीकार नहीं करते थे। विवेकानन्द ने मानवतावाद को सर्वाधिक महत्व दिया।

1.4.5 थियोसोफ़िकल सोसायटी

थियोसोफ़िकल सोसायटी की स्थापना अमेरिका में, 1875 में, मैडम ब्लैवेट्सकी तथा कर्नल ऑलकॉट द्वारा की गई। इसके तीन प्रमुख लक्ष्य थे –

1. विश्वबन्धुत्व की भावना का विकास करना।
2. प्राच्य धर्म, प्राच्य दर्शन और विज्ञान के अध्ययन को प्रोत्साहित करना।
3. प्रकृति के नियमों का ज्ञान प्राप्त करना तथा मनुष्य में निहित दैविक शक्ति का विकास करना।

थियोसोफ़िकल सोसायटी की विचारधारा वेदो, उपनिषदों तथा बौद्ध साहित्य से विशेष रूप से प्रभावित थी। वसुधैव कुटुम्बकम् तथा सर्वेश्वरवाद की अवधारणा इसने भारतीय दर्शन से ही ग्रहण की थी। थियोसोफ़िकल सोसायटी सभी धर्मों में एक ही परम सत्य के दर्शन करती थी और उनकी भिन्नता को एक ही भगवान को भिन्न–भिन्न रूपों में प्रस्तुत करने में देखती थी। थियोसोफ़िकल सोसायटी के मूलभूत सिद्धान्त कर्म और निर्वाण भारतीय दर्शन की देन थे। थियोसोफ़िकल सोसायटी ने हिन्दू धर्म की प्रचलित मान्यताओं को अंगीकार किया। विश्वबन्धुत्व की भावना को महत्ता देते हुए भी इसने वर्ण–व्यवस्था को स्वीकार किया और एकेश्वरवाद और निराकार ब्रह्म में अपनी आस्था रखते हुए भी इसने बहुदेववाद और मूर्तिपूजा का खण्डन नहीं किया।

1891 में जब मैडम ब्लैवेट्सकी की लन्दन में 8 मई, सन् 1891 में मृत्यु हुई तब तक इस सोसायटी के सदस्यों की संख्या लगभग 1 लाख तक पहुंच चुकी थी और इसके केन्द्र लन्दन, पेरिस, न्यूयॉर्क तथा मद्रास मे स्थापित हो चुके थे।

श्रीमती एनीबीसेन्ट ने 1893 में थियोसोफ़िकल सोसायटी के अड्यार (मद्रास) केन्द्र की कमान सम्भाली। उन्होंने भारत में इस सोसायटी की लोकप्रियता बढ़ाने में अभूतपूर्व योगदान दिया। अनेक प्रभावशाली भारतीय इसके सदस्य बने। प्राचीन हिन्दू धर्म, ब्रह्म विद्या और गुह्य विद्या का उन्होंने प्रचार–प्रसार करने हेतु भारत–भ्रमण कर अनेक स्थानों पर भाषण दिए। थियोसोफ़िकल सोसायटी ने हिन्दुओं को अपने धर्म और अपनी संस्कृति पर गर्व करने का संदेश दिया। श्रीमती एनीबीसेन्ट ने *भगवद् गीता* का अनुवाद किया और *रामायण* तथा *महाभारत* पर संक्षिप्त भाष्य लिखे। थियोसोफ़िकल सोसायटी ने पाश्चात्य देशों में वेद, उपनिषद, पुराण, *रामायण, महाभारत* का प्रचार किया। श्रीमती बीसेन्ट ने भारतीय दर्शन, नीतिशास्त्र, हिन्दू पूजा–अर्चन विधि, योगशास्त्र, अवतारवाद तथा बहुदेववाद की सार्थकता को स्वीकार किया। हिन्दुओं की सहिष्णुता की नीति को उन्होंने समस्त मानवजाति के लिए उपयोगी एवं कल्याणकारी बताया। इस पुनरुत्थानवादी आन्दोलन ने आर्य समाज की भांति भारतीयों को अपने गौरवशाली अतीत पर और अपनी समृद्ध धार्मिक व दार्शनिक धरोहर पर गर्व करना सिखाया।

स्व मूल्यांकन हेतु प्रश्न

निम्नलिखित विषयों पर संक्षिप्त टिप्पणी लिखिए:
1. (क) ब्रह्म समाज के ईश्वर विषयक विचार।
(ख) आर्य समाज का शुद्धि आन्दोलन।
2. नीचे लिखे प्रश्नों के उत्तर दीजिए।
(i) श्रीमती एनी बीसेन्ट किस धर्म सुधार आन्दोलन से सम्बद्ध थीं?
(ii) भगवान को दरिद्रनारायण किसने कहा था?

1.5 अन्य धर्म सुधार आन्दोलन

1.5.1. वेद समाज

ब्रह्म समाज के अग्रणी नेता केशबचन्द्र सेन की प्रेरणा से सन् 1864 में मद्रास में श्रीधरालु नायडू ने वेद समाज की स्थापना की। वेद समाज में धार्मिक कर्मकाण्डों यथा नामकरण संस्कार, यज्ञोपवीत संस्कार, अन्त्येष्टि संस्कार में समय तथा धन बरबाद किए जाने का विरोध किया। श्री धरालु नायडू के सहयोगी दोरायस्वामी आयंगार ने खुलेआम अपने यज्ञोपवीत का परित्याग किया। श्री नायडू तथा श्री आयंगार की मृत्यु के बाद इस आन्दोलन का प्रभाव मन्द पड़ गया।

1.5.2 देव समाज

प्रारम्भ में ब्रह्म समाजी और आर्य समाज के विरोधी शिवनरायण अग्निहोत्री शंकराचार्य के वेदांत दर्शन से परिचित हुए। उन्होंने 1877 में देव समाज की स्थापना की और वह स्वयं इसके गुरु के रूप में प्रतिष्ठित हुए। इस समाज में गुरु की उपासना की जाती थी।

1.5.3 राधास्वामी सत्संग

राधास्वामी सत्संग आन्दोलन के प्रवर्तक विश्वदयालजी महाराज थे। इसकी स्थापना 1861 में आगरा में हुईं इन्होंने भक्ति की महत्ता ज्ञान की तुलना में अधिक बताई और भक्तियोग पर बल दिया। राधास्वामी सम्प्रदाय में ईश्वर की सर्वोच्चता और सत्संग को महत्ता दी जाती है। इस विचारधारा में आध्यात्मिक उन्नति के लिए संसार त्याग अर्थात् वैराग्य की आवश्यकता को अस्वीकार किया गया है। ईश्वर भक्ति, प्रार्थना और आध्यत्मिक उन्नति के लिए सबसे आवश्यक सत्संग है जो कहीं भी और कभी भी किया जा सकता है।

1.5.4 स्वामी नारायण सम्प्रदाय

गुजरात में 19 वीं शताब्दी के प्रारम्भ में स्वामी सहजानन्द ने स्वामी नारायण सम्प्रदाय की स्थापना की। एकेश्वरवादी यह सम्प्रदाय विश्वास और व्यवहार दोनों में ही पवित्रता पर बल देता है और कर्मकाण्ड में विश्वास नहीं करता। मादक पदार्थों के सेवन के निषेध पर इसमें विशेष ज़ोर दिया जाता है।

1.5.5 परमहंस मण्डली

1849 में पश्चिमी भारत में दादोबा पाण्डुरंग और जाम्भेकर शास्त्री द्वारा परमहंस मण्डली की स्थापना हुई। दादोबा पाण्डुरंग ने अपने धर्मग्रंथ *धर्म विवेचन* में परमहंस मण्डली के सात सिद्धान्तों पर प्रकाश डाला। इसमें एकेश्वरवाद में आस्था व्यक्त की गई और धर्म में प्रेम तथा नैतिक आचरण को विशेष महत्व दिया गया। व्यक्ति स्वातन्त्र्य तथा वैचारिक स्वातन्त्र्य को इसमें महत्ता प्रदान की गई। इस बौद्धिक आन्दोलन में ज्ञान और विवेक को अपने कार्यों और विचारों का आधार बनाए जाने पर बल दिया गया। इस सम्प्रदाय ने ब्राह्मणों के धार्मिक, शैक्षिक तथा सामाजिक प्रभुत्व को चुनौती दी और सामाजिक समता की स्थापना की आवश्यकता पर बल दिया। रूढ़िवादी हिन्दुओं का खुलेआम विरोध करना परमहंस मण्डली ने आवश्यक नहीं समझा।

1.5.6 नामधारी आन्दोलन

पंजाब में 1857 में बाबा रामसिंह ने नामधारी आन्दोलन की स्थापना की। इस आन्दोलन में ईश्वर की आराधना हेतु उसका जाप करने और पवित्र एवं शुद्धाचरणपूर्ण जीवनपद्धति अपनाने पर बल दिया गया। इस विचारधारा में कर्मकाण्ड की कोई महत्ता नहीं थी और मूर्तिपूजा, वृक्षपूजा तथा दरगाहों पर मन्नत मांगने का भी इसमें निषेध था। बाबा रामसिंह और उनके शिष्य बालक सिंह पशुधन को अत्यधिक मूल्यवान मानते थे। अहिंसा, सत्य, अस्तेय को अपनी जीवन पद्धति का अंग बनाने और उसमें मद्यपान, पर–निन्दा तथा जालसाज़ी व छल के परित्याग को उन्होंने आध्यात्मिक उन्नति के लिए आवश्यक बताया।

1.5.7 निरंकारी आन्दोलन

19 वीं शताब्दी में बाबा दयालदास ने सिख धर्म की मूल शिक्षाओं पर आधारित इस आन्दोलन की स्थापना की। निरंकार अर्थात निराकार ब्रह्म का ध्यान करने पर इस आन्दोलन में विशेष बल दिया गया और कर्मकाण्ड की निरर्थकता पर प्रकाश डाला गया। इस आन्दोलन में धार्मिक तथा सामाजिक जीवन में व्याप्त अंधविश्वासों पर प्रहार किए गए। जीवन के सोलह संस्कारों पर अपव्यय का निषेध किया गया और इन संस्कारों को अधिक से अधिक सादगी से मनाने का उपदेश दिया गया। इस आन्दोलन में मांस भक्षण, मद्यपान, ठगी और धोखेबाज़ी को मनुष्य की अवनति और दुर्गति का कारण बताया गया। इस आन्दोलन ने अपने द्वार सभी सम्प्रदायों के लिए खोल दिए।

1.5.8 सिंह सभा

सिख धर्म को उसके मौलिक रूप में पुनर्प्रतिष्ठित करने तथा सिक्खों को सच्चे सिख धर्म से परिचित करने के उद्देश्य से ठाकुर सन्धावालिया और ज्ञानी ज्ञान सिंह ने 1873 में, अमृतसर में, सिंह सभा की स्थापना की। इसने दसम् ग्रंथ के संपादन के उद्देश्य से गुरुमत ग्रंथ प्रचारक सभा का गठन किया। सिख समुदाय में प्रचलित हिन्दू संस्कारों तथा कर्मकाण्डों का इसने विरोध किया। सिंह सभा ने सिख धर्म को हिन्दू धर्म से हटकर एक अलग और स्वतन्त्र पहचान दिलाने के लिए सफल प्रयास किए।

1.5.9 स्मारत सम्प्रदाय

दक्षिण भारत का स्मारत सम्प्रदाय हिन्दू पुनरुत्थान का पोषक था। शंकराचार्य के अनुयायियों ने 1895 में स्मारतों को सशक्त बनाने तथा उनकी रक्षार्थ कुम्बकोनम की अद्वैत सभा का गठन किया। उन्होंने शंकराचार्य द्वारा वेदान्त की व्याख्या को अंगीकार करते हुए हिन्दुओं के बहुदेववाद को स्वीकार किया। इस सभा ने स्मृतियों तथा धर्मशास्त्रों में प्रतिपादित नियमों के अनुपालन में अपनी आस्था व्यक्त की। इसके प्रमुख स्तम्भ प्रोफ़ेसर सुन्दररमन हिन्दू धर्म के रीति–रिवाजों को दैविक मानते थे और उनका यह विश्वास था कि इनका निष्ठापूर्वक पालन करने से हिन्दुओं को स्वास्थ्य लाभ होगा तथा उनकी शक्ति और समृद्धि में वृद्धि होगी। प्राचीन हिन्दू धर्म को उसके मूल रूप में पुनर्प्रतिष्ठित करना इस सम्प्रदाय का उद्देश्य था।

1.5.10 रहनुमाई मजदेआसन सभा

1851 में आंग्ल शिक्षा प्राप्त पारसियों ने रहनुमाई मजदेआसन सभा (धार्मिक सुधार संघ) की स्थापना की। इसका उद्देश्य पारसियों की सामाजिक स्थिति में सुधार लाना तथा पारसी धर्म को उसके शुद्ध रूप में पुनर्प्रतिष्ठित करना था। इस सभा के मुख्य स्तम्भ दादा भाई नौरोजी थे। ज़ोरेस्टर की शिक्षा, पारसी कर्मकाण्ड, रीति–रिवाज आदि की पुनर्स्थापना हेतु सुधारकों ने पारसी पुरोहितों और धर्म प्रचारकों का सहयोग प्राप्त करने का प्रयास किया।

पारसियों को अन्य धर्मों व सम्प्रदायों के प्रभाव से पूर्णतया मुक्त कर उन्हें पारसी धर्म की मूल की शिक्षाओं और उसकी संस्कृति से जोड़ना इस सभा का लक्ष्य था।

1.5.11 फ़रैज़ी अथवा फ़रैदी आन्दोलन

19 वीं शताब्दी के प्रथमार्ध में पूर्वी बंगाल में हाजी शरियतुल्लाह ने फ़रैज़ी अथवा फ़रैदी आन्दोलन की स्थापना की। इस आन्दोलन में इस्लाम के रूढ़िवादी मूल्यों की पुनर्स्थापना का प्रयास किया गया।

1.5.12 वहाबी आन्दोलन

अठारहवीं शताब्दी में शाह वली उल्लाह ने इस्लाम को उसके शुद्ध रूप में पुनर्प्रतिष्ठित करने के उद्देश्य से वहाबी आन्दोलन की नींव रखी थी। 19 वीं शताब्दी में सैयद अहमद बरेलवी और उनके अनुयायियों शाह मुहम्मद इस्माइल और मौलाना अब्दुल हई ने राजनीतिक रूप से पराजित तथा धार्मिक व सामाजिक दृष्टि से पतित मुस्लिम जाति के पुनरुत्थान के उद्देश्य से कट्टरपंथी वहाबी आन्दोलन का नेतृत्व किया था। पंजाब, बंगाल व बिहार में इनका प्रभाव था। इस आन्दोलन में धार्मिक पवित्रता और धार्मिक एकता पर बल दिया गया और मुसलमानों पर पाश्चात्य संस्कृति के बढ़ते हुए प्रभाव पर प्रहार किया गया। वहाबियों को उनके मुख्यालय सितना से सन् 1858 में खदेड़ दिया गया और् 1863 में सर नेवाइल चेम्बरलेन ने उनके केन्द्र मल्का पर अधिकार करके उनकी शक्ति को कुचल दिया।

1.5.13 अलीगढ़ आन्दोलन

व्यावहारिक बुद्धि के धनी सैयद अहमद खान एक प्रगतिशील मुसलमान थे। प्रगति में बाधक परम्पराओं और धर्म के नाम पर पतन की ओर ढकेलने वाली मानसिकता उन्हें स्वीकार्य नहीं थी। अपने पत्र *तहज़ीब–उल–अख़लाक* में प्रकाशित अपने लेखों में उन्होंने बुद्धि और विवेक की कसौटी पर परखे बिना किसी कार्य को अपना धर्म समझ कर करने की मनोवृत्ति की आलोचना की। सैयद अहमद खान के सहयोगी अल्ताफ़ हुसेन हाली ने अपने महाकाव्य *मुसद्दसे हाली* में हिन्दुस्तान में मुस्लिम जाति तथा इस्लाम के पुनरुत्थान हेतु सृजनात्मक सुझाव दिए थे। कट्टरपंथियों ने सैयद अहमद खान की नीतियों का घोर विरोध किया। अलीगढ़ आन्दोलन की धर्म सुधार आन्दोलन में भूमिका नगण्य है, वास्तव में इसका इसका योगदान सामाजिक और शैक्षिक क्षेत्र में अधिक है।

1.5.14 अहमदिया आन्दोलन

मुस्लिम धर्मविज्ञान तथा अरबी व फ़ारसी भाषा के विद्वान मिर्ज़ा गुलाम अहमद क़ादिनी अपनी वक्तृता और बौद्धिक दृष्टिकोण के लिए प्रसिद्ध थे। मिर्ज़ा गुलाम अहमद क़ादिनी भारत में प्रचलित इस्लाम की परम्पराओं तथा मान्यताओं को व्यावहारिकता का जामा पहनाना चाहते थे। ब्रह्म समाज के समान अहमदिया आन्दोलन में सभी धर्मों में मान्य विचारों को प्रमुख स्थान दिया गया था। मिर्ज़ा गुलाम अहमद की विचारधारा समन्वयवादी थी। धार्मिक सहिष्णुता के समर्थक अहमदियों अर्थात् क़ादियानियों को मुसलमानों से अलग कर दिया गया किन्तु उनकी विचारधारा मूलरूप से इस्लाम की मूल शिक्षाओं के अनुरूप ही रही। अहमदिया आन्दोलन ने भारत तथा अन्य देशों में अपना प्रभाव स्थापित करने में सफलता प्राप्त की।

1.5.15 देवबन्द आन्दोलन

मुहम्मद कासिम ननौतवी तथा रशीद अहमद गंगोही ने 1867 में देवबन्द में इस्लाम की शिक्षाओं पर आधारित पाठ्यक्रम का पोषण करने वाले तथा मुस्लिम धर्म व ज्ञान का प्रसार–प्रचार करने वाले इस्लामी मदरसे की स्थापना

की। देवबन्द आन्दोलन का योगदान मुख्यतः भारतीय राष्ट्रीय आन्दोलन तथा शिक्षा प्रसार तक सीमित रहा किन्तु इसमें धार्मिक शिक्षा के प्रसार–प्रचार को पर्याप्त महत्व दिया गया।

स्व मूल्यांकन हेतु प्रश्न

निम्नलिखित विषयों पर संक्षिप्त टिप्पणी लिखिए:

1. (क) अलीगढ़ आन्दोलन का सुधारवादी धार्मिक दृष्टिकोण।
(ख) परमहंस मण्डली के धार्मिक विचार।
2. नीचे लिखे प्रश्नों के उत्तर दीजिए।
(i) प्रोफ़ेसर सुन्दररमन किस धार्मिक आन्दोलन से सम्बद्ध थे?
(ii) देवबन्द में इस्लामी मदरसे की स्थापना किसने की थी?

1.6. सार संक्षेप

19 वीं शताब्दी के भारतीयों के लिए सामान्यतः धर्म से परे जीवन का कोई अर्थ ही नहीं था। धर्म सुधार आन्दोलनों का समकालीन सामाजिक तथा शैक्षिक आन्दोलनों से गहरा सम्बन्ध है अतः सामाजिक व शैक्षिक आन्दोलनों के विषय में पर्याप्त जानकारी प्राप्त करने के लिए भी धर्म सुधार आन्दोलनों का अध्ययन हमारे लिए आवश्यक है। धर्म सुधार आन्दोलनों ने तत्कालीन अनेक राजनीतिक आन्दोलनों को भी प्रभावित किया।

19 वीं शताब्दी के धर्मसुधार आन्दोलनों ने भारत में धर्मांधता तथा अंधविश्वास के उन्मूलन के लिए अनथक प्रयास किए। ब्रह्म समाज, प्रार्थना समाज, आर्य समाज, देवसमाज, नामधारी आन्दोलन, निरंकारी आन्दोलन आदि ने एकेश्वरवाद पर बल दिया। अलीगढ़ आन्दोलन, फरैज़ी आन्दोलन, वहाबी आन्दोलन तथा अहमदिया आन्दोलन ने इस्लाम के मूल स्वरूप को प्रतिष्ठित करने का प्रयास किया तो रहनुमाई मजदेआसन सभा ने पारसी धर्म में व्याप्त कुरीतियों को दूर करने का प्रयास किया। इन सभी धर्म सुधार आन्दोलनों का उद्देश्य धर्म में मानवीय मूल्यों का समावेश करना था। इस काल के धर्म सुधारकों ने धार्मिक विकृतियों का विरोध किया। समाज में धर्म के नाम पर हो रहे अनाचार को उन्होंने धर्म विरुद्ध बताया।

1.7 पारिभाषिक शब्दावली

पुनर्जागरण: गौरवशाली अतीत को पुनर्जीवित करने का प्रयास।
कूपमण्डूकता: संसार में हो रही गतिविधियों के प्रति अनभिज्ञता।
यूनिटेरियन: एकेश्वरवादी
नियंता: संचालक
मध्यस्थ: बिचौलिया
देशाटन: देश का भ्रमण
पुनरुत्थान: प्राचीन मूल्यों तथा विचारों की पुनर्स्थापना
तांत्रिक विधि: तन्त्र, मन्त्र द्वारा चमत्कारी शक्ति प्राप्त करने की प्रणाली
कामिनी–कंचन: स्त्री तथा सम्पत्ति
सर्वेश्वरवाद: ईश्वर की सर्वत्र व्याप्ति में आस्था रखने वाला मत
निर्वाण: मोक्ष
ज़ोरेस्टर: पारसी धर्म के प्रवर्तक
ज़ेण्ड अवेस्ता: पारसियों का धर्म ग्रंथ

1.8. सन्दर्भ ग्रंथ

दत्त, के0 के0: *सोशल हिस्ट्री ऑफ मॉडर्न इण्डिया*, नई दिल्ली, 1975
बोस, एन0 एस0: *इण्डियन अवेकेनिंग एण्ड बेंगाल*, कलकत्ता, 1975
मजूमदार, आर0 सी0 (सम्पादक)–*ब्रिटिश पैरामाउंट्सी एण्ड इण्डियन रिनेसा*, दो भागों मे, बॉम्बे, 1965
कुमार, रविन्दर: *एसेज़ इन दि सोशल हिस्ट्री ऑफ़ मॉडर्न इण्डिया*, दिल्ली, 1983

विल्सन, एच0 एच0 – *एन एकाउन्ट ऑफ रिलीजस सेक्ट्स ऑफ दि हिन्दूज़*
कलकत्ता, 1899

1.9 स्व मूल्यांकित प्रश्नों के उत्तर

1. (क) देखिए 1.4.1 ब्रह्म समाज।
(ख) देखिए 1.4.3 आर्य समाज।
2. (i) थियोसोफ़िकल सोसायटी।
(ii) स्वामी विवेकानन्द?
1. (क) देखिए 1.5.13 अलीगढ़ आन्दोलन
(ख) देखिए 1.5.5 परमहंस मण्डली
2. (i) स्मारत सम्प्रदाय।
(ii) मुहम्मद कासिम ननौतवी तथा रशीद अहमद गंगोही ने।

1.10 निबंधात्मक प्रश्न

1. आर्य समाज के प्रमुख सिद्धान्तों पर प्रकाश डालिए।
2. स्वामी विवेकानन्द ने भौतिकतावादी पाश्चात्य जगत को क्या सन्देश दिया था?
3. उन्नीसवीं शताब्दी के उत्तरार्ध में सिख समुदाय में हुए धार्मिक सुधारों पर प्रकाश डालिए।
4. रहनुमाई मजदेआसन सभा द्वारा पारसियों में धार्मिक सुधारों के प्रयासों का वर्णन कीजिए।
5. वहाबी आन्दोलन के नेताओं के धार्मिक दृष्टिकोण की समीक्षा कीजिए।

2.1. प्रस्तावना

2.2. इकाई के उद्देश्य

2.3 19वीं शताब्दी में समाज सुधार से पूर्व भारत की सामाजिक स्थिति

2.4 समाज सुधार में विभिन्न समाज सुधारकों तथा विचारकों की भूमिका

2.4.1 राजा राममोहन राय तथा ब्रह्म समाज

2.4.2 डेरोज़ियो तथा युवा बंगाल आन्दोलन

2.4.3 ईश्वर चन्द्र विद्यासागर

2.4.4 गोपाल हरि देशमुख (लोकहितवादी)

2.4.5 दादा भाई नौरोजी

2.4.6 एम0 जी0 रानाडे

2.4.7 दयानन्द सरस्वती और आर्य समाज

2.4.8 वीरेशलिंगम पंतलु

2.4.9 जोतिबा फुले तथा सत्य शोधक समाज

2.4.10 सैयद अहमद खान और अलीगढ़ आन्दोलन

2.4.11 बंकिमचन्द्र चटर्जी

2.4.12 भारतेन्दु हरिश्चन्द्र

2.4.13 अल्ताफ़ हुसेन हाली

2.4.14 नर्मद

2.4.15 गुरुजाड

2.4.16 बी0 एम0 माल्बरी

2.4.17 विवेकानन्द

2.4.18 पण्डिता रमा बाई

2.4.19 नवाब भोपाल सुल्तानजहां बेगम

2.4.20 श्रीमती एनीबीसेन्ट

2.4.21 ढोंढो केशव कर्वे

2.4.22 अन्य सुधारक

2.5 समाज सुधार में सरकार की भूमिका
2.6 समाज सुधार में ईसाई मिशनरियों की भूमिका
2.7 समाज सुधार की सीमाएं तथा उसका सीमित क्षेत्र
2.8 सार संक्षेप
2.9 पारिभाषिक शब्दावली
2.10 सन्दर्भ ग्रंथ
2.11 स्व मूल्यांकित प्रश्नों के उत्तर

2.12 अभ्यास प्रश्न

2.1 प्रस्तावना

पिछली इकाई में हमने पुनर्जागरणकाल में धर्मसुधार आन्दोलन की चर्चा की थी। इस काल में प्रत्येक मान्यता, परम्परा और विश्वास को बुद्धि और विवेक की कसौटी पर परखने की प्रवृत्ति का विकास हुआ। मानवतावादी दृष्टिकोण और व्यक्ति स्वातन्त्र्य को इस काल में अत्यन्त महत्व दिया गया। आप सभी राजा राममोहन राय की प्रगतिशील विचारधारा से अवगत हो चुके हैं। धर्मसुधार की भांति वे समाज सुधार कार्यक्रम में भी अग्रणी रहे। सती प्रथा के उन्मूलन में राजा राममोहन राय, विधवा विवाह को मान्यता दिलाने में तथा स्त्री शिक्षा प्रसार में ईश्वर चन्द्र विद्यासागर, मुस्लिम समाज में प्रगतिशील विचारधारा को समाहित करने में सर सैयद अहमद खान और मुस्लिम स्त्री शिक्षा प्रसार में नवाब भोपाल सुल्तान जहां बेगम, दलित समाज के उत्थान में जोतिबा फुले और स्त्री शिक्षा प्रसार तथा विधवाओं के पुनर्वास में केशव ढोढों कर्वे की महत्वपूर्ण भूमिका रही।

वास्तव में पुनर्जागरणकाल में हुए समाज सुधारों ने शैक्षिक, राजनीतिक एवं आर्थिक जागरण की पृष्ठभूमि भी तैयार की थी। समाज सुधारकों ने पत्रों के माध्यम से अपने प्रगतिशील विचारों का आम जनता में प्रसार–प्रचार किया था और शिक्षा प्रसार के लिए स्वयं सराहनीय प्रयास किए थे। इस इकाई को पढ़कर आप 19 वीं शताब्दी में तथा 20 वीं शताब्दी के प्रारम्भ में हुए समाज सुधार आन्दोलनों के विषय में जानकारी प्राप्त कर भारतीय नवजागरण के हर पहलू को समझने में सक्षम होंगे।

2.2. इकाई के उद्देश्य

इस इकाई में सामाजिक आन्दोलनों के विकास से पूर्व पाश्चात्य जगत में जागृति के फलस्वरूप सामाजिक चेतना का अध्ययन किया जाएगा और भारतीय बुद्धिजीवियों पर इसके प्रभाव का परीक्षण किया जाएगा। समाज सुधार के प्रति उनके दृष्टिकोण, इस हेतु उनकी रणनीतियों, उनकी कठिनाइयों, उनके द्वारा शिक्षा प्रसार तथा समाज सुधार एवं शिक्षा प्रसार में सरकार, ईसाई मिशनरियों, विचारकों, साहित्यकार व पत्रकारों के योगदान की चर्चा की जाएगी। इस इकाई को पढ़ने के बाद आपको ज्ञात होगाः

- समाज सुधार से पूर्व भारतीय समाज की दशा और दिशा के विषय में।
- समाज सुधार हेतु विभिन्न भारतीय समाज सुधारकों के प्रयासों के विषय में।
- शिक्षा प्रसार तथा समाज सुधार के अन्तः सम्बन्ध के विषय में।

• समाज सुधार हेतु सरकार द्वारा उठाए गए कदमों के विषय में।

2.3. 19वीं शताब्दी में समाज सुधार से पूर्व भारत की सामाजिक स्थिति

जिस समय पाश्चात्य जगत में क्रांतिकारी सामाजिक, आर्थिक, सांस्कृतिक तथा शैक्षिक विकास हो रहा था और पाश्चात्य देश पिछड़े देशों पर अपना आधिपत्य स्थापित करते जा रहे थे, उस समय सामाजिक ठहराव ने भारतीय समाज को खोखला कर दिया था। शताब्दियों से भारत में शिक्षा पद्धति, विज्ञान, तकनीक, यातायात के साधन, कृषि–पद्धति, साहित्य, अर्थ व्यवस्था, अस्त्र, शस्त्र और रणनीति आदि में कोई उल्लेखनीय विकास नहीं हुआ था। भारत में ब्रिटिश शासन स्थापित हो जाने के बाद ही भारतीयों ने अपनी धार्मिक, सामाजिक, आर्थिक तथा शैक्षिक दशा सुधारने का प्रयास किया। इसके लिए पाश्चात्य उदार विचारकों, उदार ब्रिटिश अधिकारियों तथा ईसाई मिशनरियों ने भी उन्हें प्रेरित किया। पाश्चात्य शिक्षा के प्रसार से भारत में नवजागरण सम्भव हो सका।

उन्नीसवीं शताब्दी में जटिल वर्ण–व्यवस्था, अस्पृश्यता, विधवा विवाह निषेध, बाल विवाह तथा बहु विवाह के प्रचलन के कारण हिन्दू समाज की ऊर्जा क्षीण हो चुकी थी। शिक्षा पद्धति में भी कोई बदलाव नहीं आया था। स्त्रियों में शिक्षा प्रसार अब एक अपवाद बन चुका था क्योंकि बहुत से लोग इसको धर्म विरुद्ध मानते थे। सती प्रथा को समाज में अत्यधिक सम्मान प्राप्त था। चोरी–छिपे बालिका वध भी होता था उच्च कुलीन ब्राह्मण समाज में प्रचलित कुलीन प्रथा, बहु विवाह, दहेज प्रथा, अनमेल विवाह तथा बहुत सी लड़कियों के आजीवन अविवाहित रह जाने के लिए ज़िम्मेदार थी। समाज में कन्या विक्रय का भी प्रचलन था। शादियों में वेश्याओं के तथा मन्दिरों में देवदासियों के नृत्यों का प्रचलन था। धनाढ्य वर्ग और अधिकांश साहित्यकार विलासिता में लिप्त थे। हिन्दू स्त्री के आर्थिक अधिकार नगण्य थे। हिन्दू समाज में वर्ण व्यवस्था की जटिलता ने शूद्रों की धार्मिक–सामाजिक,शैक्षिक व आर्थिक स्थिति अत्यन्त दयनीय बना दी थी।

19 वीं के मुस्लिम समाज में भी कुरीतियों तथा अंधविश्वास का आधिपत्य था। स्त्रियों में पर्दे की प्रथा ने उनके बौद्धिक विकास पर पूर्ण विराम लगा दिया था। मर्दों में बहु विवाह आम था। आभिजात्य वर्ग की स्त्रियों को छोड़कर अन्य स्त्रियां आर्थिक दृष्टि से मर्दों पर ही निर्भर थीं।

2.4 समाज सुधार में विभिन्न समाज सुधारकों तथा विचारकों की भूमिका

2.4.1 राजा राममोहन राय तथा ब्रह्म समाज

आधुनिक भारत के निर्माता, महान समाज सुधारक व शिक्षा शास्त्री राजा राममोहन राय स्त्री शिक्षा के प्रबल समर्थक थे। उन्होंने 1822 में स्त्रियों के सम्पत्ति के उत्तराधिकार के समर्थन में एक पुस्तिका का प्रकाशन किया। उन्होंने दर्शाया कि लैंगिक असमानता की नीति स्मृति ग्रंथों में अनुमोदित नहीं है। उन्होंने बहु विवाह तथा कुलीन प्रथा का विरोध किया। सती प्रथा को राममोहन राय एक नृशंस हत्या मानते थे जिसमें मुख्य रूप से विधवा हुई स्त्री के निकट सम्बन्धियों, लालची पुरोहितों आदि का का हाथ होता था। ईस्ट इण्डिया कम्पनी की यह घोषित नीति थी कि वह भारतीयों के धार्मिक मामलों में हस्तक्षेप नहीं करेगी। राममोहन राय की मानवीयता, बौद्धिकता तथा प्रगतिशीलता उन्हें ऐसी अमानुषिक प्रथा के विरुद्ध अभियान छेड़ने के लिए प्रोत्साहित कर रही थी और दूसरी ओर कलकत्ता के कट्टरपंथी हिन्दू सरकार को याचिकाएं भेज रहे थे कि वो सती प्रथा को रोकने की चेष्टा न करे क्योंकि यह एक धर्म द्वारा अनुमोदित सनातन प्रथा है। राममोहन राय तथा उनके अनुयायियों ने इसका विरोध करते हुए अगस्त, 1818 में सरकार को इस आशय की याचिका भेजी कि वह तुरन्त इस अमानुषिक प्रथा पर पाबन्दी लगाए। बंगला में अपनी पत्रिका *सम्बाद कौमुदी* तथा अपने अंग्रेज़ी लेखों में उन्होंने सिद्ध किया कि शास्त्रों में सती प्रथा को संस्तुत नहीं किया गया है। कट्टरपंथी राजा राधाकान्त देव तथा उनके समर्थकों ने उनके प्रयासों का घोर विरोध किया।

बेंथम के उपयोगितावाद के अनुयायी लॉर्ड विलियम बैंटिंग का 1828 में बंगाल का गवर्नर जनरल बन कर आना राममोहन राय के लिए शुभ रहा। उसने 1829 में रेग्युलेशन 17 द्वारा सती प्रथा को गैर कानूनी घोषित कर

दिया तथा सती की घटना के लिए ज़िम्मेदार लोगों पर हत्या का मुकदमा चलाने की व्यवस्था की गई। राजा राममोहन राय द्वारा स्थापित ब्रह्म समाज में सामाजिक व धार्मिक समानता पर विशेष बल दिया गया। राममोहन राय अंग्रेज़ी शिक्षा के माध्यम से भारतीयों को धर्म–निर्पेक्ष, आधुनिक प्रगतिशील एवं व्यावहारिक शिक्षा दिलाए जाने के पक्षधर थे।

देवेन्द्रनाथ टैगोर की तत्वबोधिनी सभा ने राममोहन राय के समाज सुधार कार्यक्रम को आगे बढ़ाया। अक्षय कुमार दत्त की *तत्व बोधिनी पत्रिका* ने सामाजिक परिष्कार के लिए अनुकूल वातावरण बनाने में महत्वपूर्ण कार्य किया। ब्रह्म समाज की अगली पीढ़ी के नेता केशबचन्द्र सेन ने जाति–भेद व सामाजिक कुरीतियों के विरुद्ध अपना अभियान चलाया। स्त्री शिक्षा के प्रसार के भी प्रयास किए गए। अपने अंग्रेज़ी पत्र *इण्डियन मिरर* में केशब ने नारी मुक्ति, स्त्री शिक्षा तथा अन्तर्जातीय विवाह का समर्थन किया। सन् 1872 में उनके प्रयासों से नेटिव मैरिज एकट पारित हुआ जिसके अन्तर्गत वयस्कों के मध्य हुए अन्तर्जातीय विवाह को मान्यता दी गई।

2.4.2 डेरोज़ियो तथा युवा बंगाल आन्दोलन

दार्शनिक सुकरात तथा बेकन की शिक्षण पद्धति और ह्यूम की तार्किक प्रणाली से प्रभावित, यूरोपियन पुर्जागरण की बौद्धिकता के पोषक, नव बंगाल आन्दोलन के सूत्रधार, हिन्दू कॉलेज के युवा अध्यापक हेनरी लुई विलियम डेरोज़ियो ने अपने विद्यार्थियों को बंगाल में नवजागरण का प्रसार करने के लिए तैयार किया। उसने परम्पराओं और धार्मिक–सामाजिक संस्कारों को अपनाने से पहले उनको बुद्धि और विवेक की कसौटी पर परखे जाने पर ज़ोर दिया। उसके अनुयायी कृष्णमोहन बैनर्जी ने समाज सुधार हेतु अंग्रेज़ी साप्ताहिक *इन्क्वायरर* का प्रकाशन किया। 1831 में अल्पायु में डेरोज़ियो की मृत्यु हो गई परन्तु उसके अनुयायियों ने उसके द्वारा दिखाए हुए मार्ग पर चल कर बंगाल में नवजागरण को सशक्त बनाने में महत्वपूर्ण योगदान दिया।

2.4..3 ईश्वर चन्द्र विद्यासागर

स्त्री जाति के परम हितैषी ईश्वरचन्द्र विद्यासागर के लिए भारतीय संस्कृति और सभ्यता का सम्मान करना राष्ट्र–धर्म से कम नहीं था। एक शिक्षा शास्त्री के रूप में विद्यासागर ने भारतीय संस्कृति के श्रेष्ठ तत्वों के समन्वय के साथ पाश्चात्य शिक्षा को अपनाने पर ज़ोर दिया। जाति अथवा लिंग के आधार पर मनुष्य के बौद्धिक विकास करने के मौलिक अधिकार का हनन विद्यासागर का मानवतावादी हृदय कदापि स्वीकार नहीं करता था। स्त्री–शिक्षा के प्रसार के लिए विद्यासागर ने अपना जीवन अर्पित कर दिया। उन्होंने इंसपैक्टर ऑफ़ स्कूल के पद पर काम करते हुए 35 कन्या पाठशालाओं की स्थापना कराई। विद्यासागर ने विधवाओं की स्थिति सुधारने का सर्वश्रेष्ठ उपाय, उनका पुनर्विवाह माना। विधवा विवाह को मान्यता दिलाए जाने के लिए विद्यासागर ने शास्त्रों तथा नीति ग्रंथों का हवाला देकर विधवा विवाह को शास्त्र–सम्मत और नीति–सम्मत प्रमाणित किया। उनके प्रयासों से 1856 में विधवा विवाह को कानूनी मान्यता दी गई। कुलीन प्रथा के अन्तर्गत उच्च कुलीन ब्राह्मणों में विवाह के नियम बहुत कठोर कर दिए गए थे। इस समुदाय में बहु–विवाह, बाल–विवाह, बेमेल–विवाह और दहेज प्रथा को कुलीन प्रथा ने बढावा दिया और इससे बाल–विधवाओं की संख्या भी बढ़ी। विद्यासागर ने कुलीन प्रथा को भी कानून के द्वारा समाप्त कराना चाहा पर 1857 के विद्रोह के बाद सरकार की सामाजिक सुधार कार्यक्रम में रुचि नहीं रह गई थी। भारतीय संस्कृति के प्रति उनके अनुराग तथा भारतीयों के स्वाभिमान के पोषक होने के कारण उन्होंने पश्चिम की अंधी नकल को बढ़ावा नहीं दिया।

1. **ईश्वर चन्द्र विद्यासागर के सामाजिक सुधारों को लिखिये–**

2.4.4 गोपाल हरि देशमुख (लोकहितवादी)

महाराष्ट्र में ब्राह्मणों के धार्मिक व सामाजिक प्रभुत्व के विरुद्ध अभियान छेड़ने का श्रेय लोकहितवादी को दिया जाता है। मराठी साप्ताहिक पत्र *प्रभाकर* में उन्होंने *शतपत्रे* का प्रकाशन किया जिसमें उन्होंने वर्ण–व्यवस्था के औचित्य पर प्रश्न उठाए। वो स्त्री शिक्षा के प्रबल समर्थक थे। मराठी पत्रों *इन्दु प्रकाश* तथा *ज्ञान प्रकाश* से वो सम्बद्ध थे तथा *लोकहितवादी* पत्र के माध्यम से उन्होंने अपने सामाजिक व राजनीतिक विचार पाठकों तक पहुंचाए।

2.4.5 दादा भाई नौरोजी

दादाभाई नौरोजी की अध्यक्षता में *स्टूडेन्ट्स लिटरेरी एण्ड साइण्टिफ़िक सोसायटी* की स्थापना हुई। वो स्त्री शिक्षा के समर्थक थे। उन्होंने अपने गुजराती पाक्षिक पत्र *रस्त गुफ़्तर* (सत्यवादी) में पारसी समाज में व्याप्त कुरीतियों को ज़ोरेस्टर की मूल शिक्षाओं के विरुद्ध बताया। दादाभाई नौरोजी अंग्रेज़ों की रंगभेदी तथा जातिभेदी नीतियों के विरोधी थे। उन्होंने पारसी समाज में सुधार लाने के उद्देश्य से रहनुमाई मजदेआसन सभा की स्थापना की जिसने कि स्त्रियों के कानूनी अधिकारों के लिए भी संघर्ष किया।

2.4.6 एम0 जी0 रानाडे

आत्माराम पाण्डुरंग द्वारा स्थापित प्रार्थना समाज के मुख्य स्तम्भ एम0 जी0 रानाडे थे। उन्होंने आर0 जी0 भण्डारकर के साथ मिल कर प्रार्थना समाज के माध्यम से समाज सुधार कार्यक्रम को आगे बढ़ाया। वर्ण–व्यवस्था में निहित सामाजिक असमानता को दूर करना, विधवाओं के केश मुण्डन की प्रथा का उन्मूलन करना, विधवा विवाह को सामाजिक स्वीकृति दिलाना, स्त्री शिक्षा का प्रसार–प्रचार करना, बाल विवाह, दहेज प्रथा, देवदासी प्रथा, बालिका वध तथा पर्दा प्रथा का उन्मूलन करना तथा विदेश यात्रा पर लगे प्रतिबन्ध को हटाना उनका लक्ष्य था। रानाडे का विचार था कि राजनीतिक विकास के लिए सामाजिक विकास एक आवश्यक शर्त है। उन्होंने 1887 में इण्डियन नेशनल सोशल कॉन्फ्रेन्स की स्थापना की।

2.4.7 दयानन्द सरस्वती और आर्य समाज

आर्य समाज ने स्त्रियों के सामाजिक व शैक्षिक अधिकारों पर लगे प्रतिबन्धों को हटाने का प्रयास किया। दयानन्द सरस्वती ने बाल विवाह का विरोध तथा बाल विधवाओं के पुनर्विवाह का समर्थन किया और विवाह में कन्या की सहमति को महत्व दिया। उन्होंने पुरुषों तथा स्त्रियों, दोनों के लिए बहु विवाह का निषेध किया। उन्होंने समुद्र यात्रा, अन्तर्जातीय खान–पान और अन्तर्जातीय विवाह पर लगाए गए सामाजिक प्रतिबन्धों को अनुचित बताया। दयानन्द सरस्वती भारतीय संस्कृति और धर्म के पुनरुत्थान के लिए प्रयत्नशील थे किन्तु उन्हें यूरोपियनों की जीवन पद्धति की अच्छाइयां अपनाने में कोई संकोच नहीं था। उनके विचार से यूरोप में हुई उन्नति के मुख्य कारण थे – बाल विवाह की प्रथा का न होना, स्त्री और पुरुष को शिक्षा का समान अधिकार, कर्मठता, स्वदेशी की भावना तथा देशभक्ति। आर्य समाज ने पाखण्डी पुरोहितों के धार्मिक–सामाजिक प्रभुत्व के विरुद्ध अभियान छेड़ा और कर्मकाण्ड के नाम पर अपना धन व समय बरबाद करने की सामाजिक प्रवृत्ति की भर्त्सना की तथा शूद्रों पर लगे सामाजिक तथा शैक्षिक प्रतिबन्धों का विरोध किया।

अपने ग्रंथ *सत्यार्थ प्रकाश* में दयानन्द ने सामाजिक परिष्कार हेतु अंधविश्वास के उन्मूलन पर विशेष बल दिया। भौतिकतावाद की पोषक अंग्रेज़ी शिक्षा पद्धति के विरोधी स्वामी दयानन्द ने भारतीयों के लिए ऐसी पाठशालाओं तथा ऐसे विद्यालयों की स्थापना की आवश्यकता बताई जहां विद्यार्थियों को वैदिक मूल्यों के निर्वाहन की प्रेरणा मिले और वो अपने नैतिक उत्थान के साथ अपनी भौतिक प्रगति करते हुए अपने देश और अपनी संस्कृति के प्रति अनुराग रखें।

उनके अनुयायी स्वामी श्रद्धानन्द ने इसी उद्देश्य से गुरुकुल कांगड़ी में विद्यालय स्थापित किया। उनके प्रगतिशील अनुयायियों ने दयानन्द एंग्लो वैदिक विद्यालयों की स्थापना की जहां कि वैदिक संस्कृति के शिक्षण के साथ–साथ विद्यार्थियों को अंग्रेज़ी तथा अन्य धर्म–निर्पेक्ष व्यावहारिक विषयों की शिक्षा भी दी जाती थी। लाहौर, कानपुर, देहरादून आदि में स्थापित इन विद्यालयों में विद्यार्थियों को देशप्रेम तथा स्वदेशी का पाठ भी पढ़ाया जाता था। आर्य समाज ने अनेक आर्य कन्या पाठशालाओं और विद्यालयों की स्थापना की। आर्य समाज ने संस्कृत, देशव्यापी लिपि देवनागरी तथा राष्ट्रभाषा हिन्दी को लोकप्रिय बनाने में महत्वपूर्ण योगदान दिया।

2. **आर्य समाज के विषय में आप क्या जानते हैं–**

2.4.8 वीरेशलिंगम पंतलु

आधुनिक तेलगु साहित्य के जनक वीरेशलिंगम पंतलु ब्रह्म समाज के सदस्य थे और उन्होंने अपनी लेखनी का प्रयोग समाज सुधार के लिए अनुकूल वातावरण बनाने के लिए किया था। नारी–उत्थान के लिए वो सतत प्रयत्नशील रहे। 1902 में उन्होंने केशव ढोंढो कर्वे के साथ मिल कर *मद्रास हिन्दू सोशल रिफ़ॉर्म एसोशियेशन* के तत्वाधान में एक विडोज़ होम की स्थापना की थी। उनके पत्र *विवेकवर्धिनी* में उनकी प्रगतिशील विचारधारा प्रतिबिम्बित होती है।

2.4.9 जोतिबा फुले तथा सत्य शोधक समाज

जोतिबा फुले ने दलितों के उत्थान के लिए 'सत्य–शोधक समाज' की स्थापना की जिसने ब्राह्मणों के सामाजिक व धार्मिक प्रभुत्व को चुनौती दी और दलितों में आत्मविश्वास का विकास किया। उन्होंने विधवाश्रम खोले तथा विधवा विवाह का समर्थन किया। उन्होंने समाज की ठुकराई हुई पतिताओं के पुनर्वास के लिए विशेष प्रयास किए। उन्होंने पूना में कन्या–पाठशाला की स्थापना की । जोतिबा फुले ने दलितों के आर्थिक उत्थान के लिए उन्हें तकनीकी प्रशिक्षण देने का प्रबन्ध कराया। श्रमजीवी स्त्री–पुरुषों के लिए उन्होंने रात्रि–पाठशालाओं की स्थापना की। उनकी पुस्तकें *गुलामगीरी* तथा *सार्वजनिक सत्य धर्म पुस्तक* दलित चेतना विषयक मार्गदर्शक पुस्तकें हैं। जोतिबा फुले की विचारधारा तथा उनके कार्यों से महात्मा गांधी तथा डॉक्टर अम्बेडकर दोनों ही बहुत अधिक प्रभावित हुए थे।

2.4.10 सैयद अहमद खान और अलीगढ़ आन्दोलन

उत्तर भारत में सैयद अहमद खान ने मुस्लिम नवजागरण के क्षेत्र में उल्लेखनीय कार्य किया। उन्होंने कुरान शरीफ़ की व्याख्या बुद्धिवाद और विज्ञान की रौशनी में की और आंख मूंद कर परम्पराओं के पालन तथा कट्टरतावाद का विरोध किया। उन्होंने मुसलमानों को बताया कि उनका धार्मिक और सामाजिक जीवन आधुनिक पाश्चात्य ज्ञान–विज्ञान व तकनीक को अपनाकर ही सुधर सकता है। 1875 में अलीगढ़ में उन्होंने आधुनिक उच्च शिक्षा के केन्द्र के रूप में मोहम्मडन एंग्लो ओरिएन्टल कॉलेज की स्थापना की। उन्होंने अपने कॉलेज में साइंटिफ़िक तथा लिटरेरी सोसायटी व अनुवाद विभाग की स्थापना की। उन्होंने अपने सहयोगियों अल्ताफ़ हुसेन हाली, नज़ीर अहमद, चिराग अली, शिबली नूमानी, मुहसिन–उल–मुल्क आदि के साथ मुस्लिम नवजागरण को नई दिशा दी। उन्होंने हिन्दुओं और मुसलमानों को एक दुल्हन की दो आंखें कहा जिनमें आपसी तालमेल ज़रूरी था। मुस्लिम समाज में व्याप्त कुरीतियों के विरुद्ध उन्होंने अभियान छेड़ा। वो स्त्री–शिक्षा के समर्थक थे किन्तु उन्हें सामाजिक तथा शैक्षिक जीवन में पुरुषों के समकक्ष लाने पक्षधर नहीं थे। सैयद अहमद खान के सहयोगी नज़ीर अहमद के उपन्यास *मिरातुल उरूस* में पर्दे की कैद में रहते हुए भी स्त्रियों की शिक्षा तथा नारी–उत्थान को सम्भव बताया गया है।

2.4.11 बंकिमचन्द्र चटर्जी

बंकिमचन्द्र चटर्जी भारतीय नवजागरणकालीन साहित्यकारों में अग्रणी स्थान रखते हैं। उनका उपन्यास *आनन्द मठ* और उसका गीत *वन्दे मातरम्* भारतीय पुनरुत्थान तथा राष्ट्रीय चेतना के लिए प्रेरणा स्रोत बन गया। बंकिम नारी जाति के परम हितैषी थे। उनकी रचनाओं में नारी पात्रों के चित्रण में आदर्श और यथार्थ का अद्‌भुत समन्वय मिलता है पर उनके नारी पात्र एक आदर्श भारतीय नारी का प्रतिनिधित्व करते हैं। उनके नारी पात्र भौतिकतावादी पश्चिमी मेम की छवि से भिन्न हैं पर उनमें पाश्चात्य नारी का साहस, चातुर्य, स्वाभिमान और आत्मनिर्भरता अवश्य है। बंकिम का विचार था कि परिवर्तनशील संसार में सामाजिक नियम और नैतिक मूल्य सदा एक से नहीं रह सकते, समय के साथ संशोधन और परिवर्तन की आवश्यकता है। बंकिम बाबू नवजागरणकाल के प्रतिनिधि विचारक और सुधारक हैं ।

2.4.12 भारतेन्दु हरिश्चन्द्र

भारतेन्दु ने उन्नीसवीं शताब्दी के उत्तरार्ध में साहित्य तथा पत्रकारिता को राजनीतिक, सामाजिक, सांस्कृतिक, आर्थिक तथा शैक्षिक चेतना के प्रसार का माध्यम बनाया। भारतेन्दु के काव्य नाटक *भारत दुर्दशा* का खल पात्र सत्यानाश फ़ौजदार यह बताता है कि भारतीय समाज के अधः पतन के लिए बाल विवाह की रीति, अपरिवर्तनीय जन्मना जाति की अवधारणा पर आधारित वर्ण–व्यवस्था, आपसी कलह, अंधविश्वास, कुलीन प्रथा, बहु विवाह की प्रथा, विधवा विवाह निषेध, विदेश यात्रा पर प्रतिबन्ध तथा आलस्य उत्तरदायी हैं। पुरोहित वर्ग में व्याप्त भ्रष्टाचार तथा उनकी धन–लोलुपता पर उन्होंने निर्मम प्रहार किए। विधवा विवाह को सामाजिक मान्यता देने के विषय में भारतेन्दु ने ईश्वरचन्द्र विद्यासागर के प्रयासों की प्रशंसा की। भारतेन्दु ने अपने नाटक *नील देवी* की भूमिका में यह कामना की है कि भारतीय स्त्रियां उसी प्रकार आत्मनिर्भर, कर्मठ तथा शिक्षित हों जैसी कि इंग्लैण्ड की स्त्रियां होती हैं परन्तु वो यह भी स्पष्ट करते हैं कि भारतीय स्त्रियों से वो यह अपेक्षा नहीं करते कि वो अपनी लज्जा और शीलता का परित्याग कर दें। उन्होंने स्त्री शिक्षा के व्यापक प्रसार के उद्‌देश्य से *बाला बोधिनी* पत्रिका का प्रकाशन किया।

उनका पत्र *कवि वचन सुधा* अपने समय का सबसे प्रगतिशील पत्र था। भारतेन्दु पाश्चात्य सभ्यता की अंधी नकल करने वालों का उपहास उड़ाते थे। उन्होंने साम्प्रदायिक सद्‌भाव का सन्देश दिया। भारतेन्दु ने तकनीकी शिक्षा के प्रसार की आवश्यकता पर बल दिया और इसके सहारे भारत में औद्योगिक विकास का स्वप्न देखा। उन्होंने स्वदेशी की भावना को भारतीयों के जीवन के हर पहलू में विकसित करना चाहा। उनके सहयोगियों बालकृष्ण भट्‌ट, प्रतापनारायण मिश्र आदि ने उनके कार्य को उनकी मृत्यु के बाद आगे बढ़ाया।

2.4.13 अल्ताफ़ हुसेन हाली

सैयद अहमद खान के सहयोगी प्रसिद्ध उर्दू शायर तथा उपन्यासकार अल्ताफ़ हुसेन हाली उत्तर भारत में मुस्लिम नवजागरण के सशक्त प्रतिनिधि हैं। उन्होंने मुसलमानों को वर्तमान हीनावस्था को बदलने के लिए प्रयत्न करने के स्थान पर हाथ पर हाथ रखकर केवल अपने प्राचीन गौरव पर गर्व करने की प्रवृत्ति की भर्त्सना की और उन्हें कर्मठता का सन्देश दिया। अपने महाकाव्य *मुसद्‌दसे हाली* में उन्होंने मुस्लिम क़ौम को दुनिया की उन्नत जातियों की भांति उद्यमशील बनने का उपदेश दिया और नई तकनीक तथा नए हुनर सीखने की सलाह दी। नारी–उत्थान उनकी दृष्टि में देश के विकास तथा समाज सुधार के लिए सबसे बड़ी शर्त थी। उनकी नज़्में *चुप की दाद* और *मुनाजात–ए–बेवा* भारतीय स्त्री की शोचनीय स्थिति का मार्मिक चित्रण करती हैं। हाली सामप्रदायिक सद्‌भाव के पक्षधर थे। वो चाहते थे कि सभी धर्मों और सभी सम्प्रदायों के लोग राष्ट्र निर्माण के कार्य में मिलकर जुट जाएं।

2.4.14 नर्मद

गुजराती के प्रसिद्ध कवि और लेखक नर्मदा शंकर 'नर्मद' नवजागरणकालीन सामाजिक चेतना का प्रतिनिधित्व करते हैं। नर्मद नारी–उत्थान के प्रबल समर्थक थे। विधवा के पुनर्विवाह के समर्थन में उन्होंने वार्तालाप के रूप में *तुलसी वैधव्य चित्र भाग* की रचना की थी। वो चाहते थे कि विधवाओं और विधुरों के बीच होने वाले विवाहों को सामाजिक मान्यता मिले। नर्मद समाज की अपरिवर्तनशीलता को हिन्दुओं तथा हिन्दुस्तान के पतन का कारण मानते थे।

2.4.15 गुरुजाड

गुरुजाड तेलगु नवजागरणकालीन साहित्यकारों में अग्रणी थे। गुरुजाड स्त्री और पुरुष के लिए अलग–अलग सामाजिक तथा नैतिक मापदण्ड रखे जाने के विरोधी थे। उनके नाटक *कन्या शुल्कम्* में विजयनगरम् राज्य के कन्या विक्रय कर अपना पेट पालने वाले समुदाय की भर्त्सना की गई है। गुरुजाड को आधुनिक नारी की सामर्थ्य पर अगाध विश्वास था। उनका मानना था कि आधुनिक युग का नवनिर्माण कर स्त्रियां मानव जाति का इतिहास फिर से लिखेंगी।

2.4.16 बी0 एम0 माल्बरी

बी0 एम0 माल्बरी भारतीय नवजागरण के महान सुधारक थे। स्वयं पारसी होते हुए भी माल्बरी हिन्दू स्त्रियों के अपमानजनक तथा दुखदायी जीवन के प्रति अपार सहानुभूति रखते थे। माल्बरी का यह माना था कि किसी समाज के भविष्य की चाबी उसकी स्त्रियों के पास होती है। उनका यह भी कहना था कि जब तक स्त्रियों को शिक्षित नहीं किया जाता और उन्हें अधम परम्पराओं की बेड़ियों से मुक्त नहीं कर दिया जाता तब तक भविष्य के लिए मंगलमय आशा करना व्यर्थ है। माल्बरी ने मुख्य रूप से विधवा विवाह के प्रचलन तथा बालविवाह के उन्मूलन पर अपना ध्यान केन्द्रित किया। माल्बरी चाहते थे कि सरकार विधवा विवाह करने वालों का सामाजिक बहिष्कार करने वालों को रोकने के लिए कठोर कदम उठाए। माल्बरी बाल विवाह के विरुद्ध कानून बनवाने के लिए आजीवन प्रयत्नशील रहे। वह चाहते थे कि जिन लड़कियों का बाल्यावस्था में विवाह हो गया है, उनके पति को उनसे शारीरिक सम्पर्क करने का तब तक अधिकार न हो जब तक कि वो परिपक्व न हो जाएं। इस आशय से उन्होंने 1891 में *एज ऑफ़ कन्सेन्ट बिल* प्रस्तुत किया तथा इसे पारित करवाने में मदद मांगने के लिए वो इंग्लैण्ड भी गए। उनकी पुस्तक *नोट्स ऑन इन्फ़ैन्ट मैरिज एण्ड एनफ़ोर्स्ड विडोहुड* ने इन दोनों कुरीतियों के विरुद्ध जनजागृति के विकास में महत्वपूर्ण योगदान दिया। हिन्दू समाज का एक बड़ा भाग यह नहीं चाहता था कि एक विदेशी सरकार हिन्दुओं के घरेलू मामलों में दखल दे। पर माल्बरी के प्रयासों से यह कानून बना दिया गया कि 12 वर्ष से कम की विवाहिता से उसका पति शारीरिक सम्बन्ध नहीं बना सकता। एक सुधारक के रूप में उन्होंने सेवा सदन की स्थापना की जिसमें बेसहारा स्त्रियों को आश्रय दिया जाता था तथा स्त्रियों के लिए शिक्षा तथा उनके उपचार की व्यवस्था भी की जाती थी।

2.4.17 विवेकानन्द

विवेकानन्द समकालीन भारतीय समाज के पतन को देखकर बहुत दुखी थे। उनकी दृष्टि में समाज में व्याप्त अस्पृश्यता, जात–पांत, साम्प्रदायिकता, स्त्रियों का दमन, शिक्षित वर्ग में पाश्चात्य सभ्यता की अंधी नकल, आलस्यवश कुछ भी नया सीखने से बचने की प्रवृत्ति, हीन भावना, अंधविश्वास की व्याप्ति तथा हर बात में डरने की दुर्बलता इस अवनति के लिए उत्तरदायी थे। यूं तो विवेकानन्द सामाजिक क्षेत्र में आमूल परिवर्तन के विरोधी थे किन्तु उनका मानवतावादी दृष्टिकोण उन्हें भारतीय स्त्रियों की तथा दलित वर्ग की हीन दशा सुधारने के लिए प्रेरित कर रहा था। स्त्रियों के प्रति उनके मन में अपार आदर था किन्तु भारतीय स्त्रियों के लिए उनका आदर्श पाश्चात्य आधुनिका नारी

नहीं थी अपितु सावित्री, सीता और वर्तमान काल की उनकी गुरुमाता माँ शारदा थीं। उन्होंने बाल विवाह का विरोध किया किन्तु विधवा विवाह को उन्होंने अपना समर्थन नहीं दिया। विवेकानन्द स्त्री शिक्षा के समर्थक थे। विवेकानन्द ने भगवान को दरिद्रनारायण कहा। छुआ–छूत उनकी दृष्टि में एक सामाजिक रोग था। विवेकानन्द पुरोहितों के पाखण्डों और उनके प्रभुत्व से समाज की रक्षा करना चाहते थे। भारतीयों की नियतिवाद में आस्था और उनकी हीन भावना से उन्हें अपार कष्ट होता था। आत्म विश्वास और कर्मठता से इस रोग का निदान वो सम्भव मानते थे। भारतीयों को विवेकानन्द ने निडरता का सन्देश दिया।

2.4.18 पण्डिता रमा बाई

महिलाओं के अधिकारों के लिए सतत संघर्ष करने वाली महान विदुषी पण्डिता रमा बाई एक क्रान्तिकारी समाज सुधारक थीं। विधवाओं की स्थिति सुधारने के लिए, उन्हें आश्रय देने के लिए तथा उन्हें शिक्षा प्रदान करने के उद्देश्य से उन्होंने शारदा सदन तथा मुक्ति नामक संस्था की स्थापना की। नेशनल सोशल कॉन्फ्रेन्स के 1889 के अधिवेशन में पण्डिता रमा बाई ने विधवाओं के केश मुण्डन की प्रथा का विरोध किया। पण्डिता रमा बाई लैंगिक समानता की पक्षधर थीं। ईसाई बन जाने के बाद उनके प्रशंसकों तथा समर्थकों की संख्या में कमी आ गई किन्तु नारी–उत्थान के क्षेत्र में उनके योगदान को भुलाया नहीं जा सकता।

2.4.19 नवाब भोपाल सुल्तानजहां बेगम

नवाब भोपाल सुल्तान जहां ने मुस्लिम समाज में शिक्षा के प्रसार में जो योगदान दिया वह अतुलनीय है। भोपाल में उन्होंने लड़कियों के लिए मदरसा–ए–सुल्तानियाँ की स्थापना की। देश के कोने–कोने में जाकर उन्होंने लड़कियों के लिए मदरसे तथा कॉलेज खुलवाने के लिए आर्थिक सहायता की और इस विषय में उन्होंने केवल मुस्लिम समुदाय की ही नहीं बल्कि गैर मुस्लिमों की भी मदद की। सुल्तानजहां बेगम पर्दे की प्रथा का पालन करते हुए स्त्री शिक्षा की पक्षधर थीं। स्त्री शिक्षा के पाठ्यक्रम में उन्होंने परम्परागत विषयों के साथ स्त्रियों को आत्मनिर्भर बनाने के लिए आवश्यक विषयों को शामिल किया।

2.4.20 श्रीमती एनी बीसेन्ट

श्रीमती एनीबीसेन्ट ने अपने समाज सुधार कार्यक्रम में बाल विवाह के उन्मूलन को सम्मिलित किया परन्तु वो विधवा विवाह की समर्थक नहीं थीं। श्रीमती बीसेन्ट ने भारतीय स्त्रियों के लिए राजनीतिक आन्दोलन के द्वार खोल दिए। श्रीमती बीसेन्ट स्त्री शिक्षा की समर्थक थीं। दलितोद्धार के लिए थियोसोफ़िकल सोसायटी ने दलित समाज में शिक्षा प्रसार के लिए प्रयत्न किए तथा जात–पांत के बन्धनों को शिथिल किए जाने की आवश्यकता पर बल दिया।

2.4.21 ढोंढो केशव कर्वे

स्त्री शिक्षा प्रसार तथा विधवाओं की स्थिति में सुधार लाने के लिए अनथक प्रयास करने वाले ढोंढो केशव कर्वे एक महान समाज सुधारक थे। उनको भारतीय इतिहास में प्रथम कन्या विश्वविद्यालय स्थापित करने का गौरव भी प्राप्त है। उन्होंने पुणे में विधवा आश्रमों की स्थापना की। विधवाओं के कल्याण हेतु उन्होंने प्रसिद्ध समाज सुधारक व साहित्यकार वीरेशलिंगम पंतलु के साथ भी मिलकर कार्य किया।

2.4.22 अन्य सुधारक

महाराष्ट्र में परमहंस मण्डली के संस्थापक दादोबा पाण्डुरंग तथा जाम्भेकर शास्त्री ने सामाजिक समता की स्थापना के उद्देश्य से जाति व्यवस्था के औचित्य तथा ब्राह्मणों के सामाजिक प्रभुत्व को चुनौती दी। केरल में श्री नारायण

गुरु ने अरव्विपुरम् आन्दोलन के अन्तर्गत निम्न जातियों के लिए मन्दिर प्रवेश को सम्भव बनाया गया। पंजाब में बाबा रामसिंह ने नामधारी आन्दोलन के अन्तर्गत नारी–उत्थान व दलितोद्धार के प्रयास किए। घासीदास ने सतनामी सम्प्रदाय की स्थापना कर अस्पृश्यता के विरुद्ध अभियान छेड़ा। अहमदी आन्दोलन के प्रणेता गुलाम अहमद क़ादिनी ने *अन्जुमन–ए–हिमायत इस्लाम* की स्थापना कर मुसलमानों को पाश्चात्य शिक्षा तथा उदारवादी विचारधारा अपनाने के लिए प्रेरित किया। मौलाना शिबली नूमानी ने बीसवीं शताब्दी के प्रारम्भ में लखनऊ में मुस्लिम तथा पाश्चात्य शिक्षा पद्धति के समन्वय पर आधारित नदुआतुल उलेमा की स्थापना की।

3. **19वीं सदी में भारत में प्रचलित कुरीतियों का वर्णन कीजिए–**

स्व मूल्यांकन हेतु प्रश्न

निम्नलिखित विषयों पर संक्षिप्त टिप्पणी लिखिए:

1. (क) आधुनिक भारत के निर्माता के रूप में राजा राममोहन राय।
   (ख) ईश्वर चन्द्र विद्यासागर का स्त्री शिक्षा के प्रसार में योगदान।
2. नीचे लिखे प्रश्नों के उत्तर दीजिए।

(i) सती प्रथा का उन्मूलन कब किया गया था?

(ii) क्या आर्य समाज ने स्त्री शिक्षा का विरोध किया था?

2.5. समाज सुधार में सरकार की भूमिका

ईस्ट इण्डिया कम्पनी की यह घोषित नीति थी कि वह भारतीयों के धार्मिक मामलों में हस्तक्षेप नहीं करेगी। इस कारण अंग्रेज़ो की भारतीय सरकार ने प्रारम्भ में समाज सुधार कार्यक्रम में विशेष रुचि नहीं दिखाई परन्तु जब बेंथम के उपयोगितावाद का प्रभाव ब्रिटिश भारतीय सरकार पर तथा उसके अधिकारियों तक पहुंचा तो समाज सुधार के लिए कुछ ठोस कदम उठाए गए। इवैंजलिस्ट्स भारत में सामाजिक कुरीतियों के उन्मूलन के लिए सरकार का दायित्व मानते थे। 1803 में वेलेज़ली ने सागर द्वीप में बालकों की बलि दिए जाने की प्रथा पर प्रतिबन्ध लगा दिया था। सरकार ने सती प्रथा पर कठोर प्रतिबन्ध लगाकर उसे रोकने का प्रयास किया। बेंथम का अनुयायी लॉर्ड विलियम बैंटिंग सन् 1828 में बंगाल के गवर्नर जनरल के रूप में जब आया तो उसने 4 दिसम्बर, 1829 को रेग्युलेशन 17 द्वारा सती प्रथा को गैर कानूनी घोषित कर दिया। कम्पनी की सरकार ने कच तथा गुजरात के झरिजा राजपूतों में प्रचलित बालिका वध को हत्या माना और बेंटिंग के काल में इस पर पूरी तरह रोक लगा दी गई। बेंटिंग के काल में नर बलि की प्रथा पर भी रोक लगा दी गई। 1843 में दासता की प्रथा को गैरकानूनी घोषित कर दिया गया। सरकार ने 1856 में विधवा विवाह को कानूनी मान्यता दी। 1857 के विद्रोह के बाद सोशल लेजिसलेशन की नीति का प्रायः परित्याग कर दिया गया। किन्तु 1872 में अन्तर्जातीय विवाह को मान्यता दी गई 1892 के एज ऑफ़ कन्सेन्ट एक्ट से यह कानून बना कि विवाहिता जब तक 12 वर्ष की न हो जाए तब तक उसका पति उससे शारीरिक सम्बन्ध नहीं बना सकता। कुल मिलाकर हम कह सकते हैं कि ब्रिटिश सरकार ने समाज सुधार का मुख्य दायित्व समाज सुधारकों पर ही छोड़ दिया।

2.6 समाज सुधार में ईसाई मिशनरियों की भूमिका

भारत में ईसाई मिशनरी अपने धर्म का प्रचार करने के लिए शिक्षा प्रसार और समाज सेवा को साधन के रूप में प्रयुक्त कर रहे थे। भारतीयों के सम्पर्क में आने पर उन्होंने उनकी कुरीतियों के विषय में भी जाना और उनके उन्मूलन के लिए व्यक्तिगत स्तर पर प्रयास भी किए। उन्होंने नारी–उत्थान तथा दलितोद्धार के क्षेत्र में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई। उन्होंने बालिकाओं तथा दलित समाज के लिए स्कूलों की स्थापना की। ईसाई मिशनरी एलेक्ज़ेण्डर डफ़ ने सती प्रथा के उन्मूलन में राजा राममोहन राय का सहयोग किया। सीरामपुर मिशनरियों ने भी समाज सुधार कार्यक्रम में अपना योगदान दिया था। सीरामपुर के डॉक्टर कैरी, वार्ड व मार्शमैन का शिक्षा प्रसार में उल्लेखनीय योगदान रहा। पण्डिता रमा बाई ने ईसाई धर्म में दीक्षित होने के बाद शारदा सदन के माध्यम से विधवाओं के पुनर्वास के लिए सराहनीय कार्य किया।

2.7 समाज सुधार की सीमाएं तथा उसका सीमित क्षेत्र

पुनर्जागरणकालीन समाज सुधार की लहर ने समस्त भारत को प्रभावित किया था किन्तु इससे भारतीय समाज की बुराइयों का पूर्ण उन्मूलन नहीं हो सका। शिक्षा के सीमित प्रसार तथा आम भारतीय की विपन्नावस्था ने समाज सुधार की गति का धीमा कर दिया था। गांवों में तथा निर्धन वर्ग में सामाजिक चेतना का प्रसार नहीं हो सका। पर्दा प्रथा, दहेज प्रथा, स्त्री शिक्षा पर प्रतिबन्ध, स्त्रियों की आर्थिक परतन्त्रता जैसी कुरीतियों तथा मनावृत्तियों ने अभी भी समाज को जकड़ रखा था। दलितोद्धार के विषय में भी समाज सुधार कार्यक्रम को कोई क्रान्तिकारी सफलता नहीं मिली। समाज सुधार का क्षेत्र मुख्यतः शहरी मध्य वर्ग तक सीमित रहा।

स्वमूल्यांकन हेतु प्रश्न

निम्नलिखित विषयों पर संक्षिप्त टिप्पणी लिखिए:

1. (क) लॉर्ड विलियम बेंटिंग के सामाजिक सुधार।

(ख) पुनर्जागरण काल में नारी–उत्थान के क्षेत्र में सुधारकों को पूर्ण सफलता न मिल पाने के कारण।

2. नीचे लिखे प्रश्नों के उत्तर दीजिए।

(i) सती प्रथा का उन्मूलन किस गवर्नर जनरल के काल में हुआ था?

(ii) विधवा विवाह को कानूनी मान्यता कब दी गई?

2.8 सार संक्षेप

हिन्दू समाज की ऊर्जा जटिल वर्ण–व्यवस्था, अस्पृश्यता, विधवा विवाह निषेध, बाल विवाह, बहु विवाह के प्रचलन, अंधविश्वास तथा पुरातन शिक्षा पद्धति के कारण क्षीण हो चुकी थी। मुस्लिम समाज में भी अशिक्षा और सुधार के प्रति उदासीनता की भावना थी। राजा राममोहन राय ने सती प्रथा का उन्मूलन कराया। नव बंगाल आन्दोलन के सूत्रधार डेरोज़ियो ने परम्पराओं तथा मान्यताओं को बुद्धि और विवेक की कसौटी पर परखने पर ज़ोर दिया ईश्वरचन्द्र विद्यासागर ने स्त्री शिक्षा प्रसार तथा विधवा विवाह को कानूनी मान्यता दिलाने में योगदान दिया। दादाभाई नौरोजी ने पारसी समाज में व्याप्त कुरीतियों को ज़ोरेस्टर की मूल शिक्षाओं के विरुद्ध बताया। एम0 जी0 रानाडे ने समाज सुधार हेतु इण्डियन नेशनल सोशल कॉन्फ्रेन्स की स्थापना की। आर्य समाज ने स्त्रियों तथा दलितों की स्थिति सुधारने में महत्वपूर्ण योगदान दिया। जोतिबा फुले ने दलितों तथा स्त्रियों के उत्थान व ब्राह्मणों के प्रभुत्व को समाप्त करने के लिए प्रयास किए। सैयद अहमद खान ने मुस्लिम नवजागरण के क्षेत्र में उल्लेखनीय कार्य किया। नवाब भोपाल सुल्तान जहां ने मुस्लिम समाज में स्त्री शिक्षा के प्रसार में अतुलनीय योगदान दिया।

स्त्री शिक्षा प्रसार तथा विधवाओं की स्थिति में सुधार लाने के लिए ढोंढो केशव कर्वे ने आजीवन प्रयास किए। गुलाम अहमद क़ादिनी तथा मौलाना शिबली नूमानी ने मुस्लिम शिक्षा में अंग्रेज़ी की शिक्षा को सम्मिलित किया। बंगला साहित्य में बंकिमचन्द्र, गुजराती में नर्मद, हिन्दी में भारतेन्दु हरिश्चन्द्र, उर्दू में हाली तथा तेलगु में गुरजाड नवजागरणकालीन चेतना का प्रतिनिधित्व करते हैं।

सरकार द्वारा समाज सुधार के कार्यों में सती प्रथा को गैर कानूनी घोषित किया जाना, बालिका वध और नर बलि पर प्रतिबन्ध लगाना तथा विधवा विवाह को कानूनी मान्यता दिया जाना प्रमुख हैं। भारत में ईसाई मिशनरियों ने नारी–उत्थान, शिक्षा प्रसार तथा दलितोद्धार के क्षेत्र में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई। पुनर्जागरणकालीन समाज सुधार कार्यक्रम ने आर्थिक तथा राजनीतिक चेतना की पृष्ठभूमि तैयार की।

2.9 पारिभाषिक शब्दावली

लैंगिक असमानता: स्त्री तथा पुरुष को एक समान न मानना

पराभव: पतन

अस्पृश्यता: छुआछूत

कुलीन प्रथाः उच्च कुलीन ब्राह्मणों में बेटी का विवाह अपने से ऊँचे कुल में करने की प्रथा
आभिजात्य वर्गः शिष्ट एवं समृद्ध वर्ग
अपरिवर्तनशीलताः किसी भी प्रकार का बदलाव स्वीकार न करने की मनोवृत्ति
धर्म–निर्पेक्ष शिक्षाः ऐसी शिक्षा पद्धति जिसमें कि धर्म का प्रभाव न हो
श्रमजीवी वर्गः मेहनत कर अपना पेट पालने वाला समुदाय
आत्मशोधनः स्वयं अपना सुधार करना
सूत्रपातः प्रारम्भ
बेहुनरः कौशल रहित
अन्जुमन–ए–हिमायत इस्लामः मुस्लिम हितैषिनी सभा
सोशल लेजिसलेशनः कानून बनाकर समाज सुधार करना

2.10 सन्दर्भ ग्रंथ

दत्त, के0 के0: *सोशल हिस्ट्री ऑफ मॉडर्न इण्डिया*, नई दिल्ली, 1975
बोस, एन0 एस0: *इण्डियन अवेकेनिंग एण्ड बेंगाल*, कलकत्ता, 1975
टामस, पी0: *इण्डियन वीमेन थ्रू एजेज़*, बॉम्बे, 1964
चिन्तामणि, सी0 वाई0: *इण्डियन सोशल रिफ़ॉर्म*, मैड्रास, 1901
नटराजन, एस0: *ए सेन्चुरी ऑफ सोशल रिफ़ॉर्म*, बॉम्बे, 1954
देसाई, ए0 आर0: *सोशल बैकग्राउण्ड ऑफ इण्डियन नेशनलिज़्म*, बॉम्बे, 1948
मजूमदार, आर0 सी0 (सम्पादक)–*ब्रिटिश पैरामाउंट्सी एण्ड इण्डियन रिनेसा*, दो भागों मे, बॉम्बे, 1965
कुमार, रविन्दरः *एसेज़ इन दि सोशल हिस्ट्री ऑफ़ मॉडर्न इण्डिया*, दिल्ली, 1983
नूरुल्ला तथा नायकः *ए स्टूडेन्ट्स हिस्ट्री ऑफ़ एजुकेशन इन इण्डिया (1800–1965)*,
शान मोहम्मद (सम्पादक) – *राइटिंग्स एण्ड स्पीचेज़ ऑफ सर सैयद अहमद खान*
बॉम्बे, 1972

2.11 स्व मूल्यांकित प्रश्नों के उत्तर

1.(क) देखिए 2.4.1 राजा राममोहन राय तथा ब्रह्म समाज।
(ख) देखिए 2.4.3 ईश्वर चन्द्र विद्यासागर।
2.(i) सन् 1829 में।
(ii) नहीं।
1. (क) देखिए 2.5 समाज सुधार में सरकार की भूमिका
(ख) देखिए 2.7 समाज सुधार की सीमाएं तथा उसका सीमित क्षेत्र।
2. (i) लॉर्ड विलियम बेंटिंग।
(ii) सन् 1856 में।

2.12 अभ्यास प्रश्न

1. डेरोज़ियो के युवा बंगाल आन्दोलन के प्रगतिशील सामाजिक विचारों की समीक्षा कीजिए।
2. एक समाज सुधारक के रूप में एम0 जी0 रानाडे के योगदान का आकलन कीजिए।
3. जोतिबा फुले के सत्य शोधक समाज की दलितोद्धार में भूमिका का आकलन कीजिए।
4. भारतेन्दु हरिश्चन्द्र के समाज सुधार विषयक विचारों का वर्णन कीजिए।
5. नवाब सुल्तान जहां बेगम के स्त्री शिक्षा प्रसार में योगदान का मूल्यांकन कीजिए।

3.1 प्रस्तावना
3.2 इकाई के प्राप्ति उद्देश्यः
3.3 विद्रोह की पृष्ठभूमि तथा उसके कारण
    3.3.1 धार्मिक कारण
    3.3.2 सामाजिक तथा शैक्षिक कारण
    3.3.3 आर्थिक कारण
    3.3.4 सैनिक कारण
    3.3.5 राजनीतिक कारण
    3.3.6 तात्कालिक कारण
3.4 विद्रोह के प्रमुख नेता
    3.4.1 मंगल पाण्डे
    3.4.2 बादशाह बहादुर शाह ज़फ़र
    3.4.3 नाना साहब पेशवा
    3.4.4 रानी लक्ष्मीबाई
    3.4.5 तांत्या टोपे
    3.4.6 बेगम हज़रत महल
    3.4.7 कुंवर सिह
    3.4.8 अमर सिंह
    3.4.9 राणा बेनीमाधव
    3.4.10 बलभद्र सिंह
    3.4.11 बख्त खां
    3.4.12 मौलवी अहमदशाह
    3.4.13 शहज़ादा फ़िरोज़शाह
    3.4.14 खान बहादुर खां
    3.4.15 पीर अली
    3.4.16 अन्य नेता
3.5 विद्रोह की असफलता के कारण
    3.5.1 सैनिक असफलता
    3.5..2 विद्रोहियों में कुशल नेतृत्व का अभाव
    3.5.3 विद्रोहियों के पास आर्थिक संसाधनों की कमी
    3.5.4 अधिकांश भारतीय शासकों, ताल्लुकदारों तथा ज़मींदारों का विद्रोह में भाग न लेना
    3.5.5 व्यापारी वर्ग का एक बड़ा हिस्सा अंग्रेज़ों के साथ
    3.5.6 भारतीय बुद्धिजीवियों का विद्रोहियों से असहयोग
    3.5.7 विद्रोह का सीमित क्षेत्र
3.6. सार संक्षेप
3.7 पारिभाषिक शब्दावली
3.8 सन्दर्भ ग्रंथ
3.9 स्व मूल्यांकित प्रश्नों के उत्तर
3.9 अभ्यास प्रश्न

3.1 प्रस्तावना

1757 में प्लासी के युद्ध में अंग्रेज़ों की विजय और फिर 1765 में उनके द्वारा मुगल बादशाह शाह आलम से दीवानी प्राप्त करने के बाद से ही अंग्रेज़ों के विरुद्ध भारतीयों ने अपने अभियान प्रारम्भ कर दिए थे। हैदर अली और टीपू ने भारतीयों को संगठित कर अंग्रेज़ों को भारत से खदेड़ने का असफल प्रयास किया परन्तु उन्हें भारतीयों को संगठित करने में सफलता नहीं मिली। अंग्रेज़ों ने जैसे–जैसे भारत में अपनी शक्ति का विस्तार किया और सैकड़ों साल से चली आ रही राजनीतिक, धार्मिक, सामाजिक, शैक्षिक एवं आर्थिक व्यवस्था पर आघात किया वैसे–वैसे उनके प्रति भारतीयों का आक्रोश बढ़ता चला गया। ईसाई मिशनरियों द्वारा ईसाई धर्म के प्रचार को ईस्ट इण्डिया कम्पनी द्वारा खुली छूट दिए जाने और भारतीय उद्योग को अपरिमित हानि पहुंचाने तथा किसानों पर शोषक भू–राजस्व व्यवस्था लादे जाने के कारण इस असंन्तोष में अपार वृद्धि हुई।

1857 के विद्रोह में पहली बार भारतीयों ने संगठित होकर ब्रिटिश सत्ता को उखाड़ फेंकने का प्रयास किया। इस प्रयास में भारतीय शासक, सैनिक, ज़मींदार, ताल्लुकदार, किसान आदि की प्रमुख भूमिका थी। मुगल बादशाह बहादुर शाह, नाना साहब पेशवा, बेगम हज़रत महल, रानी लक्ष्मी बाई, तांत्या टोपे, कुंवर सिह, राना बेनी माधव, शहज़ादा फ़िरोज़शाह, मौलवी अहमदशाह, बख्त खां आदि ने इस विद्रोह का नेतृत्व किया।

इस इकाई में आपको 1857 के विद्रोह के कारणों तथा इस विद्रोह के प्रमुख नेताओं के कार्यों से परिचित कराया जाएगा।

3.2 इकाई के उद्देश्य

इस इकाई का उद्देश्य ईस्ट इण्डिया के शासन के विरुद्ध सशक्त क्रान्ति के रूप में भारतीय असन्तोष की अभिव्यक्ति का विश्लेषणात्मक अध्ययन करना है। विद्रोह से पूर्व के भारतीय असन्तोष से आपको परिचित कराना भी इस इकाई का उद्देश्य है। इस असन्तोष की संगठनात्मक अभिव्यक्ति 1857 के विद्रोह में हुई। विद्रोह के नेताओं की भूमिका तथा विद्रोह की असफलता के कारणों से भी आपको अवगत कराया जाएगा। इस इकाई को पढ़कर आप जानेंगेः

- 1857 से पूर्व अंग्रेज़ों के विरुद्ध किए गए विद्रोह।
- 1857 के विद्रोह के कारण।
- विद्रोह के नेताओं की भूमिका।
- विद्रोह की असफलता के कारण।

3.3 विद्रोह की पृष्ठभूमि तथा उसके कारण

1857 के विद्रोह ने भारत में लगभग एक सदी से शक्तिशाली होते हुए और फैलते हुए ब्रिटिश साम्राज्य के अस्तित्व को खतरे में डाल दिया था। अंग्रेज़ों ने इस विद्रोह को मात्र सिपाही विद्रोह के रूप में स्वीकार किया था और वास्तव में इसका आरम्भ एक सैनिक विद्रोह के रूप में ही हुआ था किन्तु धीरे–धीरे यह भारत के एक बड़े भू–भाग में, विशेषकर उत्तर भारत में फैल गया और इसमें आम जनता भी सम्मिलित हो गई। विद्रोह में सम्मिलित होने वालों का परम उद्देश्य भारत से फिरंगी शासन को समाप्त करना था। इस विद्रोह की पृष्ठभूमि तो बहुत पहले तैयार हो चुकी थी। मैसूर के हैदर अली तथा टीपू सुल्तान द्वारा भारत से अंग्रेज़ों के निष्कासन के प्रयास प्रशंसनीय हैं किन्तु उन्हें अपने प्रयासों में किसी भी भारतीय शासक का समर्थन नहीं मिला। 1857 के विद्रोह से पहले अंग्रेज़ों के विरुद्ध अभियान छेड़ने वाले सैयद अहमद बरेलवी वहाबी आन्दोलन से सम्बद्ध थे। उन्होंने अंग्रेज़ों के विरुद्ध विद्रोह को मुसलमानों के लिए धार्मिक कर्तव्य बताया। पूर्व विप्लव काल में कवि बांकीदास ने राजपूत राजाओं को अपनी सत्यानाशी निद्रा से जागृत करने के लिए उद्बोधित किया। पेशवा नानासाहब की पेंशन के विषय में उनकी पैरवी कर रहे अज़ीमुल्ला खान और व्यपगत के सिद्धान्त के कारण अपदस्थ सतारा के पूर्व शासक की पैरवी कर रहे

रंगो बापूजी ने लन्दन में विद्रोह की योजना बनाई थी। अज़ीमुल्ला खान ने क्रीमिया युद्ध के दौरान भारत में अंग्रेज़ों के विरुद्ध रूस और तुर्की से सैनिक सहायता प्राप्त करने का प्रयास किया था। अवध के अपदस्थ नवाब वाजिदअली शाह के वज़ीर अली नक़ी खान जो कि उसके साथ कलकत्ता में था और उसकी बेगम हज़रत महल जो कि लखनऊ में थी, दोनों, अंग्रेज़ों के विरुद्ध विद्रोह की योजना बनाने के लिए आपस में गुप्त रूप से पत्र–व्यवहार कर रहे थे। इस विद्रोह की पृष्ठभूमि तैयार करने में दिल्ली से प्रकाशित उर्दू पत्र *पयामे आज़ादी* ने महत्वपूर्ण निभाई थी।

3.3.1 धार्मिक कारण

भारत में ईस्ट इण्डिया कम्पनी के शासन में ईसाई मिशनरी भारतीय धर्मों, उनके पैगम्बरों, देवी–देवताओं की खुले–आम निन्दा करते थे। धर्म परिवर्तन के लिए शिक्षा की निःशुल्क व्यवस्था, आश्रय, नौकरी, पदोन्नति आदि का प्रलोभन देना अंग्रेज़ अधिकारियों तथा ईसाई मिशनरियों की रणनीति में शामिल थी। ईसाई धर्म प्रचारक स्कूलों, अस्पतालों, जेलों, मेलों, बाज़ारों और सैनिक छावनियों में अपने धर्म का प्रचार करते थे। लॉर्ड विलियम बैंटिंग के शासनकाल में पारित सम्पत्ति के उत्तराधिकार के कानून का उद्देश्य मुख्यतः हिन्दू से धर्म परिवर्तित कर ईसाई बने व्यक्तियों को उनकी पैतृक सम्पत्ति में अधिकार दिलाना था। 1850 के धार्मिक अयोग्यता अधिनियम से धर्म परिवर्तन कर हिन्दू से ईसाइयों को पैतृक सम्पत्ति में हिस्सा प्राप्त करने का अधिकार मिल गया। सती प्रथा के उन्मूलन तथा विधवा विवाह को वैधानिक मान्यता दिए जाने से अधिकांश हिन्दू बहुत नाराज़ थे। अंग्रेज़ों द्वारा प्रचलित रेलवेज़ में छुआ–छूत और ऊंच–नीच की अवधारणा का अन्त कर दिया गया। इस नीति का सवर्ण हिन्दुओं में विरोध हुआ।

1806 में हुए वैलोर के विद्रोह का कारण सैनिक एकरूपता के बहाने सैनिकों के पगड़ी लगाने और माथे पर टीका लगाने पर प्रतिबन्ध था। प्रथम तथा द्वितीय बर्मा युद्ध में सैनिकों ने धार्मिक दृष्टि से प्रतिबन्धित समुद्र यात्रा के लिए विवश किए जाने का विरोध किया था।

विद्रोह का तात्कालिक कारण भारतीय सैनिकों को उपलब्ध किए जाने वाले कारतूसों में हिन्दुओं के लिए पवित्र गाय की और मुसलमानों के लिए अपवित्र सूअर की चर्बी होना था।

3.3.2 सामाजिक तथा शैक्षिक कारण

अंग्रेज़ों का जातीय अहंकार तथा उनकी रंगभेद की नीति शासक वर्ग और प्रजा के मध्य दूरी बढ़ाने के लिए उत्तरदायी थी। आम जनता के साथ अंग्रेज़ों का व्यवहार अत्यन्त क्रूरतापूर्ण तथा अपमानजनक होता था। भारतीयों को असभ्य, बर्बर, भ्रष्ट, अकर्मण्य, अज्ञानी तथा मूर्ख समझा जाता था। भारतीयों के सामाजिक रीति–रिवाजों का सम्मान नहीं किया जाता था। मैकॉले द्वारा भारत में अंग्रेज़ी शिक्षा के प्रचलन का उद्देश्य भारतीयों की मानसिकता और उनके आचार–विचार में अंग्रेज़ों की गुलामी और उनकी नकल करने की प्रवृत्ति भरना था। आम भारतीय यह मानते थे कि अंग्रेज़ी शिक्षा के प्रसार का उद्देश्य भारतीय युवा पीढ़ी को अपने धर्म और अपनी संस्कृति से विमुख कर क्रिस्तान बनाना है।

3.3.3 आर्थिक कारण

सौ वर्ष के अंग्रेज़ी शासन ने हज़ारों साल से सोने की चिड़िया कहे जाने वाले भारत को दरिद्र और असमर्थ बना दिया था। बादशाह, राजे–महाराजे साधन हीन हो गए थे। व्यापार और उद्योग की ऐसी अवनति हुई थी कि अनेक व्यापारिक,औद्योगिक तथा शिक्षा के केन्द्र खण्डहरों में परिवर्तित हो गए थे। इंग्लैण्ड में औद्योगिक क्रान्ति हो जाने के बाद अंग्रेज़ों ने भारतीय बाज़ार में अपना माल बेचने के उद्देश्य से भारतीय उद्योग को नष्ट करने का षडयंत्र रचा। मुक्त–व्यापार की एक–पक्षीय नीति अपना कर अंग्रेज़ों ने भारतीय सामान विदेशी बाज़ारों के लिए महंगा और

भारत में अंग्रेज़ी माल सस्ता करा दिया। इससे भारतीय कारीगरों के हाथ से स्थानीय और विदेशी, दोनों ही बाज़ार निकल गए। कुटीर उद्योगों के विनाश के बाद कारीगरों को कोई वैकल्पिक रोज़गार नहीं मिल रहा था।

ईस्ट इण्डिया कम्पनी के दबाव में भारतीय शासकों की सेनाएं भंग हो जाने से लाखों सैनिक बेरोज़गार हो गए थे। ब्रिटिश सेना में भर्ती भारतीय सिपाहियों का वेतन अंग्रेज़ सिपाहियों की तुलना में बहुत कम था।

नई लगान व्यवस्था में सरकार की शोषक प्रवृत्ति परिलक्षित होती थी। किसान ज़मींदारों, सरकारी कर्मचारियों और महाजनों के चंगुल में जीवन भर के लिए फंस गए थे। 1853 में केवल पश्चिमोत्तर प्रांत में लगान की अदायगी न किए जाने के कारण 11 लाख एकड़ भूमि की नीलामी की गई। 1856–57 में अवध के विलयन के बाद बहुत से ज़मींदारों को उनकी ज़मींदारी से बेदखल किया गया। नए ज़मींदारों में अधिकांश व्यापारी वर्ग के थे और कृषि–विकास अथवा किसानों के हितों की ओर उनका कोई ध्यान नहीं था। रैयतवाड़ी और महलवाड़ी भू–व्यवस्थाओं में भी किसानों पर करों का अनावश्यक बोझ लाद दिया गया था और उनके हितों की नितान्त उपेक्षा की गई थी। किसान करों का बोझा चुकाने के लिए महाजनों से अत्यधिक ब्याज पर उधार लेने के लिए विवश थे। कम्पनी के शोषक शासन के प्रति किसानों का असन्तोष मुख्य रूप से अवध में उभर कर सामने आया जहां कि किसानों ने बड़ी संख्या में विद्रोह में भाग लिया।

बादशाह बहादुर शाह ने अपने एक इश्तहार में ज़मींदारों पर लगान के अधिक भार और उसकी अदायगी न होने पर उनको बेदखल किए जाने की निर्मम व्यवस्था, खर्चीली अंग्रेज़ी न्याय–व्यवस्था, शोषक कर–प्रणाली, सर्वाधिक लाभ देने वाले व्यापारों पर अंग्रेज़ व्यापारियों के तथा उच्च सरकारी पदों पर गोरों के एकाधिकार, और भारतीय बाज़ारों में ब्रिटिश तैयार माल के बेचे जाने से भारतीय कारीगरों की बेरोज़गारी और भुखमरी का उल्लेख किया था, ये सभी भारतीय असन्तोष को बढ़ाने का कारण बने।

1. **1857 के विद्रोह के सामाजिक, धार्मिक एवं आर्थिक कारण बताइये–**

3.3.4 सैनिक कारण

1806 में हुए वैलोर के विद्रोह का कारण सैनिक एकरूपता के बहाने सैनिकों के पगड़ी लगाने और माथे पर टीका लगाने पर प्रतिबन्ध था। प्रथम तथा द्वितीय बर्मा युद्ध में सैनिकों ने धार्मिक दृष्टि से प्रतिबन्धित समुद्र यात्रा के लिए विवश किए जाने का विरोध किया था।

अवध का ब्रिटिश साम्राज्य में जब विलय किया गया तो राज्य की सेना को भंग कर दिया गया। अपहृत एवं अधिकृत राज्यों की सेनाओं को अवध की सेना की ही भांति भंग कर दिया गया था जिससे लाखों पेशेवर सैनिक बेरोज़गार हो गए थे। कम्पनी की सेना में तैनात सिपाहियों को सूअर और गाय की चर्बी लगे कारतूसों के प्रयोग तथा नए सेना भर्ती अधिनियम (इसके अन्तर्गत सिपाही विदेश जाने से इंकार नहीं कर सकते थे।) पर आपत्ति थी परन्तु आज्ञाओं का उल्लंघन करने वाले सैनिकों या तो मृत्यु दण्ड दिया जाता था या फिर उन्हें बर्खास्त करके कठोर दण्ड दिया जाता था।

ईस्ट इण्डिया कम्पनी की सेना में एक यूरोपियन सैनिक का न्यूनतम वेतन एक भारतीय सैनिक के अधिकतम वेतन से भी अधिक होता था। भारतीय सैनिकों को दिया जाने वाला अतिरिक्त भत्ता भी बन्द कर दिया गया था। अंग्रेज़ सैनिक अफ़सरों में इतना अधिक जातीय अभिमान था कि वो अपने अधीनस्थ भारतीय सैनिकों से किसी भी प्रकार का मिलना जुलना पसंद नहीं करते थे। मेरठ छावनी से विद्रोह का आरम्भ हुआ और फिर सैनिकों ने ही इसका अन्य क्षेत्रों में विस्तार किया।

3.3.5 राजनीतिक कारण

प्लासी के युद्ध से लेकर डलहौज़ी के शासनकाल तक ईस्ट इण्डिया कम्पनी के अधिकारियों ने भारतीय शासकों के साथ जो भी संधियां कीं, उनका उन्होंने कभी भी निष्ठापूर्वक पालन नहीं किया। उन्होंने एक–एक कर अपने छल–कपट से अथवा बल प्रयोग से छोटे और बड़े भारतीय राज्यों को ब्रिटिश साम्राज्य में मिला लिया। अंग्रेज़ों के लिए भारतीय शासकों को अनायास लूटना एक आम बात थी। भारतीय शासकों का अकारण अपमान करने में और उन्हें बिना किसी अपराध के प्रताड़ित करने में उन्हें कोई संकोच नहीं होता था। डलहौज़ी ने महाराजा रंजीत सिंह के पुत्र दलीप सिंह और उसकी माता झिंदा कौर को देश निकाला दे दिया। मुगल बादशाह बहादुर शाह द्वितीय के प्रति अंग्रेज़ों का व्यवहार सदैव अपमानजनक रहा। अंग्रेज़ों ने बादशाह को खिराज देना, नज़र पेश करना और अपने सिक्कों में उसका नाम अंकित करना बन्द कर दिया। अवध के नवाब वाजिदअली शाह के साथ भी उनका व्यवहार सदैव अपमानजनक तथा घोर अन्यायपूर्ण रहा।

भारतीय राज्यों के अपहरण की नीति पर भारतीयों की प्रतिक्रिया के विषय में इतिहासकार लुडलो अपनी पुस्तक *थॉट ऑन दि पॉलिसी ऑफ़ दि क्राउन* में लिखता है –

राज्य अपहरण की नीति को जिस तरीके से अपनाया गया, उसके विरुद्ध भारतीयों के आक्रोश में उबाल न आना उनके पशुत्व का परिचायक होता।

नाना साहब ने भारतीय नरेशों को लिखे गए अपने गुप्त पत्रों में अंग्रेज़ों की भारतीय राज्यों को हड़पने की नीति का विरोध किया था। व्यपगत के सिद्धान्त के अन्तर्गत सतारा, सम्भलपुर, जैतपुर, बघात, उदयपुर, नागपुर तथा झांसी का विलय किया गया। पुत्रहीन भारतीय शासकों की मृत्यु के बाद उनके राज्यों के विलय की घोषणा तब की गई थी जब कि इंग्लैण्ड के सिंहासन पर एक स्त्री, महारानी विक्टोरिया विराजमान थीं। कर्नाटक, सूरत और तंजौर के राजाओं की उपाधियां छीन ली गईं। पेशवा बाजीराव द्वितीय के दत्तक पुत्र नाना साहब की पेंशन बन्द कर दी गई। यह घोषणा की गई कि बादशाह बहादुरशाह की मृत्यु के बाद उसके वंशजों को दिल्ली के लाल किले को अंग्रेज़ों को सौंपना पड़ेगा। भारतीय शासकों को लगा कि उनका भविष्य असुरक्षित है। उन्हें डर था किसी न किसी बहाने उनके राज्य भी ब्रिटिश साम्राज्य में मिला लिए जाएंगे। एक व्यापारिक कम्पनी की आधीनता स्वीकार करना भी भारतीय शासकों को सहन नहीं था।

3.3.6 तात्कालिक कारण

1853 में ईस्ट इण्डिया कम्पनी की सेना में जो कारतूस प्रचलित किए गए उनको बनाने में गाय और सूअर की चर्बी का उपयोग किया गया था। इन कारतूसों को बैरकपुर के पास एक कारखाने में तैयार किया जाता था। कारतूसों में गाय और सूअर की चर्बी के प्रयोग की बात की पुष्टि इस कारखाने में काम कर रहे भारतीय मज़दूरों ने भी की। मंगल पाण्डे द्वारा 29 मार्च, 1857 को ह्यूसन और लेफ़्टिनेन्ट वाघ की हत्या तथा उसको फांसी दिए जाने का उल्लेख अन्यत्र किया जाएगा।

मंगल पाण्डे को फांसी दिए जाने के बाद अंग्रेज़ों ने 19 नम्बर तथा 34 नम्बर की पलटनों के हथियार ज़ब्त करा, सिपाहियों को बर्खास्त कर दिया पर बैरकपुर छावनी से इन कारतूसों के बारे में यह खबर पूरे हिन्दुस्तान में फैल गई। सर जॉन के ने अपने ग्रंथ *इण्डियन म्युटिनी* में, इतिहासकार विलियम ई0 एच0 लैकी ने अपने ग्रंथ *दि मैप ऑफ़ लाइफ़* में तथा विद्रोह के समय भारत में ही मौजूद लॉर्ड राबर्ट्स ने अपने ग्रंथ *फ़ॉर्टी ईयर्स इन इण्डिया* में इन कारतूसों को चिकना करने वाली ग्रीज़ में गाय की चर्बी होने की बात की पुष्टि की है। 24 अप्रैल, 1857 को मेरठ में तैनात देशी घुड़सवार सेना के 90 लोगों ने ने चर्बी लगे कारतूसों का प्रयोग करने से इंकार कर दिया, 9 मई को इनको बर्खास्त करके बन्दी बना लिया गया। 10 मई को मेरठ छावनी में असन्तोष की चिंगारी विद्रोह की भयंकर ज्वाला में विकसित हो गई।

2.1857 के विद्रोह के तात्कालिक कारण को बताइये

स्व मूल्यांकन हेतु प्रश्न

निम्नलिखित विषयों पर संक्षिप्त टिप्पणी लिखिए:

1 (क) विद्रोह के आर्थिक कारण।

(ख) कारतूसों में चर्बी विषयक विवाद।

2. नीचे लिखे प्रश्नों के उत्तर दीजिए।

(i) व्यपगत का सिद्धान्त किस गवर्नर जनरल के शासनकाल में लागू किया गया था?

(ii) विद्रोह का प्रारम्भ कब और कहां हुआ?

3.4 विद्रोह के प्रमुख नेता

3.4.1 मंगल पाण्डे

मंगल पाण्डे बैरकपुर छावनी की 19 नम्बर की पलटन का एक सिपाही था। कारतूसों में गाय और सूअर की चर्बी होने की खबर से उत्तेजित होकर 29 मार्च, 1857 को उसने अंग्रेज़ अधिकारी ह्यूसन को अपनी बन्दूक से गोली चलाकर मार दिया और लेफ़्टिनेन्ट वाघ की भी हत्या कर दी। हिन्दुस्तानी सिपाहियों ने उसे गिरफ़्तार करने से इंकार कर दिया तो फिर इस काम के लिए गोरे सिपाही भेजे गए, जिनको आता देख मंगल पाण्डे ने अपने सीने में गोली मार ली किन्तु इससे उसकी मृत्य नहीं हुई। घायल मंगल पाण्डे को गिरफ्तार कर लिया गया। मंगल पाण्डे का कोर्टमार्शल किया गया और इस वारदात के 10 दिन बाद ही 8 अप्रैल, 1857 को उसको फांसी दे दी गई।

3.4.2 बादशाह बहादुर शाह ज़फ़र

मुगल बादशाह बहादुर शाह ज़फ़र एक वृद्ध, सैनिक प्रतिभा से हीन, साहित्यिक अभिरुचि का व्यक्ति था और 1857 के विद्रोह में वह विद्रोही सैनिकों के दबाव में विद्रोह का नेतृत्व करने के लिए तैयार हुआ था। किन्तु विद्रोह के नेता के रूप में उसके फ़रमानों तथा ऐलानों में उसकी देशभक्ति और अंग्रेज़ों को हिन्दुस्तान से खदेड़ने की कटिबद्धता के दर्शन होते हैं। विद्रोहियों द्वारा दिल्ली को स्वतन्त्र किए जाने के बाद बादशाह बहादुरशाह के ऐलानों को लैकी ने अपने ग्रंथ *फ़िक्शन्स एक्सपोज़्ड एण्ड उर्दू वर्क्स* में उद्धृत किया है। अपने फ़रमानों

में उसने हिन्दुओं और मुसलमानों को बताया कि आज़ादी अनमोल है। फिरंगी देशवासियों की आज़ादी छीन चुके थे और उनके धर्म–मज़हब पर चोट पर चोट कर रहे थे। बादशाह ने सभी धर्मों की तथा समाज के हर वर्ग के सम्मान रक्षा का वचन दिया और इस स्वतन्त्रता अभियान में प्राण प्रण से कूद पड़ने का उनसे अनुरोध किया। बादशाह ने गो हत्या पर प्रतिबन्ध लगा दिया। अंग्रेज़ी सेना द्वारा दुबारा दिल्ली पर कब्ज़ा किए जाने के बाद धोखे से बादशाह को गिरफ़्तार किया गया। उसके बेटों के कटे सर उसके सामने भेंट के रूप में पेश किए गए। रंगून में एक कैदी के रूप में बहादुर शाह ने अपने जीवन के अन्तिम दिन व्यतीत किए।

3.4.3 नाना साहब पेशवा

कानपुर में अपनी बिठूर की जागीर से पेशवा बाजीराव द्वितीय के दत्तक पुत्र नाना साहब ने पेशवा पद की पुनर्प्राप्ति तथा देश को अंग्रेज़ों के अत्याचारी शासन से मुक्त कराने के लिए 1857 के विद्रोह में भाग लिया था। नाना साहब ने तात्या टोपे तथा रानी लक्ष्मीबाई के सहयोग से अंग्रेज़ों के विरुद्ध अपना अभियान जारी रखा। नाना साहब पर आरोप है कि उनकी आज्ञा से कानपुर में बीबीगढ़ में उनके कैदी सैकड़ों अंग्रेज़ स्त्रियों और बच्चों की निर्ममता से हत्या कर दी गई। नाना साहब में सैन्य कौशल

का अभाव था। अनेक अभियानों में असफल होकर वो नेपाल चले गए और आजीवन अंग्रेज़ों के हाथ नहीं आए।

3.4.4 रानी लक्ष्मीबाई

झांसी के निःसंतान शासक गंगाधर राव की मृत्यु के बाद व्यपगत के सिद्धान्त के अन्तर्गत उनके राज्य का ब्रिटिश साम्राज्य में विलय कर लिया गया था। उनकी विधवा रानी लक्ष्मीबाई ने नाना साहब और तात्या टोपे के साथ मिलकर विद्रोह का नेतृत्व किया। लक्ष्मीबाई की जनानी फ़ौज और गुलाम गौस खां के तोपखाने ने अंग्रेज़ी सेना के दांत खट्टे कर दिए। रानी ने झांसी और कालपी में पराजित होकर ग्वालियर पर अभियान कर उस पर अधिकार कर लिया किन्तु अंग्रेज़ी सेना ने पुनः ग्वालियर पर अधिकार कर लिया। लक्ष्मीबाई ने अंग्रेज़ों से लड़ते हुए जून, 1858 में ग्वालियर में 22 वर्ष की आयु में वीरगति प्राप्त की।

3.4.5 तांत्या टोपे

एक साधारण सैनिक किन्तु अदम्य वीर रामचन्द्र पाण्डुरंग अर्थात् तांत्या टोपे ने मराठों की गुरिल्ला युद्ध नीति अपना कर अंग्रेज़ी फ़ौज को कई बार पराजित किया। उसने नाना साहब पेशवा, रानी लक्ष्मीबाई, शहज़ादा फ़िरोज़शाह आदि का सहयोग किया। कानपुर पर विद्रोहियों के पुनराधिकार का श्रेय तांत्या टोपे को जाता है परन्तु कानपुर पर उसका अधिकार अधिक दिनों तक नहीं रह सका। लक्ष्मीबाई के साथ मिलकर उसने ग्वालियर पर अधिकार कर लिया। ग्वालियर में रानी लक्ष्मी बाई

के बलिदान के बाद तांत्या टोपे ने राजपूताना तथा मध्य भारत में अपना अभियान जारी रखा। अप्रैल, 1859 तक तांत्या का संघर्ष जारी रहा किन्तु अपने एक सहयोगी मानसिंह के विश्वासघात के कारण वह पकड़ा गया और उसे फिर तुरन्त फांसी दे दी गई।

3.4.6 बेगम हज़रत महल

नवाब वाजिदअली शाह की बेगम हज़रत महल 1857 के आन्दोलन की एक प्रमुख सेनानी थीं। बेगम हज़रत महल को कुशासन के बहाने अवध राज्य का ब्रिटिश भारतीय साम्राज्य में लिया तथा वाजिद अली शाह का कलकत्ता निर्वासन स्वीकार्य नहीं था। उन्होंने अपने पुत्र बिरजीस कद्र को अवध का नवाब घोषित किया था। *दि टाइम्स* के सम्वाददाता डब्लू0 एच0 रसेल ने उनकी योग्यता और पराक्रम की प्रशंसा की है। बेगम की फ़ौज में जनानी पल्टन भी थी। बेगम हज़रत महल ने दुश्मन की स्त्रियों के साथ मानवीयता का व्यवहार किया। बेगम युद्ध में हार कर भी

हिम्मत हारने वाली नहीं थीं। लखनऊ पर अंग्रेज़ों का फिर से अधिकार हो जाने के बाद उन्होंने बौंडी से विद्रोह का संचालन किया। बाद में वो अपने बेटे बिरजीस कद्र और अपने समर्थकों के साथ नेपाल चली गईं और फिर आजीवन वहीं रहीं। 1858 के महारानी के घोषणापत्र पर नेपाल से भेजी गई उनकी विश्लेषणात्मक तथा आलोचनात्मक प्रतिक्रिया उनकी राजनीतिक परिपक्वता की परिचायक है। बेगम हज़रत महल ने अंग्रेज़ों के आत्म समर्पण के प्रस्ताव को ठुकरा दिया और निर्वासन में आजीवन अभाव का जीवन व्यतीत किया।

3.4.7 कुंवर सिह

जगदीशपुर तथा आरा के वयोवृद्ध स्वतन्त्रता सेनानी कुंवर सिह विद्रोह के अग्रणी नेता थे। उन्होंने आरा में अंग्रेज़ी ठिकाने पर कब्ज़ा कर लिया और फिर दानापुर के कप्तान डनवर की सेना को पराजित किया। मेजर आयर की सेना से कुंवर सिंह पराजित होकर जगदीश पुर चले गए और फिर मिलमैन, डेम्स, लॉर्ड मार्क, लगर्ड तथा

डगलस की सेना को उन्होंने पराजित किया परन्तु गंगा नदी पार करते समय उनके हाथ में गोली लग गई और उन्हें अपना दायां हाथ खुद काटना पड़ा।
जगदीशपुर पहुंचकर उन्होंने लीग्रैण्ड की सेना को पराजित किया। 26 अप्रैल, 1858 को एक विजेता के रूप में घायल कुंवर सिंह की मृत्यु हो गई।

3.4.8 अमर सिंह

कुंवर सिंह की मृत्यु के बाद उनके छोटे भाई अमर सिंह ने विद्रोहियों के नेतृत्व की कमान सम्भाली। उन्होंने अपने बड़े भाई की रणनीति अपना कर अनेक बार लगर्ड तथा डगलस के नेतृत्व वाली अंग्रेज़ी सेनाओं को पराजित किया। प्रतिकूल परिस्थितियों में भी अक्टूबर, 1858 तक अमर सिंह अंग्रेज़ों का मुकाबला करते रहे। पराजित होने के बाद भी वो अंग्रेज़ों के हाथ नहीं चढ़े और कैमूर की पहाड़ियों में चले गए।

3.4.9 राणा बेनीमाधव

अवध में बैसवाड़ा के शंकरपुर के ताल्लुकदार राणा बेनीमाधव 1857 केविद्रोह के अमर सेनानी थे। राणा छापामार युद्धनीति में निष्णात थे। उन्होंने नवाब बिरजीस कद्र का सहयोग करने के लिए लखनऊ की घेरेबन्दी में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई। विद्रोहियों के अधिकार से लखनऊ छिन जाने के बाद उन्होंने प्रतापगढ़ और सुल्तानपुर में मोर्चा सम्भाला। विद्रोह की असफलता के बाद राणा बेगम हज़रत महल क साथ नेपाल चले गए और वहां अंग्रेज़ों की सहायक गोरखा फ़ौज से लड़ते हुए वो शहीद हुए।

3.4.10 बलभद्र सिंह

चहलारी के ज़मींदार राजा बलभद्र सिंह ने अवध में चहलारी से नवाबगंज आकर विद्रोही सेना का नेतत्व किया। चहलारी से लेकर बाराबंकी तक उन्होंने अंग्रेज़ी सेना के दांत खट्टे किए। सर होप ग्रान्ट ने उनके साहस और उनकी वीरता की प्रशंसा की है। नवाबगंज के युद्ध में पराजय निश्चित हो जाने के बाद भी बलभद्र सिंह लड़ते रहे और रणक्षेत्र में ही उन्होंने वीरगति प्राप्त की।

3.4.11 बख्त खां

रुहेलखण्ड में सैनिक विद्रोह का नेतृत्व करने वाले बख्त खां ने जुलाई, 1857 में दिल्ली प्रवेश किया। बादशाह बहादुरशाह ने दिल्ली की सेना की कमान बख्त खां को सौंप दी। 9 तथा 14 जुलाई को बख्त खां के नेतृत्व में भारतीय सेना ने अंग्रेज़ी सेना को पराजित किया। आभिजात्य वर्ग से सम्बद्ध न होने के कारण कुशल सेनापति होते हुए भी बख्त खां को प्रभावशाली भारतीयों का सहयोग नहीं मिला और नीमच से आई सेना भी उसे सहयोग नहीं दे रही थी। 25 अगस्त से 14 सितम्बर तक बख्त खां ने अंग्रेज़ों से मुकाबला किया किन्तु वह उनको दिल्ली में प्रवेश करने से रोकने में असफल रहा। बख्त खां ने बहादुरशाह को अपने साथ दिल्ली से बाहर निकलने का प्रस्ताव रखा परन्तु गद्दार इलाहीबख्श के बहकावे में बादशाह ने उसकी सलाह नहीं मानी। बख्त खां तो दिल्ली छोड़कर चला गया किन्तु बादशाह को हुमायूं के मकबरे से गिरफ्तार कर लिया गया।

3.4.12 मौलवी अहमदशाह

मौलवी अहमदशाह ने अंग्रेज़ों को हिन्दुस्तान से खदेड़ने के लिए सभी धर्मावलम्बियों का सहयोग मांगा था। उन्होंने अवध और रुहेलखण्ड में अंग्रेज़ी सेनाओं का सामना किया। उन्होंने नाना साहब, बेगम हज़रत महल तथा शहज़ादा फ़िरोज़शाह का समर्थन प्राप्त किया। उन्होंने दो बार कॉलिन कैम्पबेल की सेना को पराजित किया। उनके सर के ऊपर अंग्रेज़ों ने 50000 रुपयों का इनाम रखा था। पोवायां के राजा जगन्नाथ सिंह के विश्वासघात के कारण

अहमदशाह की जून, 1858 में मृत्यु हुई। *हिस्ट्री ऑफ़ दि इण्डियन म्यूटिनी* के लेखक होम्स तथा *इण्डियन म्यूटिनी* के लेखक मालेसन ने मौलाना की सैनिक प्रतिभा की भूरि–भूरि प्रशंसा की है।

3.4.13 शहज़ादा फ़िरोज़शाह

मुगल राजवंश के शहज़ादा फ़िरोज़शाह ने मध्यभारत के मंदसोर से ब्रिटिश सत्ता के विरुद्ध विद्रोह का नेतृत्व किया। वहां तांत्या टोपे ने उनका साथ दिया। मध्य भारत में असफ़ल होने के बाद उन्होंने रुहेलखण्ड तथा अवध में अंग्रेज़ों के विरुद्ध अपना अभियान जारी रखा। विद्रोह के दमन के बाद उन्होंने सिरौंज के जंगल में शरण ली और आजीवन अंग्रेज़ों की पकड़ में नहीं आए।

3.4.14 खान बहादुर खां

रुहेलखण्ड में रुहेले नवाब हाफ़िज़ रहमत अली खां के पौत्र खान बहादुर खां ईस्ट इण्डिया कम्पनी में न्यायधीश के पद पर कार्यरत था किन्तु उसने अंग्रेज़ो के विरुद्ध सशस्त्र विद्रोह में भाग लेने का निश्चय किया। 31 मई को उसके नेतृत्व में बरेली सहित पूरे रुहेलखण्ड पर विद्रोहियों का अधिकार हो गया। बादशाह बहादुर शाह ने उसे रुहेलखण्ड का सूबेदार नियुक्त किया। खान बहादुर खां ने हिन्दुओं को वचन दिया कि स्वाधीनता मिलने के बाद हिन्दुस्तान में गो–हत्या पर प्रतिबन्ध लगा दिया जाएगा। खान बहादुर खां ने अंग्रेज़ी सेना को पराजित किया किन्तु विद्रोहियो की पराजय के बाद वह हिमालय की तराई में जा छिपा। विश्वासघातियों ने उसे गिरफ़्तार करा दिया गया और उसे फांसी दे दी गई।

3.4.15 पीर अली

बिहार में विद्रोह का नेतृत्व करने वाले पटना के एक पुस्तक विक्रेता पीर अली वहाबी आन्दोलन से सम्बद्ध थे। उन्होंने पटना के वहाबी नेता फ़रहत हुसेन, जमादार वारिस अली और पटना के एक रईस लुत्फ़ अली खां के साथ अंग्रेज़ो के विरुद्ध विद्रोह की योजना बनाई। अंग्रेज़ों को उनके गुप्तचरों ने डाक्टर लायल की हत्या में पीर अली के हाथ होने की सूचना दी। उनके घर पर छापा मारकर हथियारों तथा विद्रोह से सम्बद्ध कागज़ातों को बरामद किया गया। 5 जुलाई, 1857 को उन्हें गिरफ़्तार किया गया, उन पर तुरन्त मुकदमा चलाया गया और 7 जुलाई को उन्हें फांसी दे दी गई।

3.4.16 अन्य नेता

गौण्डा के राजा देवी बख्श सिंह ने बेगम हज़रत महल के साथ विद्रोह मे भाग लिया और विद्रोह के असफल होने के बाद उन्हीं के साथ नेपाल चले गए थे। बिलग्राम के निकट रुइया के ताल्लुकदार राजा नरपत सिंह ने कर्नल होप की सेना को परास्त किया और उसे मार डाला। उन्होंने शहज़ादा फ़िरोज़शाह, मौलवी अहमदशाह तथा बेगम हज़रत महल का सहयोग किया और बाद में वह भी बेगम के साथ नेपाल चले गए। उन्नाव जिले के डौंडिया खेड़ा के ताल्लुकदार राजा राव राम बख्श सिंह ने राणा बेनीमाधव के साथ बैसवाड़ा में विद्रोह का नेतृत्व किया। अवध की पराजय के बाद वह अज्ञातवास में चले गए परन्तु अपने एक सेवक के विश्वासघात के कारण वह गिरफ़्तार हुए और उन्हें फांसी दे दी गई। उदा देवी पासी ने नवम्बर, 1857 में लखनऊ में सिकन्दराबाद के युद्ध में पुरुष वेश में भाग लेकर एक पेड़ पर चढ़कर अनेक अंग्रेज़ों को अपनी बन्दूक से मार गिराया। अंग्रेज़ों की गोली से वह शहीद हुई। रानी लक्ष्मीबाई की सहयोगिनी झलकारी देवी ने विद्रोह में अपनी वीरता का प्रदर्शन किया और वीरगति प्राप्त की।

2. **विद्रोह के प्रमुख नेताओं के नाम लिखिये–**

स्वमूल्यांकन हेतु प्रश्न

निम्नलिखित विषयों पर संक्षिप्त टिप्पणी लिखिए:

1 (क) बादशाह बहादुर शाह के फ़रमानों में हिन्दू–मुस्लिम एकता की भावना।

(ख) 1857 के विद्रोह में बेगम हज़रत महल की भूमिका।

2. नीचे लिखे प्रश्नों के उत्तर दीजिए।

(i) रानी लक्ष्मीबाई ने कालपी से चलकर किस नगर पर अधिकार किया था?

(ii) जगदीशपुर तथा आरा में किसने विद्रोह का नेतृत्व किया था?

3.5 विद्रोह की असफलता के कारण

3.5.1 सैनिक असफलता

1857 का विद्रोह एक सुनिश्चित योजना पर आधारित विद्रोह नहीं था यद्यपि इसकी योजना गुप्त रूप से बहुत समय से बनाई जा रही थी। कमल और रोटी के वितरण की घटनाओं से इसकी पुष्टि भी होती है किन्तु योजना बनाने वालों में आपसी तारतम्य नहीं था। विद्रोह के लिए एक तिथि निश्चित कर दी गई थी किन्तु उससे पहले ही मंगल पाण्डे ने दो अंग्रेज़ सैनिक अधिकारियों की हत्या कर दी। इस घटना ने अंग्रेज़ों को एक सीमा तक सावधान कर दिया।

विद्रोही सैनिकों की तुलना में अंग्रेज़ सैनिक अधिक प्रशिक्षित थे और उनके पास अपेक्षा कृत आधुनिक हथियार थे। अंग्रेज़ी सेना की रणनीति विद्रोही सेना की तुलना में कहीं श्रेष्ठ थी। अंग्रेज़ सैनिकों में उत्कट देशभक्ति थी तथा अदम्य साहस था। लखनऊ रेज़ीडेन्सी की, जिन प्रतिकूल परिस्थितियों में अंग्रेज़ों ने रक्षा की थी वह उनके सैन्य कौशल का जीवन्त प्रमाण थी। विद्रोही सैनिकों में अनुशासन, आपसी तालमेल और संगठन का अभाव था। लूटपाट में लिप्त होने के कारण विद्रोही सैनिकों को जनता का सहयोग व सहानुभूति पूरी तरह प्राप्त नहीं हो सकी।

अंग्रेज़ों को रेलवे तथा तार व्यवस्था के कारण संचार तथा यातायात में बहुत सुविधा प्राप्त थी। सैनिकों के आवागमन में रेलवेज़ की तथा आवश्यक संदेशों को तुरन्त ग्रहण करने व पहुंचाने की व्यवस्था में तार विभाग की महत्वपूर्ण भूमिका थी।

अंग्रेज़ी सेना की शक्ति बढ़ाने के लिए इंग्लैण्ड से अधिक से अधिक सैनिक भेजे जा रहे थे। भारत में गोरखे तथा सिख सैनिक विद्रोह का दमन करने में अंग्रेज़ सैनिकों का पूर्ण सहयोग कर रहे थे।

3.5.2 विद्रोहियों में कुशल नेतृत्व का अभाव

मुगल बादशाह बहादुर शाह ज़फ़र तथा नाना साहब पेशवा दो ऐसे व्यक्ति थे जिनको उनकी प्रतिष्ठा के कारण विद्रोही अपना नेता मान सकते थे किन्तु इन दोनों में ही नेतृत्व की क्षमता नहीं थी। बख्त खां, मौलवी अहमदशाह, रानी लक्ष्मी बाई, तांत्या टोपे और कुंवर सिंह में सैनिक प्रतिभा थी किन्तु उनके सीमित प्रभाव क्षेत्र के कारण सभी विद्रोही उनको अपना नेता मानने को तैयार नहीं हो सकते थे।

3.5.3 विद्रोहियों के पास आर्थिक संसाधनों की कमी

विद्रोहियों का आर्थिक आधार सुदृढ़ नहीं था जब कि अंग्रेज़ों के पास अपने आर्थिक संसाधनों की कोई कमी नहीं थी और उन्हें अपने मित्र भारतीय शासकों, ज़मींदारों तथा व्यापारियों से भी वित्तीय सहायता मिल रही थी।

3.5.4 अधिकांश भारतीय शासकों, ताल्लुकदारों तथा ज़मींदारों का विद्रोह में भाग न लेना

हैदराबाद के निज़ाम, महाराजा पटियाला और ग्वालियर के सिंधिया अंग्रेज़ों का साथ दे रहे थे। मुगल बादशाह और नाना साहब को छोड़कर कोई भी प्रतिष्ठित भारतीय शासक विद्रोहियों के साथ नहीं था। अधिकांश ज़मींदार तथा ताल्लुकदार इस विद्रोह में अंग्रेज़ों के साथ थे।

3.5.5 व्यापारी वर्ग का एक बड़ा हिस्सा अंग्रेज़ों के साथ

भारतीय व्यापारी वर्ग की दूरदर्शिता ने उसको प्रायः विद्रोहियों का साथ देने से रोक दिया। अनेक भारतीय व्यापारियों ने संकट में अंग्रेज़ों की मदद भी की।

3.5.6 भारतीय बुद्धिजीवियों का विद्रोहियों से असहयोग

भारतीय बुद्धिजीवी विद्रोहियों की पुरातनपंथी राजनीतिक, सामाजिक–धार्मिक व आर्थिक दृष्टि के समर्थक नहीं थे। उनको अयोग्य मुगल बादशाह या असमर्थ पेशवा के फिर से सिंहासनारूढ़ होने में देश का कोई हित नहीं दिखाई देता था। उनकी दृष्टि में विद्रोहियों के शासन की तुलना में अंग्रेज़ों का शासन कहीं श्रेष्ठ था।

3.5.7 विद्रोह का सीमित क्षेत्र

1857 के विद्रोह का क्षेत्र सीमित था। यह पश्चिमोत्तर प्रान्त के पश्चिमी भाग, दिल्ली, रुहेलखण्ड, अवध, पश्चिमोत्तर प्रदेश के पूर्वी भाग, बिहार तथा मध्य प्रान्त के कुछ भाग तक सीमित था। दक्षिण भारत, पश्चिम भारत, बंगाल, पंजाब आदि इस विद्रोह से बिलकुल अछूते थे। मालवा, राजस्थान के शासकों की कुछ सेनाओं ने इसमें अवश्य भाग लिया किन्तु इन क्षेत्रों में विद्रोह की ज्वाला प्रचण्ड नहीं हो सकी अतः इस विद्रोह के दमन हेतु ब्रिटिश संसाधन पर्याप्त सिद्ध हुए।

3.1857 विद्रोह की असफलता के कारणों पर प्रकाश डालिये–

स्व मूल्यांकन हेतु प्रश्न

निम्नलिखित विषयों पर संक्षिप्त टिप्पणी लिखिएः

1 (क) विद्रोहियों की सैन्य दुर्बलता।

(ख) विद्रोह का सीमित क्षेत्र।

2. नीचे लिखे प्रश्नों के उत्तर दीजिए।

(i) क्या बादशाह बहादुरशाह एक कुशल सेनानायक था?

(ii) क्या विद्रोही लखनऊ रेज़ीडेन्सी पर अधिकार कर पाए थे?

3.6. सार संक्षेप

1857 के विद्रोह की पृष्ठभूमि तैयार करने में विचारकों, साहित्यकारों, पण्डितों, मौलवियों, कूटनीतिज्ञों तथा शासकों की भूमिका रही। इसका आरम्भ एक सैनिक विद्रोह के रूप में ही हुआ था किन्तु धीरे–धीरे यह भारत के एक बड़े भू–भाग में, विशेषकर उत्तर भारत में फैल गया और इसमें आम जनता भी सम्मिलित हो गई। विद्रोह में सम्मिलित होने वालों का परम उद्देश्य भारत से फिरंगी शासन को समाप्त करना था। ईस्ट इण्डिया कम्पनी के शासन में ईसाई मिशनरियों के धर्म प्रचार, अंग्रेज़ों की सामाजिक सुधार तथा अंग्रेज़ी शिक्षा के प्रसार की नीति को भारतीय अपने धर्म पर चोट मानते थे। विद्रोह का तात्कालिक कारण भारतीय सैनिकों को उपलब्ध किए जाने वाले कारतूसों में हिन्दुओं के लिए पवित्र गाय की और मुसलमानों के लिए अपवित्र सूअर की चर्बी होना था। अंग्रेज़ी शासन में व्यापार और उद्योग की अवनति हुई थी। किसानों पर लगान का भारी बोझ लाद दिया गया था। सैनिक

असन्तोष को 1857 के विद्रोह के लिए मुख्य रूप से उत्तरदायी माना जाता है। भारतीय शासकों ने अंग्रेज़ों की भारतीय राज्यों को हड़पने की नीति का विरोध किया था।

मुगल बादशाह बहादुर शाह, नाना साहब पेशवा, बेगम हज़रत महल, रानी लक्ष्मी बाई, तांत्या टोपे, कुंवर सिह, राना बेनी माधव, शहज़ादा फ़िरोज़शाह, मौलवी अहमदशाह, बख्त खां आदि ने इस विद्रोह का नेतृत्व किया।

विद्रोहियों में कुशल नेतृत्व का अभाव, विद्रोहियों में सैन्य कौशल व आधुनिक हथियारों की कमी, अंग्रेज़ी सेना की श्रेष्ठता तथा उसके पास आधुनिक हथियारों का होना, अंग्रेज़ों में प्रबल देशभक्ति की भावना होना, विद्रोहियों का सुदृढ़ आर्थिक आधार न होना, अधिकांश भारतीय शासकों का विद्रोह में तटस्थ रहना, कुछ का खुलेआम अंग्रेज़ों का साथ देना तथा भारतीय बुद्धिजीवियों का इस विद्रोह के प्रति उदासीन रहना विद्रोह की असफलता के लिए उत्तरदायी कारण कहे जा सकते हैं।

3.7.पारिभाषिक शब्दावली

विप्लवः क्रान्ति
पैरवीः बचाव
अपदस्थः हटाया गया (गद्दी से)
सवर्णः वर्ण व्यवस्था के अन्तर्गत तीन ऊँचे वर्ण अर्थात् ब्राह्मण, क्षत्रिय तथा वैश्य
बर्बरः असभ्य, जंगली
मुक्त व्यापारः दो राज्यों अथवा देशों के मध्य बिना किसी बन्धन अथवा रोकटोक के व्यापार की व्यवस्था
ऊपरी दोआबः गंगा और यमुना के बीच के भू भाग का ऊपरी क्षेत्र
जातीय अभिमानः अपनी जाति, नस्ल की श्रेष्ठता पर गर्व करने की प्रवृत्ति
इश्तहारः विज्ञापन
खिराजः कर
फ़रमानः शाही आज्ञा
गुरिल्ला युद्ध नीतिः छापामार युद्ध नीति

3.8.सन्दर्भ ग्रंथ

मजूमदार, आर0 सी0 (सम्पादक) –*ब्रिटिश पैरामाउंट्सी एण्ड इण्डियन रिनेसा,* दो भागों मे, बॉम्बे, 1965
मजूमदार, आर0 सी0 (सम्पादक) – *सिपॉय म्यूटिनी एण्ड दि रिबेलियन, 1857,*
कलकत्ता, 1957
सेन, एस0 एन0: *एटीन फिफ़्टी सेवेन,* 1957, नई दिल्ली
ताराचन्दः *भारतीय स्वतन्त्रता आन्दोलन का इतिहास* (चार भागों में), नई दिल्ली, 1984
मार्क्स तथा एन्जेल्सः *दि फ़र्स्ट वार ऑफ़ इण्डिपेन्डेन्स,* नई दिल्ली, 1980
खां, मोईनुद्दीन हसन – *ग़दर – 1857,* दिल्ली, 2003
सुन्दरलाल – *भारत में अंग्रेज़ी राज* (भाग 2), दिल्ली, 1960

3.9 स्व मूल्यांकित प्रश्नों के उत्तर

1 (क) देखिए 3.3.3 आर्थिक कारण।
(ख) देखिए 3.3.6 तात्कालिक कारण।
2. (i) लॉर्ड डलहौज़ी द्वारा।
(ii) 10 मई, 1857 को मेरठ में।
1 (क) देखिए 3.4.2 बादशाह बहादुर शाह ज़फ़र।

(ख) देखिए 3.4.6 बेगम हज़रत महल।

2. (i) ग्वालियर पर।

(ii) कुंवर सिंह ने ।

1 (क) देखिए 3.5.1 सैनिक असफलता।

(ख) देखिए 3.5.7 विद्रोह का सीमित क्षेत्र।

2. (i) नहीं।

(ii) नहीं।

3.10 अभ्यास प्रश्न

1. 1857 के विद्रोह के धार्मि कारणों पर प्रकाश डालिए।
2. व्यपगत के सिद्धान्त की समीक्षा कीजिए।
3. 1857 के विद्रोह में मंगल पाण्डे की भूमिका पर प्रकाश डालिए।
4. तांत्या टोपे की 1857 के विद्रोह में भूमिका की समीक्षा कीजिए।
5. क्या 1857 के विद्रोह में भारतीयों की असफलता का मुख्य कारण कुशल नेतृत्व का अभाव...था।

4.1 प्रस्तावना
4.2 इकाई के उद्देश्य
4.3 विद्रोह का विस्तार
    4.3.1 बैरकपुर छावनी
    4.3.2 मेरठ छावनी
    4.3.3 दिल्ली
    4.3.4 अवध, कानपुर तथा रुहेलखण्ड
    4.3.5 झांसी तथा मध्य भारत
    4.3.6 बिहार तथा पश्चिमोत्तर प्रदेश का पूर्वी भाग
    4.3.7 राजस्थान
    4.3.8 अन्य क्षेत्र
4.4 विद्रोह की प्रकृति
    4.4.1 सैनिक विद्रोह
    4.4.2 धार्मिक विद्रोह
    4.4.3 आर्थिक असन्तोष
    4.4.4 मध्यकालीन राजनीतिक व्यवस्था को पुनर्स्थापित करने का प्रयास
    4.4.5 राष्ट्रीय विद्रोह तथा प्रथम स्वतन्त्रता संग्राम
    4.4.6 विद्रोह की प्रकृति विषयक अन्य विचार
4.5 विद्रोह के परिणाम तथा उसका महत्व
    4.5.1 मुगल साम्राज्य का अन्त
    4.5.2 विद्रोह के बाद दमन तथा प्रतिशोध
    4.5.3 भारत में ईस्ट इण्डिया कम्पनी के शासन की समाप्ति तथा ब्रिटिश ताज के अधीन भारत
    4.5.4 महारानी का घोषणापत्र
    4.5.5 राजनीतिक तथा संवैधानिक सुधार तथा राजनीतिक चेतना का प्रसार
    4.5.6 सामाजिक तथा धार्मिक नीति में परिवर्तन
    4.5.7 आर्थिक दोहन
    4.5.8 सैनिक नीति में परिवर्तन
    4.5.9 अंग्रेज़ों की फूट डालो और शासन करो की नीति
4.6 विद्रोह का महत्व
4.7 .सार संक्षेप
4.8. पारिभाषिक शब्दावली
4.9. सन्दर्भ ग्रंथ
4.10 स्व मूल्यांकन हेतु प्रश्नों के उत्तर
4.11अभ्यास प्रश्न

4.1 प्रस्तावना

भारत में अंग्रेज़ी शासन को भारतीय जनता ने कभी भी दिल से स्वीकार नहीं किया था। अंग्रेज़ों की सर्वथा भिन्न शासन पद्धति, धर्म, भाषा, रहन–सहन, आचार–विचार, राजनीतिक दृष्टि, रणनीति तथा उनकी आर्थिक शोषण की नीति को सहन कर पाना उसके लिए कठिन था। 10 मई, 1857 में प्रारम्भ हुए विद्रोह से पहले अंग्रेज़ी शासन को हटाने के अनेक प्रयास हुए थे। हैदर अली, टीपू ने प्राण प्रण से उन्हें भारत से निष्कासित करने का असफल प्रयास किया था। अठारहवीं शताब्दी में सन्यासी विद्रोह में साधु–सन्तों ने अंग्रेज़ों के विरुद्ध अभियान का नेतृत्व किया था।

अठारहवीं शताब्दी के उत्तरार्ध से लेकर 1856 तक मिदनापुर, रंगपुर, जोरहट, चिटगांव, वीरभूम, विजयानगरम, कोट्टायम, त्रावनकोर, मैसूर, वेल्लोर, सिलहट, पलामू, खानदेश, मालवा, सूरत, नागपुर, सिंहभूम आदि में सैनिकों, किसानों, कारीगरों और आदिवासियों ने ब्रिटिश दमन के विरुद्ध विद्रोह किए थे। वहाबी आन्दोलन के नेताओं ने अपने धर्म की रक्षार्थ अंग्रेज़ों के विरुद्ध जिहाद छेड़ा था। इस विद्रोह ने असफल होने के बावजूद अंग्रेज़ी शासन की दिशा और दशा बदल दी और भारतीयों के लिए भी एक नए युग का सूत्रपात किया।

4.2 इकाई के उद्देश्य

1857 के विद्रोह के विषय में इतिहासकारों में व्यापक मतभेद है। सैनिक विद्रोह से लेकर इसे प्रथम स्वतन्त्रता संग्राम की संज्ञा दी गई है। इस इकाई का उद्देश्य 1857 के विद्रोह के विषय में विस्तृत, प्रामाणिक, विश्लेषणात्मक और निष्पक्ष जानकारी उपलब्ध कराना है। इस इकाई को पढ़ने के बाद आप जानेंगेः

- विद्रोह की व्याप्ति और उसका विस्तार।
- 1857 के विद्रोह की प्रकृति और उसके स्वरूप के विषय में विभिन्न मत–मतान्तर।
- विद्रोह के दमन तथा उसके परिणाम।
- भारतीय इतिहास में 1857 के विद्रोह का महत्व।

4.3 विद्रोह का विस्तार

4.3.1 बैरकपुर छावनी

विद्रोह की चिंगारी कलकत्ता के समीप बैरकपुर में तैनात 19 वीं तथा 34 वीं नेटिव इन्फ़ैन्ट्री के भारतीय सैनिकों ने लगाई। 29 मार्च, 1857 को गाय और सूअर की चर्बी से युक्त कारतूसों को भारतीय सिपाहियों को प्रयोग हेतु दिए जाने की खबर से क्रुद्ध सिपाही मंगल पाण्डे ने दो अंग्रेज़ अधिकारियों की हत्या कर दी। मंगल पाण्डे पर मुकदमा चला कर उसको तुरन्त फांसी दे दी गई और 19 वीं तथा 34 वीं नेटिव इन्फ़ैन्ट्री को भंग कर विद्रोह को दबा दिया गया।

4.3.2 मेरठ छावनी

मेरठ छावनी में तीसरी कैवेलरी रेजीमेन्ट ने गाय और सूअर की चरबी से युक्त कारतूसों का प्रयोग करने से इंकार कर दिया क्योंकि इनकी टोपियों को उन्हें अपने दांतों से काटकर खोलना होता था और इससे हिन्दू व मुसलमान दोनों का धर्म भ्रष्ट होता था। 24 अप्रैल को कारतूसों का प्रयोग करने के आदेश का पालन न करने पर 85 सिपाही बन्दी बना लिए गए और 9 मई को उनको 10–10 साल की सज़ा भी सुना दी गई। इसके विरोध में 10 मई को विद्रोह फूट पड़ा। मेरठ पर अधिकार करने के बाद विद्रोहियों ने दिल्ली पर अपना अधिकार करने के लिए उसी दिन दिल्ली की ओर कूच किया।

4.3.3 दिल्ली

11 मई, 1857 को दिल्ली पर मेरठ से पहुंची विद्रोही सेना का अधिकार हो गया। विद्रोहियों ने बादशाह बहादुर शाह को अपना नेता बनाया और उसे अपना बादशाह घोषित किया। बहादुर शाह ने रूहेलखण्ड से आए

बख्त खां को दिल्ली का सूबेदार बनाया। विद्रोहियों ने अंग्रेज़ों के सभी ठिकानों को नष्ट कर दिया और उनकी युद्ध सामग्री व खज़ाने पर अपना अधिकार कर लिया। विद्रोहियों की सेना में आपसी तालमेल न होने के कारण अंग्रेज़ी सेना को सफलता मिली। जनरल विल्सन के नेतृत्व में 20 सितम्बर, 1857 को दिल्ली पर अंग्रेज़ों का पुनः अधिकार हो गया और इलाही बख्श के विश्वासघात के कारण 21 सितम्बर, 1857 को बादशाह बहादुरशाह हुमायूं के मकबरे से गिरफ़्तार हुआ।

4.3.4 अवध, कानपुर तथा रुहेलखण्ड

30 मई, 1857 को पूरे अवध में विद्रोह की ज्वाला एक साथ भड़की और दस दिन के अन्दर ही ब्रिटिश सत्ता का नामोनिशान भी नहीं रहा। फ़ैज़ाबाद से शाहजहांपुर तक मौलवी अहमदशाह, उन्नाव, राबरेली तथा प्रतापगढ़ तक राणा बेनीमाधव तथा राव रामबख्श, बाराबंकी, गौण्डा से नेपाल सीमा तक राजा देवी बख्श सिंह, रानी तुलसीपुर तथा राजा बलभद्र सिंह और लखनऊ में बेगम हज़रत महल व उनके पुत्र बिरजीस कद्र ने विद्रोही सेना का नेतृत्व किया। आमने–सामने के युद्धों में विद्रोही सेना को अधिक सफलता नहीं मिली किन्तु छापामार युद्ध में उन्होंने अनेक बार अपना कौशल दिखाया। ग्रामीण जनता ने इसमें विद्रोही सेनाओं का बड़ा साथ दिया। लखनऊ रेज़ीडेन्सी की रक्षा में अंग्रेज़ों ने अद्‌भुत वीरता और साहस का परिचय दिया। जनरल कॉलिन कैम्पबेल ने अन्त में 23 अक्टूबर, 1857 को लखनऊ पर अंग्रेज़ों ने फिर अधिकार कर लिया। राणा बेनीमाधव तथा अन्य ने अवध में अप्रैल, 1859 तक विद्रोह जारी रखा किन्तु विजय अंग्रेज़ों के हाथ ही लगी और नाना साहब, बेगम हज़रत महल, और बिरजीस कद्र सहित अनेक विद्रोहियों ने नेपाल की तराई में शरण ली।

नाना साहब पेशवा, उसके परिवार के सदस्यों, अज़ीमुल्ला खां तथा तांत्या टोपे ने कानपुर से विद्रोह का नेतृत्व किया। ब्रिटिश छावनी के विद्रोही सैनिक नाना साहब के सैनिकों से मिल गए। 26 जून, 1857 को कानपुर पर विद्रोहियों का अधिकार हो गया किन्तु 17 जुलाई, 1857 को जनरल हैवलॉक ने कानपुर को पुनः जीत लिया। तांत्या टोपे ने कानपुर पर फिर अधिकार किया किन्तु 6 दिसम्बर को कॉलिन कैम्पबेल ने कानपुर को वापस जीत लिया।

रूहेलखण्ड में खानबहादुर खां के नेतृत्व में 31 मई, 1857 को विद्रोह प्रारम्भ हुआ। जनरल सिबल्ड सहित अनेक अंग्रेज़ मारे गए। बरेली, मुरादाबाद, शाहजहांपुर और बदायूं को स्वतन्त्र करा लिया गया। रूहेलखण्ड से बख्त खां के नेतृत्व में एक सेना दिल्ली कूच कर गई। शहज़ादा फ़िरोज़ शाह, नाना साहब का भाई बाला साहब, मौलवी अहमद शाह और बेगम हज़रत महल ने भी रुहेलखण्ड में अपनी गतिविधियां जारी रखीं किन्तु इनमें से सभी अपने प्रयासों में असफल रहे। अन्त में रुहेलखण्ड पर भी अंग्रेज़ों का अधिकार हो गया।

4.3.5 झांसी तथा मध्य भारत

व्यपगत के सिद्धान्त के अन्तर्गत ब्रिटिश साम्राज्य में विलीन किए गए झांसी के राज्य में 4 जून, 1857 को विद्रोह प्रारम्भ हुआ। रानी लक्ष्मीबाई ने विद्रोहियों का नेतृत्व किया। विद्रोहियों ने झांसी के किले पर अधिकार कर लिया, लगभग 10 महीने तक झांसी पर रानी का अधिकार रहा पर अप्रैल, 1858 में अंग्रेज़ों ने उस पर पुनः अधिकार कर लिया। रानी लक्ष्मीबाई ने कालपी की ओर कूच किया जहां सर ह्यू रोज़ ने विद्रोही सेना को पराजित किया। कालपी से रानी अंग्रेज़ों के मित्र सिंधिया के राज्य ग्वालियर की ओर बढ़ी और उस पर उसने अपना अधिकार कर लिया। ग्वालियर के किले को अंग्रेज़ों ने जीत लिया। ग्वालियर में ही रानी लक्ष्मीबाई अंग्रेज़ों से लड़ते–लड़ते वीरगति को प्राप्त हुई।

मध्य भारत में गोण्ड राजा शंकर सिंह तथा उनके पुत्र ने जबलपुर की 52 नम्बर की देशी पल्टन को विद्रोहियों में शामिल कर लिया। शहज़ादा फिरोज़शाह ने मंदसौर, धार, महीदपुर तथा गोरिया में अभियान किए किन्तु उन्हें सफलता नहीं मिली बाद में वह रुहेलखण्ड चले गए। इन्दौर में भी सैनिक विद्रोह हुआ। तात्या टोपे ने मध्य भारत में अपनी गतिविधियां जारी रखीं, ग्वालियर राज्य के 20000 सैनिक उसके साथ हो गए पर असफल होने के बाद वहां से वह राजपूताना चला गया।

4.3.6 बिहार तथा पश्चिमोत्तर प्रदेश का पूर्वी भाग

बिहार में तिरहुत, दानापुर, मुज़फ़्फ़रपुर, रोहिणी, देवधर तथा हज़ारीबाग में सैनिक विद्रोह हुए। विद्रोह में संथालों ने भी भाग लिया। पटना में विद्रोह का नेतृत्व करने वाले पीर अली वहाबी आन्दोलन से सम्बद्ध थे। जगदीशपुर तथा आरा के वयोवृद्ध स्वतन्त्रता सेनानी कुंवर सिह ने आरा में अंग्रेज़ी ठिकाने पर कब्ज़ा कर लिया और फिर दानापुर के कप्तान डनवर की सेना को पराजित किया। उन्होंने जगदीशपुर में अंग्रेज़ी सेना से कई युद्ध किए। कुंवर सिंह की मृत्यु के बाद उनके छोटे भाई अमर सिंह ने विद्रोहियों के नेतृत्व की कमान सम्भाली।

पश्चिमोत्तर प्रान्त के पूर्वी भाग बनारस, गोरखपुर, आज़मगढ़, जौनपुर तथा इलाहाबाद में सैनिक विद्रोह हुए तथा सरकारी खज़ाना लूट लिया गया। इलाहाबाद शहर पर भी विद्रोहियों का अधिकार हो गया, मौलवी लियाकत अली को बादशाह ने इलाहाबाद का सूबेदार बनाया। जनरल नील ने बनारस और इलाहाबाद पर पुनराधिकार करने में सफलता प्राप्त की और वहां भयंकर नर–संहार किया।

4.3.7 राजस्थान

राजस्थान में भारतीय शासकों ने विद्रोह में भाग नहीं लिया। परन्तु भारतीय रियासतों की सेना तथा अंग्रेज़ी छावनियों में विद्रोह की चिंगारी अवश्य पहुंची। राजस्थान में विद्रोह नसीराबाद तथा नीमच में सैनिक विद्रोह हुए। विद्रोह की ज्वाला, टोंक, अलवर कोटा, अजमेर, भरतपुर, धौलपुर तथा जोधपुर के निकट आउवा आदि स्थानों तक भी पहुंची। आउवा में जागीरदार कुशाल सिंह ने आम जनता के सहयोग से अंग्रेज़ों और महाराजा जोधपुर की संयुक्त सेना को पहली मुठभेड़ में पराजित किया परन्तु बाद में आउवा गढ़ का पतन हो गया। तांत्या टोपे ने मध्य भारत में असफल होकर राजस्थान में अपनी गतिविधियां जारी रखीं। कोटरा के युद्ध में वह पराजित हुआ। अलवर में मानसिंह के विश्वासघात से वह अप्रैल, 1859 को पकड़ा गया।

4.3.8 अन्य क्षेत्र

पंजाब में फ़ीरोज़पुर, पेशावर, जालन्धर, फ़िल्लौर, लुधियाना आदि क्षेत्रों में देशी पल्टनों ने विद्रोह किया। विद्रोही सेना ने 6 जुलाई, 1857 को आगरे पर अधिकार कर लिया। इटावा, मैनपुरी, फ़र्रुखाबाद में भी विद्रोह का विस्तार हुआ। गुजरात में 1857–58 में भगोजी नायक तथा काजर सिंह के नेतृत्व में भीलों ने अंग्रेज़ों के विरुद्ध विद्रोह किया। अहमदाबाद, राजपीपला बड़ौदा में सैनिक विद्रोह हुए। बापू गायकवाड़ ने बड़ौदा पर अधिकार कर उसे विद्रोह का प्रमुख केन्द्र बनाना चाहा परन्तु वह बन्दी बना लिया गया। पश्चिम तथा दक्षिण भारत में कोल्हापुर, बेलगांव, धारवाड़, ज़ोरापुरा, वेल्लूर आदि स्थानों में देशी पल्टनों ने विद्रोह किया किन्तु उनका दमन कर दिया गया। सामान्यतः पश्चिम भारत तथा दक्षिण भारत विद्रोह से अधिक प्रभावित नहीं हुए।

1. **1857 के विद्रोह के विस्तार को लिखिये–**

स्व मूल्यांकन हेतु प्रश्न

निम्नलिखित विषयों पर संक्षिप्त टिप्पणी लिखिए:

1 (क) मेरठ छावनी में विद्रोह।

(ख) विद्रोह का बिहार में विस्तार।

2. नीचे लिखे प्रश्नों के उत्तर दीजिए।

(i) क्या दक्षिण भारत में विद्रोह का व्यापक प्रसार हुआ था?

(ii) बेगम हज़रत महल ने किसको अवध का शासक घोषित किया था?

4.4 विद्रोह की प्रकृति

4.4.1 सैनिक विद्रोह

10 मई, 1857 को मेरठ छावनी में विधिवत विद्रोह का आरम्भ सैनिकों द्वारा ही किया गया। ब्रिटिश सेना में तैनात भारतीय सैनिकों को सेना में जाति, वर्ण और धर्म के नाम पर भेदभाव की नीति स्वीकार्य नहीं थी। सेना में सभी उच्च पद गोरों के लिए सुरक्षित थे। अंग्रेज़ सैनिक अधिकारी अपने जातीय अहंकार में डूबे रहते थे। भारतीय सैनिकों

को किसी भी आदेश का पालन करने में तनिक भी शंका करने पर कठोर दण्ड दिया जाता था। विद्रोही सैनिकों ने दिल्ली कूच करके बादशाह बहादुरशाह को विद्रोह का नेतृत्व करने के लिए बाध्य किया। विद्राहियों ने दिल्ली में सैनिक प्रशासन और सैनिक न्याय व्यवस्था की स्थापना की। बादशाह द्वारा दिल्ली के सूबेदार बनाए जाने पर बख्त खां ने यह स्पष्ट कर दिया था कि वह सुप्रीम काउंसिल के निर्णयों में बादशाह या शाही परिवार के सदस्यों के हस्तक्षेप को सहन नहीं करेगा। विद्रोह के संचालन का अधिकार अब सिपाहियों के हाथ में था। विद्रोह के लगभग सभी केन्द्रों में इसका आरम्भ सैनिकों द्वारा ही किया गया। इस विद्रोह में बंगाल आर्मी के एक लाख से अधिक सैनिकों ने भाग लिया। भारतीय रियासतों की भंग सेनाओं के पूर्व सैनिकों ने भी इसमें भाग लिया। इन तथ्यों के आधार पर आर0 सी0 मजूमदार, बॉल जैसे साम्राज्यवादी इतिहासकार की विचारधारा का अनुकरण करते हुए 1857 के विद्रोह को एक सैनिक विद्रोह मात्र मानते हैं। टी राइस होम्स की पुस्तक *हिस्ट्री ऑफ़ इण्डियन म्यूटिनी* में इस विद्रोह को मात्र सैनिक विद्रोह बताया गया है। एलेक्ज़ेण्डर डफ़, विन्सेन्ट स्मिथ और विलियम म्यूर भी उसके विचार से सहमत हैं। सर सैयद अहमद ने अपने ग्रंथों *असबाबे बगावते हिन्द* तथा *सरकशी–ए–बिजनौर* में इस विद्रोह को भारतीय सैनिकों की अनुशासनहीनता और उनके धार्मिक उन्माद के रूप में चित्रित किया है। महारानी विक्टोरिया के घोषणा पत्र में भी इस विद्रोह को मुख्य रूप से एक सैनिक विद्रोह ही माना गया है।

4.4.2 धार्मिक विद्रोह

1857 के विद्रोह का तात्कालिक कारण गाय और सूअर की चर्बी लगे कारतूसों को प्रयोग करने के लिए हिन्दू और मुसलमान सिपाहियों को बाध्य किया जाना था। सवर्ण हिन्दू सैनिकों के लिए समुद्र यात्रा धार्मिक दृष्टि से वर्जित थी 1824 में बैरकपुर के जवानों ने समुद्र मार्ग से बर्मा जाने से इन्कार कर दिया था। धर्म–सूचक चिह्न तिलक, पगड़ी लगाने, पूजा करने, नमाज़ पढ़ने तथा जात–पांत के बन्धनों के पालन पर प्रतिबन्ध लगाए जाने से भी सिपाहियों की धार्मिक भावना को ठेस पहुंचती थी। ईस्ट इण्डिया कम्पनी के शासन में अनेक मन्दिरों तथा मस्जिदों की माफ़ी की जागीरें ज़ब्त कर ली गईं। ईसाई मिशनरियों को ईस्ट इण्डिया कम्पनी के शासन में धर्म प्रचार की न केवल खुली छूट थी बल्कि उन्हें सरकारी संरक्षण भी प्राप्त था। अपना धर्म परिवर्तित कर ईसाई बन जाने वाले भारतीयों को आर्थिक लाभ, नौकरी, पदोन्नति, उनके बच्चों को निःशुल्क शिक्षा तथा सामाजिक प्रतिष्ठा का प्रलोभन दिया जाता था। शिक्षा प्रचार के नाम पर भारतीयों को उनके धर्म से विमुख किया जा रहा था और विद्यार्थियों में ईसाई धर्म के संस्कार डाले जा रहे थे। आम भारतीय के लिए अंग्रेज़ी शासन का बने रहना उसके धर्म के अस्तित्व के लिए एक बड़ा खतरा था। सती प्रथा का उन्मूलन, सम्पत्ति के उत्तराधिकार विषयक कानून में बदलाव और विधवा विवाह को कानूनी मान्यता दिया जाना हिन्दुओं के लिए उनके धर्म पर चोट थी। 1857 के विद्रोह से पहले ही वहाबी नेता सैयद अहमद बरेलवी ने इस्लाम धर्म तथा मुस्लिम शासन की पुनर्स्थापना के लिए अंग्रेज़ों के विरुद्ध जिहाद छेड़ दिया था।

बादशाह बहादुर शाह ने अपने एक ऐलान में 1857 के विद्रोह को धर्म युद्ध माना था और यह बताया था कि अनेक हिन्दू और मुसलमान सरदार अपने–अपने धर्म की रक्षा करने के लिए अंग्रेज़ी सत्ता को उखाड़ फेंकने के लिए एकजुट हुए हैं। बादशाह ने इस ऐलान में पण्डितों और मौलवीयों को उनके अपने–अपने धर्म,मज़हब की रक्षा करने के लिए इस धर्म युद्ध में कूद पड़ने लिए कहा। बादशाह ने राजाओं, नवाबों और ज़मींदारों को धर्म की दुहाई देते हुए उनका आवाहन करते हुए कहा–

आप सभी हिन्दुओं को गंगा, तुलसी और सालिगराम की शपथ है और आप सब मुसलमानों को अपने खुदा और कुरान की। ये अंग्रेज़ दोनों के दुश्मन हैं। उनको मारने के लिए आप दोनों एकजुट हों, तभी आपकी ज़िन्दगी और आपके दीन, धरम की हिफ़ाज़त हो सकेगी।

बहादुर शाह, बेगम हज़रत महल, नाना साहब पेशवा, रानी लक्ष्मीबाई, कुंवर सिंह आदि सभी नेताओं ने भारतवासियों को यह वचन दिया था कि वो भारतीयों की सत्ता स्थापित हो जाने के बाद उनके धर्म और दीन की रक्षा करेंगे। मौलवी अहमद शाह और इलाहाबाद के सूबेदार मौलवी लियाक़त अली ने अंग्रेज़ों के विरुद्ध विद्रोह को जिहाद माना था। पटना के मौलवियों ने मुसलमानों के लिए इस विद्रोह में भाग लेना, उनका धार्मिक कर्तव्य बताया था। जॉन के

अपने ग्रंथ *हिस्ट्री ऑफ़ सिपॉय वार* में 1857 के विद्रोह को ब्राह्मणों के प्रतिरोध के रूप में देखता है। विद्रोह के समय चर्चों को जलाना, ईसाई धर्म प्रचारकों को मारना आदि विद्रोह में धार्मिक असन्तोष की महत्ता प्रदर्शित करते हैं।

4.4.3 आर्थिक असन्तोष

कार्ल मार्क्स ने *न्यूयॉर्क डेली ट्रिब्यून* के लन्दन सम्वाददाता के रूप में 1857 के विद्रोह पर अपनी टिप्पणियां दी हैं। वह भारत में ब्रिटिश शासन की स्थापना के फलस्वरूप भारत की अर्थ–व्यवस्था में एक विनाशकारी परिवर्तन के दर्शन करता है। उसका कहना है कि अंग्रेज़ी शासन में भारतीय ग्रामों की सदियों से चली आ रही आत्मनिर्भरता समाप्त हो गई और परम्परागत जातीय उद्योग का पतन हो गया। भारत के आधुनिकीकरण के नाम पर औपनिवेशिक शासन में योजनाबद्ध शोषण को ही वरीयता दी गई। भारत में ईस्ट इण्डिया कम्पनी की आय का मुख्य स्रोत भूमि कर ही था। स्थायी बन्दोबस्त, रैयतवारी और महलवारी सभी व्यवस्थाओं में किसानों का शोषण एवं उनके अधिकारों का हनन हो रहा था। किसानों पर करों का भारी बोझ लाद दिया गया था। प्राकृतिक आपदाओं में भी करों में रियायत नहीं की जाती थी और उनके भुगतान के लिए किसानों को महाजनों के ऐसे जाल में फंसना पड़ता था जिससे वह आजीवन निकल नहीं पाते थे। भूमि प्रशासन से जुड़े निम्न स्तरीय कर्मचारी भ्रष्ट थे और किसानों का शोषण करते थे। किसानों का आर्थिक असन्तोष बढ़ता जा रहा था। जंगलों पर आदिवासियों के परम्परागत अधिकारों का हनन किया गया। कोल, भील तथा संथाल आदिवासियों के विद्रोहों का मुख्य कारण भी शोषक भूमि प्रशासन था। सन् 1857 के विद्रोह में अवध के किसानों ने खुलकर भाग लिया और इसको जन–आन्दोलन के रूप में विकसित किया।

भारतीय शासकगण अंग्रेज़ी लूट से क्षुब्ध थे। बादशाह बहादुर शाह से लेकर छोटे से छोटे भारतीय शासकों को आर्थिक शोषण का शिकार होना पड़ रहा था। भारतीय रियासतों के ब्रिटिश साम्राज्य में विलय से लाखों लोग बेरोज़गार हो गए थे। आभिजात्य वर्ग, उच्च तथा निम्न पदों पर कार्यरत कर्मचारी, कलाकार, पण्डित, मौलवी और सबसे अधिक सैनिक इससे प्रतिकूल रूप से प्रभावित हुए थे।

भारतीय उद्योग तथा व्यापार के पतन ने भारतीय अर्थ–व्यवस्था को गहरी चोट पहुंचाई थी। भारत का फलता–फूलता कुटीर उद्योग पतन की गर्त में चला गया था और बेरोज़गार कारीगरों ने मज़दूरी करना या खेती करना शुरू कर दिया था। व्यापार सन्तुलन भारत के पक्ष से अब अंग्रेज़ों के पक्ष में चला गया था। कार्ल मार्क्स से लेकर डी0 डी0 कौशाम्बी और डॉक्टर रामविलास शर्मा तक अनेक विद्वानों ने 1857 के विद्रोह को भारतीयों के आर्थिक असन्तोष की उग्र अभिव्यक्ति के रूप में देखा है।

4.4.4 मध्यकालीन राजनीतिक व्यवस्था को पुनर्स्थापित करने का प्रयास

जवाहरलाल नेहरू इस विद्रोह को सामन्तवाद का विस्फोट मानते हैं। कुछ इतिहासकार इसे मध्यकालीन राजनीतिक व्यवस्था को पुनर्स्थापित करने का प्रयास मानते हैं। इस विद्रोह में मुगल वंश और मुगल साम्राज्य की पुनर्प्रतिष्ठा को विशेष महत्व दिया गया। नाना साहब को पेशवा पद पर और बिरजीस कद्र को बेगम हज़रत महल के संरक्षण में अवध का शासक बनाने के लिए ज़मींदारों, ताल्लुकदारों, सैनिकों और आम जनता ने अनथक प्रयास किए। रानी लक्ष्मी बाई झांसी पर पुनराधिकार के लिए और कुंवर सिंह अपने आर्थिक संकट को दूर करने के लिए लड़ रहे थे। इन तथ्यों के आधार पर इस विद्रोह को मध्यकालीन राजनीतिक व्यवस्था को पुनर्स्थापित करने का प्रयास माना जा सकता है परन्तु वास्तव में इस विद्रोह में लोकतान्त्रिक राजतन्त्र की स्थापना का प्रयास किया गया था जो कि भारतीय राजनीतिक परिदृश्य में सर्वथा नवीन अवधारणा थी।

4.4.5 राष्ट्रीय विद्रोह तथा प्रथम स्वतन्त्रता संग्राम

1857 के विद्रोह में भाग लेने वालों की संख्या पश्चिमी यूरोप के किन्हीं भी दो देशों की आबादियों के कुल योग से भी अधिक थी। विदेशी सत्ता उखाड़ने के लिए 19 वीं शताब्दी में यह विश्व का सबसे व्यापक आन्दोलन था। इस विद्रोह को कार्ल मार्क्स औपनिवेशिक शासन के विरुद्ध एक राष्ट्रीय विद्रोह के रूप में देखता है। इटली के महान देश भक्त मेज़िनी ने अपने दैनिक पत्रों *इटालिया डेल पोपोलो* तथा *पेन्सीरो एद एज़ियन* में 1857 के विद्रोह

को स्वतन्त्रता संग्राम माना है। इस विद्रोह में पहली बार सैनिकों ने अपने अंग्रेज़ अधिकारियों की हत्याएं कीं, हिन्दू–मुसलमान आपसी वैमनस्य भुलाकर अंग्रेज़ी शासन के विरुद्ध एकजुट हुए। सैनिक विद्रोह के रूप में प्रारम्भ हुअए विद्रोह का व्यापक विस्तार हुआ और इसमें विभिन्न वर्गों ने भाग लिया। अंग्रेज़ों को अपने लिए यातायात के साधन तथा आपूर्ति के साधन तक जुटाना कठिन हो गया क्योंकि आम जनता ने उनका सहयोग नहीं किया। अनुदार दल के नेता डिज़रैली ने ब्रिटिश पार्लियामेन्ट में ईस्ट इण्डिया कम्पनी के डायरेक्टर्स की भर्त्सना करते हुए यह उल्लेख किया था कि विद्रोह के दौरान पहली बार हिन्दू और मुसलमान अंग्रेज़ों के विरुद्ध एकजुट हुए थे। उसने प्रश्न उठाया था कि यह विद्रोह कहीं राष्ट्रीय विद्रोह तो नहीं था। सिर्फ़ चर्बी वाले कारतूसों की वजह से विद्रोह हुआ, यह बात डिज़रैली को स्वीकार्य नहीं थी। उसने कहा –

साम्राज्यों का पतन और विनाश चर्बी वाले कारतूसों के मसले पर नहीं होता है। ऐसा निश्चित कारणों और उन कारणों के एकत्रित होने के अवसर पर होता है।

बादशाह बहादुर शाह ने अपने एक फ़रमान में ब्रिटिश सत्ता को उखाड़ फेंकने में समाज के हर वर्ग के हिन्दू और मुसलमान से सक्रिय सहयोग मांगा था। उसने ब्रिटिश शासन में राजाओं, ज़मींदारों, किसानों और कारीगरों की विपदाओं का उल्लेख करते हुए अंग्रेज़ों के निष्कासन के लिए प्रयास करना सभी भारतीयों का कर्तव्य बताया था। अवध में व्यापक जन–विद्रोह को अंग्रेज़ इतिहासकार भी स्वीकार करते हैं। चार्ल्स बॉल अवध में जनता द्वारा विद्रोही सैनिकों को दिए जाने वाले सहयोग व सहायता दी जाने वाली बात को स्वीकार करता है। बेगम हज़रत महल और उनके सहयोगियों को विद्रोह की असफलता के बाद जिस तरह से जनता ने मदद देकर सुरक्षित नेपाल जाने की व्यवस्था की उससे यह स्पष्ट होता है कि इस विद्रोह में जनता की भागीदारी थी। जॉन के अपने ग्रंथ *हिस्ट्री ऑफ़ सिपॉय वार* में गंगा–जमुना दोआब के गांवों में ब्रिटिश सत्ता को उखाड़ फेकने के प्रयासों का उल्लेख करते हुए वह अंग्रेज़ों के विरुद्ध हिन्दू और मुसलमानों के एकजुट हो जाने की बात को स्वीकार करता है।

विद्रोह के दमन के उपरान्त विजयी अंग्रेज़ों द्वारा निर्दोष असैनिक समुदाय की निर्मम हत्या की घटनाएं यह प्रदर्शित करती हैं कि यह विद्रोह मात्र सैनिक विद्रोह नहीं था। इलाहाबाद में ब्रिगेडियर नील ने कत्लेआम किया। अवध में व्यापक जन–विद्रोह को अंग्रेज़ इतिहासकार भी स्वीकार करते हैं। चार्ल्स बॉल अपने ग्रंथ *इण्डियन म्यूटिनी* में अवध में जनता द्वारा विद्रोही सैनिकों को दिए जाने वाले सहयोग व सहायता दी जाने वाली बात को स्वीकार करता है। सभी विद्रोही नेताओं ने हिन्दू–मुस्लिम एकता को महत्व दिया और छोटे–बड़े की दूरी को कम करने का प्रयास किया। मालेसन *दि म्यूटिनी ऑफ़ दि बैंगाल आर्मी* में इस विद्रोह का प्रारम्भ एक सैनिक विद्रोह के रूप में बताता है पर यह स्वीकार करता है कि यह शीघ्र ही राष्ट्रीय आन्दोलन के रूप में विकसित हो गया।

साम्राज्यवादी दृष्टिकोण का पोषण करते हुए किसी भी अंग्रेज़ इतिहासकार या अंग्रेज़ अधिकारी ने इस विद्रोह को एक जन–आन्दोलन अथवा स्वतन्त्रता संग्राम के रूप में स्वीकार नहीं किया है। विद्रोह का विस्तार मुख्यतः उत्तर व मध्य भारत के एक भाग तक सीमित था। उनका तर्क है कि इस विद्रोह में समाज के अनेक वर्गों ने भाग नहीं लिया था। हैदराबाद के निज़ाम और ग्वालियर के सिंधिया ने अंग्रेज़ों का साथ दिया था जब कि अधिकांश भारतीय शासक इस विद्रोह में तटस्थ रहे थे। पाश्चात्य शिक्षा प्राप्त वर्ग, नए ज़मींदार, महाजन तथा व्यापारी विद्रोह में या तो तटस्थ थे या फिर अंग्रेज़ों के साथ थे। विद्रोह के दौरान कई स्थानों पर साम्प्रदायिक दंगे भी हुए, विशेषकर रुहेलखण्ड में। अतः यह कहा जा सकता है कि विद्रोह में राष्ट्रीय अथवा साम्प्रदायिक एकता की स्थापना नहीं हो सकी। जब कि देश का अधिकांश भाग विद्रोह की लपटों से बचा रहा तो फिर इसे राष्ट्रीय विद्रोह की संज्ञा देना अनुचित होगा। अंग्रेज़ी शासन के प्रति व्यापक असन्तोष तथा उसको उखाड़ फेंकने में विद्रोहियों की एकजुटता के परिप्रेक्ष्य में वी0 डी0 सावरकर ने अपने ग्रंथ *दि फ़र्स्ट वार ऑफ़ इण्डियन इण्डिपेन्डेन्स* में 1857 के विद्रोह को भारत का प्रथम स्वतन्त्रता संग्राम माना है। आर0 सी0 मजूमदार इस विद्रोह को न तो राष्ट्रीय मानते हैं और न ही स्वतन्त्रता संग्राम। परन्तु इस बात से इन्कार नहीं किया जा सकता कि इस विद्रोह में राष्ट्रीयता तथा स्वतन्त्रता की भावना का प्रस्फुटन अवश्य हुआ था।

4.4.6 विद्रोह की प्रकृति विषयक अन्य विचार

आधुनिक युग के राष्ट्रवाद की अवधारणा का विकास 1857 तक नहीं हुआ था अतः इस विद्रोह को समग्र रूप से स्वतन्त्रता संग्राम मानना अतिशयोक्ति होगी। भारत जैसे विशाल देश में 1905 के स्वदेशी आन्दोलन से पूर्व कोई भी राजनीतिक आन्दोलन राष्ट्रीय स्तर पर नहीं हुआ था। इस आन्दोलन को हम न केवल धार्मिक असन्तोष की और न ही केवल आर्थिक असन्तोष की अभिव्यक्ति कह सकते हैं। इस आन्दोलन में एक ओर जहां मध्यकालीन राजनीतिक व्यवस्था की पुनर्स्थापना का प्रयास किया गया तो वहीं दूसरी ओर इसमें लोकतान्त्रिक राजतन्त्र की स्थापना को भी महत्ता दी गई। एक ओर इसमें सैनिकों की भूमिका बहुत महत्वपूर्ण थी तो दूसरी ओर किसान और अन्य श्रमजीवी भी इसमें बराबर अपना योगदान दे रहे थे। कुल मिला कर हम कह सकते हैं कि इस विद्रोह को हम केवल सैनिक विद्रोह, केवल धार्मिक विद्रोह, मात्र आर्थिक असन्तोष, या सिर्फ़ मध्यकालीन राजनीतिक व्यवस्था की पुर्स्थापना के रूप में नहीं देख सकते। इसमें सभी का मिलाजुला रूप दिखाई देता है।

2.1857 के विद्रोह की प्रकृति को बतलाइये–

स्व मूल्यांकन हेतु प्रश्न

निम्नलिखित विषयों पर संक्षिप्त टिप्पणी लिखिएः

1 (क) विद्रोह की धार्मिक प्रकृति।

(ख) प्रथम स्वतन्त्रता संग्राम।

2. नीचे लिखे प्रश्नों के उत्तर दीजिए।

(i) क्या 1857 का विद्रोह केवल सैनिकों तक सीमित था?

(ii) क्या गोरखा तथा सिख सैनिकों ने विद्रोहियों का दमन करने में अंग्रेज़ों की सहायता की थी?

4.5 विद्रोह के परिणाम तथा उसका महत्व

4.5.1 मुगल साम्राज्य का अन्त

20 सितम्बर, 1857 का अंग्रेज़ों ने 134 दिन बाद दिल्ली पर पुनराधिकार कर लिया। बादशाह बहादुर शाह को हुमायूं के मकबरे से गिरफ़्तार कर लिया गया। उसके दो बेटों मिरज़ा मुगल, मिरज़ा अखज़र सुल्तान तथा पोते मिरज़ा अबूबक़र के कटे हुए सर बादशाह को नज़र के रूप में पेश किए गए। बादशाह पर फ़ौजी अदालत में मुकदमा चलाया गया और उसे दोषी पाया गया। उसे आजीवन कारावास के साथ देश निकाला देकर रंगून भेजे जाने का फ़ैसला किया गया। मुगल साम्राज्य का विधिवत अन्त कर दिया गया।

4.5.2 विद्रोह के बाद दमन तथा प्रतिशोध

सितम्बर, 1857 में दिल्ली पर पुनराधिकार के बाद अंग्रेज़ों ने वहां भयंकर विनाशलीला खेली। उन्होंने सन् 1739 में नादिरशाह द्वारा किए गए कत्लेआम की स्मृतियां ताज़ा कर दीं। अंग्रेज़ो ने जब लखनऊ को वापस जीत लिया तो वहां हज़ारों विद्रोहियों पर नाम के लिए मुकदमा चला कर तुरन्त उन्हें पेड़ों पर लटका कर फांसी दे दी गई और उनके शवों को पेड़ों पर ही झूलने दिया गया। विद्रोहियों के साथ सहानुभूति रखने वाले गांव जला कर नष्ट कर दिए गए। नवाबी लखनऊ के अनेक महलों और अन्य इमारतों को तोड़ दिया गया। विद्रोहियों से सहानुभूति रखने वाले ताल्लुकदारों की जागीरें, पेंशन आदि ज़ब्त कर ली गईं। इलाहाबाद में जनरल नील द्वारा किया गया नरसंहार अंग्रेज़ों के प्रतिशोध की पराकाष्ठा का परिचायक है।

4.5.3 भारत में ईस्ट इण्डिया कम्पनी के शासन की समाप्ति तथा ब्रिटिश ताज के अधीन भारत

अगस्त, 1858 के गवर्नमेन्ट ऑफ इण्डिया एक्ट द्वारा भारत में ईस्ट इण्डिया कम्पनी का शासन समाप्त कर दिया गया। भारत को सीधे ब्रिटिश ताज के अधीन कर दिया गया।

4.5.4 महारानी का घोषणापत्र

1 नवम्बर, 1858 को इलाहाबाद में महारानी विक्टोरिया का घोषणापत्र पढ़कर सुनाया गया जो कि भारतीय शासकों को सम्बोधित किया गया था। इसमें महारानी ने घोषणा की कि ईस्ट इण्डिया कम्पनी से भारत पर शासन करने का

अधिकार वापस लिया जा रहा है और वह स्वयं भारत पर शासन करने का दायित्व ग्रहण कर रही हैं। महारानी ने हत्या के आरोपियों के अतिरिक्त उन विद्रोहियों के लिए सार्वजनिक क्षमादान की घोषणा की जिन्होंने आत्म समर्पण कर दिया था। महारानी ने साम्राज्य विस्तार की नीति का परित्याग करते हुए भारतीय शासकों को आश्वस्त किया कि

किसी भी मूल्य पर उनके राज्य का अपहरण नहीं किया जाएगा। इस घोषणा में भारतीय प्रजा को महारानी ने अपनी सन्तान कहा और उसे आश्वस्त किया कि उसके कल्याण, विकास और समृद्धि के लिए वह सतत प्रयत्नशील रहेंगी। महारानी ने जाति, वर्ण, धर्म और राष्ट्रीयता के स्थान पर केवल योग्यता के आधार पर सबको उन्नति के समान अवसर दिए जाने का भी वचन दिया। महारानी का घोषणा पत्र भारतीय संवैधानिक विकास और राष्ट्रीय आन्दोलन के लिए एक मील का पत्थर सिद्ध हुआ किन्तु इसमें दिए गए आश्वासनों का कभी निष्ठापूर्वक पालन नहीं किया गया।

4.5.5 राजनीतिक तथा संवैधानिक सुधार तथा राजनीतिक चेतना का प्रसार

सर सैयद अहमद ने अपने ग्रंथ *असबाबे बगावते हिन्द* में यह प्रदर्शित किया था कि 1857 के विद्रोह का एक प्रमुख कारण भारतीय प्रजा और ब्रिटिश शासकों के मध्य सम्पर्क का अभाव था। भारतीयों की कठिनाइयों और शिकायतों को उन तक पहुंचाने वाला कोई नहीं था। इसका निदान उन्होंने यह बताया कि भारत के शासन में भारतीयों की हिस्सेदारी बढ़ाई जाए। 1861 के इण्डियन काउंसिल्स एक्ट में पहली बार गवर्नर जनरल की कार्यकारी परिषद में भारतीय सदस्य मनोनीत किए गए। प्रेस की स्वतन्त्रता की बहाली, भारतीयों को अपना राजनीतिक संगठन बनाने का अधिकार और शक्ति के विकेन्द्रीकरण की प्रक्रिया का प्रारम्भ आदि कुछ ऐसे निर्णय थे जिन्होंने आगे चल कर भारत में लोकतान्त्रिक शासन की स्थापना में अपना योगदान दिया। 1857 के विद्रोह के बाद भारतीय शिक्षित समुदाय ने महारानी विटोरिया के घोषणापत्र में दिए गए आश्वासनों को आधार बना कर अपनी राजनीतिक एवं संवैधानिक सुधारों की मांग रखना शुरू कर दिया। प्रेस के माध्यम से, विशेषकर भारतीय भाषाओं के पत्रों में राजनीतिक चेतना का प्रसार–प्रचार हुआ और इसमें उदार ब्रिटिश अधिकारियों, पाश्चात्य उदार विचारकों ने भी अपना सहयोग दिया। इन अनुकूल परिस्थितियों में राष्ट्रीय आन्दोलन के प्रथम चरण की पृष्ठभूमि तैयार हुई।

4.5.6 सामाजिक तथा धार्मिक नीति में परिवर्तन

1857 के विद्रोह के बाद ब्रिटिश सरकार ने सोशल लेजिसलेशन की नीति का परित्याग कर दिया। विद्रोह में धार्मिक–सामाजिक असन्तोष की उग्रता देखकर अब सरकार ने यह निर्णय लिया कि वह समाज सुधार के नाम पर कानून बना कर भारतीयों की धार्मिक–सामाजिक कुरीतियों के उन्मूलन का प्रयास नहीं करेगी। सुधारकों की मांग के बावजूद कुलीन प्रथा, बाल विवाह के विरुद्ध कानून नहीं बनाए गए।

4.5.7 आर्थिक दोहन

महारानी विक्टोरिया की घोषणा में भारत और ग्रेट ब्रिटेन के हितों में भेदभाव न करने का आश्वासन दिया गया था और भारतीयों की समृद्धि के विकास की कामना की थी परन्तु ब्रिटिश ताज के अधीन भारत में उसका आर्थिक दोहन अब और भी व्यापक हो गया। भारत से धन–सम्पदा का निरन्तर प्रवाह इंग्लैण्ड की ओर होने लगा। विलासिता में अंग्रेज़ों ने मुगलों को भी पीछे छोड़ दिया। दादा भाई नौरोजी ने इसे आर्थिक दोहन कहा। एक दिशा में धन प्रवाह को इकॉनॉमिक ड्रेन कहकर उन्होंने इस नीति को अंग्रेज़ जाति के नाम पर सबसे बड़ा कलंक बताया। किसानों पर करों का बोझ ज्यों का त्यों बना रहा। दुर्भिक्षों में भुखमरी के कारण मरने वालों की संख्या में अत्यन्त वृद्धि हुई। भारत में अकाल के समय अनाज के निर्यात की नीति ने सरकार की जन–कल्याण की भावना के दावे की पोल खोल दी। ब्रिटिश पूजीपतियों के भारत में रेलवेज़ आदि में धन निवेश पर उन्हें दिया जाने वाला लाभ करोड़ों पॉन्ड पर पहुंच गया। नवोदित भारतीय उद्योग के विकास में मुक्त व्यापार के नाम पर हर प्रकार की बाधा डाली गई और भारत को कच्चा माल निर्यात करने वाली मण्डी बना दिया। रेलवेज़ के माध्यम से भारतीय बाज़ारों को लंकाशायर तथा मैनचेस्टर के मिलों कपड़ों, शेफ़ील्ड आदि में बने उपकरणों से भर दिया गया। दिया सलाई, मोमबत्ती, चाकू, छुरी, जूते यहां तक कि डिब्बों और बोतलों बन्द खाद्य एवं पेय पदार्थों के भी आयात को बढ़ावा

दिया गया। भारतीय कुटीर उद्योग को नष्ट करने का हर उपाय किया गया और भारतीयों को तकनीकी शिक्षा उपलब्ध कराने में रुचि नहीं ली गई। भारत पर करोड़ों पॉन्ड का ऋण चढ़ गया। ब्रिटिश ताज के अधीन भारत विश्व के सबसे दरिद्र देशों में गिना जाने लगा।

4.5.8 सैनिक नीति में परिवर्तन

1857 के विद्रोह के बाद सरकार ने सैन्य प्रशासन में परिवर्तन किए। भारतीय सैनिकों को तोपखाने आदि सामरिक दृष्टि से अधिक महत्वपूर्ण विभागों से अलग कर दिया। गया। सेना में जुझारू जातियों की भर्ती पर ज़ोर दिया गया और उच्च वर्ण के हिन्दुओं की भर्ती पर रोक लगा दी गई। 1857 के विद्रोह में अंग्रेज़ों की मदद करने वाले सिखों और गोरखाओं की सेना में अधिक भर्ती की गई। सेना में यूरोपियन सैनिकों की संख्या बढ़ाई गई।

4.5.9 अंग्रेज़ों की फूट डालो और शासन करो की नीति

1857 जैसा विद्रोह फिर न हो इसके लिए उन सब कारकों को जड़ से उखाड़ने का प्रयास किया गया जो इसके विस्फोट के लिए उत्तरदायी थे। शासन के हर पक्ष मे 'फूट डालो और शासन करो' के सिद्धान्त को लागू किया गया। भारत की राजनीतिक एकता, सामाजिक एवं सांस्कृतिक सौहार्द को नष्ट करने के लिए सरकार द्वारा अपनाई गई हर नीति में विघटनकारी तत्वों को बढ़ावा दिया गया। सेना की नई व्यवस्था में अंग्रेज़ों की विद्रोह में भरपूर मदद करने वाले सिखों और गोरखाओं को छोड़कर सभी सैनिकों को जाति, क्षेत्र आदि के नाम पर बांट दिया गया। क़ौमी एकता, धार्मिक एवं जातीय सद्भाव को रोकने का हर सम्भव प्रयास किया गया। पंजाब में सिखों और हिन्दुओं के बीच वैमनस्य की दीवार चुनने मे सरकार ने खुलकर अपनी भूमिका निभाई। उत्तर भारतीयों तथा दक्षिण भारतीयों में फूट डालने के लिए आर्य और अनार्य के मसले पर बहस छेड़ दी गई। 1881 में प्रारम्भ हुई प्रथम जनगणना में देशवासियों के धर्म, जाति, और भाषा का विवरण भी जोड़ा गया। उर्दू–हिन्दी, बंगला–असमिया आदि भाषा विवादों को बढ़ावा दिया गया। धर्म और जाति पर आधारित स्कूल और कॉलेज स्थापित किए गए।

अंग्रेज़ों ने धार्मिक भेदभाव गहरा किया। हिन्दू–मुस्लिम वैमनस्य बढ़ाने के लिए उन्होंने हर सम्भव प्रयास किए और सर सैयद अहमद को मुस्लिम साम्प्रदायिकता को विकसित करने के लिए पुरस्कृत किया। इस नीति ने शहरी और ग्रामीण वर्ग, अंग्रेज़ी शिक्षा प्राप्त तथा भारतीय भाषाओं के माध्यम से शिक्षा प्राप्त वर्ग, उद्योगपति और श्रमिक वर्ग, किसान और ज़मींदार के बीच में दीवार खड़ी करने में अपना योगदान दिया। अंग्रेज़ों की फूट डालो और शासन करो की नीति भारत के विभाजन के लिए काफ़ी हद तक ज़िम्मेदार है।

2. विद्रोह के परिणामों पर चर्चा कीजिए–

4.6 विद्रोह का महत्व

1857 के विद्रोह का भारतीय राष्ट्रीय आन्दोलन के इतिहास के प्रथम चरण के रूप में महत्व अत्यन्त है। विद्रोह की असफलता और उसके निर्मम दमन के बावजूद इसके परिणामस्वरूप ही ईस्ट इण्डिया कम्पनी का अत्याचारी शासन समाप्त हुआ। इसने ब्रिटिश सरकार को राजनीतिक और संवैधानिक सुधार करने के लिए बाध्य किया। सरकार को साम्राज्य विस्तार की नीति अपना कर भारतीय शासकों के राज्यों को शिकार बनाना छोड़ना पड़ा। इस विद्रोह ने भारतीयों में राजनीतिक चेतना का प्रसार किया। बीसवीं शताब्दी के प्रारम्भ में बंगाल विभाजन का विरोध कर रहे क्रान्तिकारी युवकों के लिए 1857 का विद्रोह राष्ट्रीय आन्दोलन का प्रेरक बना। भारतीय इतिहास लेखन के लिए भी इस विद्रोह ने एक नए युग का सूत्रपात किया। राष्ट्रवादी इतिहासकारों ने इसे प्रथम स्वतन्त्रता संग्राम की संज्ञा दी।

स्व मूल्यांकन हेतु प्रश्न

निम्नलिखित विषयों पर संक्षिप्त टिप्पणी लिखिए:

1 (क) विद्रोह के दमन के बाद अंग्रेज़ों के अत्याचार।

(ख) 1858 का महारानी का घोषणा पत्र।

2. नीचे लिखे प्रश्नों के उत्तर दीजिए।

(i) भारत में ईस्ट इण्डिया कम्पनी का शासन कब समाप्त हुआ?

(ii) क्या विद्रोह के दमन के बाद अंग्रेज़ों ने अपना समाज सुधार का कार्यक्रम जारी रखा?

4.7 सार संक्षेप

1857 के विद्रोह को सैनिक विद्रोह से लेकर प्रथम स्वतन्त्रता संग्राम तक की संज्ञा दी गई है। 1857 के विद्रोह में ग़दर, उदारवाद, हिन्दू–मुस्लिम एकता, धार्मिक आवेग, राजाओं–ताल्लुकदारों का आत्म–संरक्षण हेतु संघर्ष, किसानों का मुक्ति संग्राम, मुगल बादशाहत की पुनर्स्थापना तथा हिन्दुस्तान को स्वतन्त्र करने के लिए प्रयास आदि के दर्शन होते हैं। उत्तर भारत के एक बड़े भाग में तथा मध्य भारत में इसका विस्तार हुआ तथा शेष भारत भी इसके प्रभाव से अछूता नहीं रहा। इस विद्रोह ने असफल होने के बावजूद अंग्रेज़ी शासन की दिशा और दशा बदल दी और भारतीयों के लिए भी एक नए युग का सूत्रपात किया। सितम्बर, 1857 में मुगल साम्राज्य का विधिवत अन्त कर दिया गया। विद्रोह के दमन के बाद अंग्रेज़ों ने विद्रोह के प्रमुख ठिकानों पर नादिरशाह द्वारा किए गए कत्लेआम की स्मृतियां ताज़ा कर दीं। भारत में ईस्ट इण्डिया कम्पनी के शासन की समाप्ति तथा भारत को सीधे ब्रिटिश ताज के अधीन किए जाने का निर्णय लिया गया। 1858 के महारानी विक्टोरिया के घोषणापत्र में यह घोषित किया गया कि अब से भारत के शासन का दायित्व वह स्वयं सम्भाल रही हैं। साम्राज्य के विस्तार की नीति का परित्याग करने की घोषणा की गई। इस घोषणा में महारानी ने भारतीय प्रजा को आश्वस्त किया कि उसके कल्याण, विकास और समृद्धि के लिए वह सतत प्रयत्नशील रहेंगी। 1857 के विद्रोह के बाद ब्रिटिश सरकार ने सोशल लेजिसलेशन की नीति का परित्याग कर दिया। ब्रिटिश ताज के अधीन भारत में उसका आर्थिक दोहन अब और भी व्यापक हो गया। 1857 के विद्रोह के पश्चात प्रशासन और शासन के हर पक्ष मे 'फूट डालो और शासन करो' के सिद्धान्त को लागू किया गया।

4.8. पारिभाषिक शब्दावली

नेटिव इन्फ़ैन्ट्रीः भारतीयों की पैदल सेना
इर्रेगुलर केवेलरीः अस्थायी घुड़सवार सेना
कूचः अभियान के लिए प्रस्थान
खल्कः सृष्टि
दीनः धर्म
हिफ़ाज़तः सुरक्षा
वलीअहदीः उत्तराधिकार
अस्बाबे बगावते हिन्दः भारत में विद्रोह के कारण

4.9. सन्दर्भ ग्रंथ

मजूमदार, आर0 सी0 (सम्पादक)–*ब्रिटिश पैरामाउंट्सी एण्ड इण्डियन रिनेसा,* दो भागों मे, बॉम्बे, 1965
सेन, एस0 एन0: *एटीन फिफ़्टी सेवेन,* 1957, नई दिल्ली़
ताराचन्दः *भारतीय स्वतन्त्रता आन्दोलन का इतिहास* (चार भागों में), नई दिल्ली, 1984
मार्क्स, कार्लः *आर्टिकिल्स ऑन इण्डिया,* बॉम्बे, 1948
खां, मोइनुद्दीन हसन – *ग़दर – 1857,* दिल्ली, 2003

4.10 स्व मूल्यांकित प्रश्नों के उत्तर

1 (क) देखिए 4.3.2 मेरठ छावनी।
(ख) देखिए 4.3.6 बिहार तथा पश्चिमोत्तर प्रदेश का पूर्वी भाग।
2. (i) नहीं।
(ii) बिरजीस कद्र को।
1 (क) देखिए 4.4.2 धार्मिक विद्रोह।
(ख) देखिए 4.4.5 राष्ट्रीय विद्रोह तथा प्रथम स्वतन्त्रता संग्राम।
2. (i) नहीं।

(ii) हां।

1 (क) देखिए 4.5.2 विद्रोह के बाद दमन तथा प्रतिशोध।

(ख) देखिए 4.5.4 महारानी का घोषणापत्र।

2. (i) सन् 1858 में।

(ii) नहीं।

4.11 अभ्यास प्रश्न

1. 1857 के विद्रोह के दिल्ली में विस्तार का वर्णन कीजिए।
2. क्या 1857 का विद्रोह मात्र एक सैनिक विद्रोह था?
3. 1857 के विद्रोह में भारतीयों के आर्थिक असन्तोष की क्या भूमिका थी?
4. 1857 के विद्रोह के बाद अंग्रेज़ों द्वारा फूट डाल कर शासन करने की नीति की समीक्षा कीजिए।
5. 1857 के विद्रोह परिणास्वरूप संवैधानिक परिवर्तनों की समीक्षा कीजिए।

इकाई पांचः आर्थिक राष्ट्रवाद का उदय एवं संवृद्धि

5.1 प्रस्तावना

5.2 इकाई के उद्देश्य

5.3 भारत में उन्नीसवीं शताब्दी के उत्तरार्ध में राष्ट्रवाद के विकास के कारण

5.3.1 भारतीय नवजागरण में राजनीतिक चेतना

5.3.2 1857 के विद्रोह में राजनीतिक चेतना का विकास

5.3.3 भारतीय पत्रों में राजनीतिक चेतना का विकास

5.4 उन्नीसवीं शताब्दी के उत्तरार्ध में भारत की आर्थिक स्थिति

5.4.1 कृषि तथा किसानों की दशा तथा अकालों की आवृत्ति

5.4.2 भारत की औद्योगिक एवं व्यापारिक स्थिति

5.4.3 मुक्त व्यापार की नीति

5.4.4 प्रशासनिक तथा सैनिक व्यय

5.4.5 होम चार्ज

5.5 सरकार की आर्थिक नीतियों की समीक्षा और आर्थिक राष्ट्रवाद का उदय

5.5.1 भारत में आर्थिक राष्ट्रवाद के जनक दादाभाई नौरोजी

5.5.2 अन्य भारतीय नेताओं का आर्थिक राष्ट्रवाद के विकास में योगदान

5.5.3 आर्थिक राष्ट्रवाद के विकास में भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस का योगदान

5.5.4 आर्थिक राष्ट्रवाद के विकास में भारतीय समाचार पत्रों का योगदान

5.6 आर्थिक नीतियों की आलोचना पर सरकार की प्रतिक्रिया तथा भारतीयों द्वारा स्वदेशी जागरण के प्रारम्भिक प्रयास

5.6.1 भारतीयों द्वारा आर्थिक नीतियों की आलोचना पर सरकार की प्रतिक्रिया

5.6.2 स्वदेशी आन्दोलन से पूर्व आर्थिक आत्म निर्भरता प्राप्त करने के प्रयास

5.7 सार संक्षेप

5.8 पारिभाषिक शब्दावली

5.9 .सन्दर्भ ग्रंथ

5.10 स्व मूल्यांकित प्रश्नों के उत्तर

5.11 अभ्यास प्रश्न

5.1 प्रस्तावना

भारत में उन्नीसवीं शताब्दी के प्रथमार्द्ध में ही आर्थिक चेतना का विकास प्रारम्भ हो गया था। राजा राममोहन राय ने तकनीकी शिक्षा की महत्ता तथा भारत में आधुनिक उद्योगों की आवश्यकता पर बल दिया था। दादा भाई नौरोजी भारत में आर्थिक राष्ट्रवाद के जनक थे। उन्होंने एक ओर जहां ब्रिटिश शासन की आर्थिक दोहन की नीति के कारण भारत की निरन्तर बढ़ती हुई दरिद्रता पर प्रकाश डाला वहीं उन्होंने भारतीयों को

आर्थिक स्वावलम्बन का लक्ष्य प्राप्त करने के लिए अनथक प्रयास करने का आवाहन किया। राष्ट्रीय आन्दोलन के अन्य सभी नेताओं ने तथा भारतीय समाचार पत्रों ने भी सरकार के हर शोषक पहलू को उभारा तथा भारत के आर्थिक पुनरुद्धार हेतु सृजनात्मक सुझाव दिए। औपनिवेशिक सरकार की आर्थिक नीतियों पर भारतीयों की आलोचना पर नाम मात्र का प्रभाव पड़ा परन्तु भारत में स्वदेशी की भावना जागृत करने में और आधुनिक उद्योग का विकास तथा कुटीर उद्योग का पुनरुत्थान करने में आर्थिक चेतना का अभूतपूर्व योगदान रहा।

भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस की स्थापना से पूर्व अनेक राजनीतिक संगठनों की स्थापना हुई थी। शहरी मध्यवर्गीय बुद्धिजीवियों ने उदार पाश्चात्य राजनीतिक सिद्धान्तों से प्रेरित होकर भारतीयों के राजनीतिक तथा आर्थिक हितों की रक्षा के लिए अपने–अपने राजनीतिक संगठन बनाए थे किन्तु धीरे–धीरे उन्होंने राष्ट्रीय स्तर के राजनीतिक संगठन की आवश्यकता का अनुभव किया। इस क्षेत्र में सुरेन्द्रनाथ बनर्जी की भूमिका अत्यन्त सराहनीय रही। उनके द्वारा स्थापित नेशनल कॉन्फ्रेन्स को हम कांग्रेस से पहले का पहला अखिल भारतीय राजनीतिक संगठन कह सकते हैं। इन संगठनों ने सरकार की दमनकारी तथा शोषक नीतियों में आंशिक सुधार लाने में सफलता प्राप्त की । इन संगठनों से सम्बद्ध नेताओं का भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस की स्थापना में भी योगदान था अतः हम कह सकते हैं कि इन संगठनों ने कांग्रेस की नीतियों तथा उसकी रणनीति की पृष्ठभूमि तैयार कर दी।

कांग्रेस की स्थापना के प्रथम चरण अर्थात् 1885 से 1905 तक के काल में औपनिवेशिक शासन की विभीषिकाओं से भारत को ही नहीं अपितु समस्त विश्व को परिचित कराया गया। शान्तिपूर्ण, अहिंसक, अनुशासित तथा कानून के दायरे में रहते हुए भी कांग्रेस के प्रथम चरण में राष्ट्रीय आन्दोलन का सर्वतोमुखी विकास किया गया। सार्वजनिक हित के मुद्दों को उठाना कांग्रेस की प्रकृति बन गया। सरकार की नीतियों पर कांग्रेस ने सरकार की आर्थिक दोहन, रंगभेद, जातिभेद तथा लोकतान्त्रिक प्रणाली को भारत में लागू न करने की नीति का पर्दाफ़ाश किया किन्तु इसके बावजूद सरकार ने अपनी नीतियों में सुधार नहीं किया। स्वदेशी की महत्ता का प्रचार करने में भी कांग्रेस को सफलता मिली किन्तु इसकी नरमपंथी नीतियों के कारण इसे अपने ही संगठन में कटु आलोचना का शिकार होना पड़ा और याचक की उपाधि धारण करनी पड़ी। 1905 के बंगाल विभाजन के निर्णय के बाद कांग्रेस का अपनी नीतियों को बदल कर सक्रिय राजनीतिक विरोध के क्षेत्र में प्रविष्ट होना पड़ा।

उन्नीसवीं शताब्दी के अन्त तक भारत में राजनीतिक चेतना के प्रसार में उल्लेखनीय प्रगति हुई थी। अब भारतीयों ने यह निश्चित कर लिया था कि अपने अधिकारों की प्राप्ति के लिए वो औपनिवेशिक सरकार के सामने हाथ नहीं फैलाएंगे। लॉर्ड कर्ज़न की दृष्टि में भारत स्वशासन के लिए सुयोग्य नहीं था। उसने भारत की राजनीतिक चेतना को आघात पहुंचाने तथा हिन्दू–मुस्लिम वैमनस्य बढ़ाने के उद्देश्य से 1905 में बंगाल विभाजन का निर्णय लिया। भारतीय इसके विरोध में एकजुट हुए तथा उन्होंने स्वदेशी आन्दोलन के अन्तर्गत बहिष्कार व भारत के आर्थिक पुनरुद्धार को अपना हथियार बनाया। युवाओं ने क्रान्तिकारी आतंकवाद का आश्रय लेकर सरकार के अत्याचारों का प्रतिकार किया। बंगाल विभाजन का रद्द किया जाना राष्ट्रीय आन्दोलन की महत्वपूर्ण सफलता थी किन्तु साम्प्रदायिकता क ज़हर का दुष्प्रभाव भारतीय राजनीति पर अब अवश्य दिखाई पड़ने लगा। स्वशासन के लिए आन्दोलन और सशक्त हो गया तथा अब भारत ने सक्रिय राजनीतिक विरोध के दूसरे चरण में प्रवेश किया।

भारत में आर्थिक राष्ट्रवाद के जनक दादाभाई नौरोजी ने ब्रिटिश शासन की आर्थिक शोषण की नीति का निर्भीकतापूर्वक खुलासा किया तथा भारतीयों को अपना आर्थिक उद्धार करने के लिए स्वावलम्बी बनने के लिए प्रेरित किया। 19वीं शताब्दी के उत्तरार्ध में जागरूक भारतीयों ने आर्थिक चेतना को राजनीतिक चेतना का अन्तरंग अंग बना दिया और भारत के आर्थिक पुनरुत्थान को सर्वाधिक महत्व दिया।

इस इकाई में आपको भारतीय बुद्धिजीवियों द्वारा अंग्रेज़ों के द्वारा आर्थिक दोहन की विभीषिकाओं के विश्लेषणात्मक उद्घाटन से आपको अवगत कराया जाएगा और यह भी बताया जाएगा कि किस प्रकार आर्थिक राष्ट्रवाद के विकास ने भारत में राजनीतिक चेतना के विकास में अत्यन्त महत्वपूर्ण भूमिका निभाई।

5.2 इकाई के उद्देश्य

इस इकाई में 1857 के विद्रोह के दमन के बाद सत्ता परिवर्तन के फलस्वरूप भारत के और अधिक आर्थिक शोषण के विरोध में भारतीय बुद्धिजीवियों में आर्थिक चेतना के विकास की चर्चा की जाएगी तथा इस पर सरकार की प्रतिक्रिया का अध्ययन भी किया जाएगा। आत्मनिर्भरता के लक्ष्य तक पहुंचने के लिए स्वयं किए गए प्रयासों का भी अध्ययन किया जाएगा। इस इकाई का उद्देश्य आर्थिक राष्ट्रवाद के हर पहलू का विश्लेषणात्मक अध्ययन करना है। इस इकाई को पढ़ने के बाद आप जानेंगेः

- उन्नीसवीं शताब्दी के उत्तरार्ध में भारत की आर्थिक अवनति तथा उसके लिए विदेशी सरकार के दायित्व के विषय में।
- भारत में आर्थिक राष्ट्रवाद के विकास में नेताओं तथा समाचार पत्रों का योगदान।
- ब्रिटिश सरकार द्वारा भारतीयों की आर्थिक मांगों की नितान्त उपेक्षा की नीति के विषय में।
- आत्मनिर्भरता के लिए स्वयं अपनी सहायता करने के भारतीय अभियान के प्रथम चरण के विषय में।

5.3 भारत में उन्नीसवीं शताब्दी के उत्तरार्ध में राष्ट्रवाद के विकास के कारण

5.3.1 भारतीय नवजागरण में राजनीतिक चेतना

भारत में उन्नीसवीं शताब्दी के प्रथमार्ध में ही सामाजिक, शैक्षिक, सांस्कृतिक एवं आर्थिक चेतना का विकास प्रारम्भ हो गया था। सरकार की रंगभेदी, जातिभेदी व आर्थिक शोषण नीति की निर्भीक आलोचना करने वाले भारतीय नवजागरण के अग्रदूत राजा राममोहन राय को हम भारतीय राजनीतिक चेतना का भी अग्रदूत कह सकते हैं। भारतीय नवजागरण ने धार्मिक,सामाजिक, सांस्कृतिक, शैक्षिक, आर्थिक और राजनीतिक जागृति की अलख जगाई। ब्रह्म समाज, प्रार्थना समाज, आर्य समाज आदि ने अंग्रेज़ों के जातीय श्रेष्ठता के दावे को एक सिरे से नकार दिया। अंग्रेज़ी तथा भारतीय भाषाओं के पत्रों ने भारतीय राजनीतिक चेतना के प्रसार–प्रचार में उल्लेखनीय भूमिका निभाई।

5.3.2 1857 के विद्रोह में राजनीतिक चेतना का विकास

सन् 1857 में ब्रिटिश हुकूमत का तख्ता पलटने के लिए भारत में व्यापक स्तर पर विद्रोह हुआ। फिरंगी शासन से देश को मुक्त कराने के लिए बादशाह, राजे–महाराजे, नवाब, जागीरदार, सैनिक, किसान और मज़दूर एकजुट हुए। 1857 के विद्रोह का विस्तार समस्त भारत में नहीं हो सका और न ही इसमें उत्तर भारत के एक सीमित क्षेत्र को छोड़कर आम जनता की भागीदारी हुई किन्तु इसमें कोई सन्देह नहीं कि इस काल में देशवासियों में राष्ट्रीय एकता की भावना प्रबल हुई और अपने धार्मिक, सामाजिक व सांस्कृतिक मूल्यों पर आघात करने वाले के विरुद्ध सशस्त्र क्रान्ति करने के लिए लाखों लोग एकजुट हुए। अंग्रेज़ों ने इस विद्रोह को कुचल दिया और इसे मात्र एक सैनिक विद्रोह का जामा पहनाने का प्रचार किया। प्रबुद्ध भारतीय प्रायः इस विद्रोह से विलग रहे किन्तु परवर्ती काल में उनमें से अनेक ने इस विद्रोह को भारतीय इतिहास का प्रथम स्वतन्त्रता संग्राम माना। 1857 के विद्रोह से भारतीय युवाओं ने औपनिवेशिक शासन के अन्याय का प्रतिकार करने की प्रेरणा प्राप्त की। 1857 के विद्रोह में सादिकुल अख़बार,देहली उर्दू अख़बार, दूरबीन तथा सुल्तानुल अख़बार ने विद्रोह की भावना का प्रचार करने का साहसिक अभियान छेड़ा। बादशाह बहादुर शाह ज़फ़र के पौत्र बेदार बख़्त के संचालन में प्रकाशित उर्दू अखबार पयामे आज़ादी में अज़ीमुल्ला खां रचित बाग़ी सैनिकों का क़ौमी गीत प्रकाशित हुआ था। इस कौमी तराने में भारत की महिमा का गुणगान किया गया है और भारत में ब्रिटिश शासकों की आर्थिक दोहन की निन्दा की गई है और आज़ादी के झण्डे के तले सभी धर्मावलम्बी भारतवासियों को एकजुट होकर भारत को स्वतन्त्र कराने के लिए आगे बढ़ने की अपील की गई है–

हम हैं इसके मालिक, हिन्दुस्तान हमारा,

पाक वतन है क़ौम का, जन्नत से भी प्यारा।
ये है हमारी मिल्कियत, हिन्दुस्तान हमारा,
इसकी रूहानी से, रौशन है जग सारा।
कितना क़दीम कितना नईम, सब दुनिया से न्यारा,
करती है ज़रखेज़ जिसे, गंग–जमन की धारा।
ऊपर बर्फ़ीला पर्वत, पहरेदार हमारा,
नीचे साहिल पर बजता, सागर का नक्कारा।
इसकी खानें उगल रहीं, सोना, हीरा, पारा,
इसकी शान–शौकत का, दुनिया में जयकारा।
आया फिरंगी दूर से, ऐसा मन्तर मारा,
लूटा दोनों हाथ से, प्यारा वतन हमारा।
आज शहीदों ने है तुमको, अहले–वतन ललकारा,
तोड़ो गुलामी की ज़न्जीरें, बरसाओ अंगारा।
हिन्दु–मुसल्मां, सिक्ख हमारा, भाई प्यारा–प्यारा,
यह है आज़ादी का झण्डा, इसे सलाम हमारा।।

5.3.3 भारतीय पत्रों में राजनीतिक चेतना का विकास

अंग्रेज़ी तथा भारतीय भाषाओं के पत्रों ने भारतीय राजनीतिक चेतना के प्रसार–प्रचार में उल्लेखनीय भूमिका निभाई। 1857 के विद्रोह से लेकर भारत की स्वतन्त्रता प्राप्ति तक राष्ट्रीय आन्दोलन के हर चरण में भारतीय पत्रकारिता ने राजनीतिक चेतना के विकास में उल्लेखनीय योगदान दिया था। आधुनिक भारतीय पत्रकारिता के जनक राजा राममोहन राय की सम्बाद कौमुदी तथा अक्षय कुमार दत्त की तत्व बोधिनी पत्रिका, लोकहितवादी के पत्र हितवादी में सरकार की आर्थिक नीतियों की आलोचना की गई थी। द्वारिकानाथ टैगोर के पत्र बैंगाल हरकारा के 1843 के अंकों में भारत में भी जनता की समस्याओं का निराकरण करने के लिए 1830 की फ्रांस की जुलाई क्रान्ति का अनुकरण करने की बात कही गई थी। गिरीश चन्द्र घोष के पत्र हिन्दू पैट्रिएट (सम्पादक हरीश चन्द्र मुकर्जी) में 1861 में दीन बन्धु मित्र का नाटक नील दर्पण प्रकाशित किया। बाद में इस पत्र पर ईश्वर चन्द्र विद्यासागर का नियन्त्रण हो गया। इस पत्र ने सरकार की ज़्यादतियों की कटु आलोचना की और भारतीयों को उच्च सरकारी पदों पर नियुक्त किए जाने की मांग की। ईश्वर चन्द्र विद्यासागर का एक अन्य पत्र सोमप्रकाश भी एक राष्ट्रवादी पत्र था। इस पत्र ने किसानो को उनके अधिकार दिलाने के लिए अभियान छेड़ा था। मोती लाल घोष के पत्र अमृत बाज़ार पत्रिका को सरकार की नीतियों की कटु आलोचना करने के कारण उसके कोप का भाजन होना पड़ा था। भारतेन्दु हरिश्चन्द्र ने अपने पत्र कवि वचन सुधा में तन–मन–धन से स्वदेशी अपनाने की आवश्यकता पर ज़ोर दिया। कवि वचन सुधा के नवम्बर, 1872 के अंक में भारतेन्दु ने इस बात पर ज़ोर दिया कि भारतीय वाणिज्य का पुनरोद्धार करने के लिए भारतवासियों को व्यापक स्तर पर तकनीकी शिक्षा ग्रहण करने की आवश्यकता थी। 23 मार्च, 1874 की कविवचन सुधा में भारतेन्दु हरिश्चन्द्र की अध्यक्षता में स्वदेशी वस्त्रों के प्रयोग के सम्बन्ध में बनारस वासियों द्वारा अंगीकार किया गया एक प्रतिज्ञा–पत्र प्रकाशित हुआ था–

हमलोग सर्वांतर्यामी सब स्थल में वर्तमान और नित्य सत्य–परमेश्वर को साक्षी देकर यह नियम मानते हैं और लिखते हैं कि हम लोग आज के दिन से कोई विलायती कपड़ा न पहिनेंगे और जो कपड़ा पहिले मोल ले चुके हैं और आज की मिती तक हमारे पास है उनको तो उनके जीर्ण हो जाने तक काम में लावेंगे पर नवीन मोल लेकर किसी भाँति का भी विलायती कपड़ा न पहिरेंगे, हिंदुस्तान का ही बना कपड़ा पहिरेंगे।

1873 में एक बंगला त्रैमासिक मुकर्जीज़ मैग्ज़ीन में भोलानाथ चन्द्र ने भारत में बिटिश आर्थिक नीति पर कठोर प्रहार किए। एम0 जी0 रानाडे के मराठी पत्र ज्ञान प्रकाश तथा इन्दु प्रकाश दोनों ही पत्रों में राजनीतिक एवं आर्थिक चेतना का प्रचार–प्रसार किया जाता था।

लोकमान्य तिलक ने मराठी भाषा के पत्र केसरी तथा अंग्रेज़ी पत्र मराठा में औपनिवेशिक शासन के शोषक एवं दमनकारी स्वरूप का निर्भीक चित्रण किया। लोकमान्य ने मराठा में ब्रिटिश भारतीय सरकार द्वारा समाज सुधार के नाम पर भारतीयों की सामाजिक परम्पराओं में हस्तक्षेप करने की नीति का विरोध किया। उन्होंने 1891 के 'एज ऑफ़ कन्सेन्ट बिल' का इसीलिए विरोध किया। हिन्दू, नेटिव ओपीनियन, संजीवनी, ज्ञान प्रकाश, अम्बाला गज़ट, हिन्दी प्रदीप, ब्राह्मण, नजमुल अखबार, भारत जीवन आदि पत्रों में सरकार की आर्थिक नीति की आलोचना के साथ भारतीयों को अपने आर्थिक उत्थान हेतु स्वयं प्रयास करने की आवश्यकता पर ज़ोर दिया गया था। भारतीय पत्रों में अब राजनीतिक दलों के गठन की आवश्यकता का अनुभव भी किया जाने लगा था। अपने पत्र बैंगाली के 27 मई, 1882 के अंक में नेशनल कान्फ्रेन्स के गठन की आवश्यकता पर सुरेन्द्रनाथ बनर्जी ने लिखा –

क्यों नहीं हमको एक राष्ट्रीय और नहीं तो कम से कम एक प्रान्तीय कांग्रेस का गठन कर लेना चाहिए, जिसमें कि देश के विभिन्न भागों से सार्वजनिक संस्थाओं के प्रतिनिधि अपने विचार रख सकें?

1. **उन्नीसवीं शताब्दी के उत्तरार्ध में राष्ट्रवाद के विकास के कारणों पर चर्चा कीजिए।**

5.4 उन्नीसवीं शताब्दी के उत्तरार्ध में भारत की आर्थिक स्थिति

5.4.1 कृषि तथा किसानों की दशा तथा अकालों की आवृत्ति

उन्नीसवीं शताब्दी के उत्तरार्ध के प्रारम्भ में भारतीय अर्थ–व्यवस्था में प्रगति तथा विकास के मूलभूत तत्वों का अभाव था। किसान को भूमि कर चुकाने के लिए और प्रायः अपनी अन्य आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए महाजन से कर्ज़ लेना पड़ता था। कुटीर उद्योगों के पतन तथा जनसंख्या में वृद्धि के कारण कृषि पर अधिक दबाव पड़ा। भारतीय जनता आर्थिक संकट के दौर से गुज़री जिसके कारण अकालों तथा महामारी की संख्या और उनकी भयावहता में वृद्धि हुई। अनेक फ़ैमिन कमीशनों की नियुक्ति हुई किन्तु किसानों को राहत पहुंचाने के लिए कोई ठोस कार्य नहीं हुआ, उल्टे अकाल के समय अनाज का निर्यात किया गया और शाही परिवार के सदस्यों के भारत आगमन पर तथा महारानी विक्टोरिया के सिंहासनारूढ़ होने की स्वर्ण जयन्ती और हीरक जयन्ती पर अथाह धन खर्च किया गया। उन्नीसवीं शताब्दी के उत्तरार्ध में लगभग 10 बड़े अकाल पड़े जिनमें करोड़ों जानें गईं। खाद्य पदार्थों के स्थान पर व्यापारिक दृष्टि से अधिक उपयोगी वाणिज्यिक फ़सलों के उत्पादन को वरीयता दी गई। उन्नीसवीं शताब्दी के उत्तरार्ध सरकार में भूमि कर के रूप में लिए जाने वाली राशि में पचास प्रतिशत की वृद्धि हुई। 1879 में 'डेकेन एग्रीकल्चरिस्ट्स रिलीफ़ एक्ट' तथा 1901 में 'पंजाब लैण्ड एलिएनेशन एक्ट' के द्वारा किसानों को इस विषय में राहत पहुंचाने का प्रयास किया गया। बाद में बुन्देलखण्ड, पश्चिमोत्तर प्रान्त और मध्य प्रान्त में भी इसी प्रकार के एक्ट्स बनाए गए किन्तु इनसे भी किसान महाजनों के चंगुल से नहीं निकल सके।

भारत सरकार के डायरेक्टर जनरल ऑफ़ स्टेटिस्टिक्स सर विलियम हंटर ने अपनी पुस्तक *इंग्लैण्ड्स वर्क इन इण्डिया* में लिखा था –

भारत के करीब चार करोड़ निवासी आमतौर पर अधभूखे रहकर ही जीवन व्यतीत करते हैं।

5.4.2 भारत की औद्योगिक एवं व्यापारिक स्थिति

इस काल में व्यापार और उद्योग की प्रगति हुई। वस्त्र तथा जूट उद्योग, खनन उद्योग में विकास हुआ परन्तु अंग्रेज़ों ने मुख्य रूप से रेलवेज़ और बागानों में पूंजी निवेश किया था और कपड़ा मिलों के अतिरिक्त किसी भी बड़े उद्योग के विकास में विशेष रुचि नहीं दिखाई गई। भारतीय व्यापारिक समुदाय में उद्यमशीलता तथा प्रगतिशीलता की कमी थी और अतः आधुनिक उद्योग लगाने में उसकी अभिरुचि नहीं थी। उसने स्थानीय व्यापार, दुकानदारी और रुपये के लेन–देन के व्यापार में ही अपनी गतिविधियां सीमित रखीं।

इंग्लैण्ड में औद्योगिक क्रान्ति हो जाने के बाद अंग्रेज़ों ने भारतीय बाज़ार में अपना माल बेचने के उद्देश्य से भारतीय उद्योग को नष्ट करने का षडयंत्र रचा। इस काल में ब्रिटिश मशीनरी का आयात बढ़ा और भारत से कच्चे माल तथा अनाज का निर्यात बढ़ा। औद्योगिक विकास का लाभ मुख्य रूप से विदेशियों को मिला तथा उन समृद्ध भारतीयों को मिला जिन्होंने विदेश तथा आन्तरिक व्यापार और महाजनी के धन्धे में भाग लिया। आम भारतीय तक इसका कोई लाभ नहीं पहुंचा। जनसंख्या में वृद्धि हुई किन्तु रोज़गार के अवसरों में नही। रेलवेज़ का उपयोग

ब्रिटिश पूंजीपतियों के निवेश पर उच्च लाभ देने के लिए तथा आन्तरिक एवं वाह्य व्यापार में अंग्रेज़ों ही लाभ पहुंचाने के लिए किया गया।

5.4.3 मुक्त व्यापार की नीति

मुक्त–व्यापार की एक–पक्षीय नीति अपना कर अंग्रेज़ों ने भारतीय सामान विदेशी बाज़ारों के लिए महंगा और भारत में अंग्रेज़ी माल सस्ता करा दिया। इससे भारतीय कारीगरों के हाथ से स्थानीय और विदेशी, दोनों ही बाज़ार निकल गए। भारत सरकार की वाणिज्यिक नीति लंकाशायर तथा मैनचेस्टर के कपड़ा मिलों के स्वामियों के हितों के अनुरूप बनाई गई थी मुक्त व्यापार के नाम पर भारतीय कपास पर पाँच प्रतिशत आयात कर की योजना को उन्हीं के प्रभाव के कारण रोक दिया गया।

5.4.4 प्रशासनिक तथा सैनिक व्यय

दरिद्रता में आकण्ठ डूबे भारत में प्रशासन पर किया जाने वाला व्यय विश्व में किसी भी देश के प्रशासनिक व्यय से अधिक था। प्रशासन तथा सेना की सभी शाखाओं में सभी ऊँचे पदों पर अंग्रेज़ों का एकाधिकार रहा। सरकारी व्यय में निरन्तर वृद्धि होती गई। सन् 1850–51 में यह 26.9 करोड़ था जो 1860–61 में 46.02 करोड़, 1890–91 में 82 करोड़ तथा 1904–05 में 101.47 करोड़ हो गया। भारतीय सेना पर भी अत्यधिक व्यय किया जा रहा था और उसका उपयोग विदेशी भूमि पर युद्ध करने के लिए भी किया जा रहा था। ब्रिटिश कालीन भारत में अत्यधिक प्रशासनिक व्यय का भार गरीब ग्रामीण जनता को उठाना पड़ता था। भारत सचिव लॉर्ड सेलिसबरी ने भी कर प्रणाली के इस दोष को स्वीकार किया था।

5.4.5 होम चार्ज

भारत में शासन करने के शुल्क के रूप में इंग्लैण्ड भेजे जाने वाली धनराशि में निरन्तर वृद्धि हो रही थी। सन 1860–61 में भारतीय ऋण 94.56 करोड़ रुपये था जो कि 1901–02 में बढ़कर 312 करोड़ रुपये हो गया था। इस ऋण के मूल में अंग्रेज़ों के साम्राज्य विस्तार हेतु किए गए युद्धों, 1857 के विद्रोह के दमन, आंग्ल–बर्मा युद्धों, आंग्ल–अफ़गान युद्धों में किए गए खर्च और 1858 में सत्ता परिवर्तन के बाद ईस्ट इण्डिया कम्पनी के हिस्सेदारों को दी जाने वाली राशि आदि का खर्चा था। फ़ासेट ने सन् 1880 में हाउस ऑफ कॉमन्स में आंग्ल–अफ़गान युद्धों का खर्च इंग्लैण्ड तथा भारत दोनों ही द्वारा वहन करने की बात उठाई थी। ग्लैड्सटन जैसे उदारवादी ने यह स्वीकार किया था कि यह ऋण ब्रिटिश साम्राज्यवाद की धरोहर था और इसकी प्रकृति बदलने को इंग्लैण्ड का कोई भी राजनीतिक दल तैयार नहीं था।

2. **उन्नीसवीं शताब्दी के उत्तरार्ध में भारत की आर्थिक स्थिति पर चर्चा कीजिए–**

.....

स्व मूल्यांकन हेतु प्रश्न

निम्नलिखित विषयों पर संक्षिप्त टिप्पणी लिखिए:

1. (क) होम चार्ज।

(ख) प्रशासनिक अपव्यय ।

6 नीचे लिखे प्रश्नों के उत्तर दीजिए:

(i) उन्नीसवीं शताब्दी के उत्तरार्ध में भारत का विदेश व्यापार उसके लिए हानिकारक सिद्ध हुआ या लाभदायक?

(ii) उन्नीसवीं शताब्दी के उत्तरार्ध में भारत में क्या एक भी अकाल नहीं पड़ा?

5.5 सरकार की आर्थिक नीतियों की समीक्षा और आर्थिक राष्ट्रवाद का उदय

5.5.1 भारत में आर्थिक राष्ट्रवाद के जनक दादाभाई नौरोजी

1857 के विद्रोह के कुछ दशकों बाद तक शिक्षित भारतीय वर्ग से सम्बद्ध राजनेताओं की यह आम धारणा थी कि ब्रिटिश शासन भारतीयों के लिए लाभकारी रहा है। परन्तु समय बीतने और राजनीतिक चेतना के विकास के साथ–साथ उनकी इस धारणा में अन्तर आया। भारत में आर्थिक राष्ट्रवाद के जनक, ब्रिटिश

सांसद रह चुके दादा भाई नौरोजी अर्थशास्त्र में निष्णात थे। उन्होंने 1867 में अपने एक निबन्ध में लिखा था कि आम भारतीयों को ब्रिटिश शासन से कोई लाभ नहीं हुआ है। 1871 में उन्होंने भारत की लगातार बढ़ती हुई निर्धनता का उल्लेख किया और 1865 के उड़ीसा में पड़ने वाले का हवाला देते हुए अकालों की बढ़ती हुई संख्या तथा उनकी भयावहता पर भी प्रकाश डाला। उन्होंने अंग्रेज़ों के शान्तिपूर्ण तथा सबको सुरक्षा प्रदान करने वाले शासन में आम जनता की दुखद स्थिति के बारे में सबका ध्यान आकर्षित करना चाहा। प्रारम्भ में अनेक भारतीय राजनेता यह समझते थे कि उनके शासक और आम ब्रिटिश नागरिक भारत की वास्तविक दुर्दशा से अनभिज्ञ हैं इसलिए उन्होंने अपने प्रयासों से ब्रिटिश जनता, ब्रिटिश संसद तथा ब्रिटिश प्रशासन को उस वास्तविकता से अवगत कराना चाहा। उन्होंने भारत के खाद्यान्न तथा अन्य उत्पादन, उसके आयात, निर्यात, प्रति व्यक्ति औसत आय, शासन पर होने वाले व्यय तथा जन कल्याण पर किए जाने वाले व्यय सम्बन्धी प्रामाणिक आंकड़े एकत्र किए। दादा भाई ने अनथक प्रयास कर अन्य स्रोतों से आवश्यक जानकारी एकत्र की। 27 जुलाई, 1870 को लन्दन में सोसायटी ऑफ आर्ट्स के तत्वाधान में उन्होंने अपना प्रसिद्ध पत्र *दि वान्ट्स एण्ड मीन्स ऑफ इण्डिया* पढ़ा। इस पत्र में उन्होंने यह प्रदर्शित किया कि वर्तमान काल में भारत अपनी आवश्यकताओं की स्वयं पूर्ति करने में सक्षम नहीं है। उन्होंने इस बात का खुलासा किया कि होमचार्ज और भारत में ब्रिटिश पूंजी निवेश पर लाभांश के रूप में प्रति वर्ष जहाजों में भरकर धन इंग्लैण्ड भेज दिया जाता था। दादा भाई नौरोजी ने सन् 1873 में 'सेलेक्ट कमेटी ऑन इण्डियन फ़ाइनेन्स' के समक्ष अपना आलेख *पॉवर्टी ऑफ इण्डिया* प्रस्तुत किया। 1876 में दादा भाई नौरोजी ने इस आलेख को लन्दन की 'ईस्ट इण्डिया एसोसियेशन' की बम्बई शाखा में पढ़ा। अंग्रेज़ों की आर्थिक दोहन की नीति पर प्रकाश डालते हुए उन्होंने कहा –

भारत के कुल 5 करोड़ पॉन्ड वार्षिक राजस्व में से कुल एक करोड़ बीस लाख पॉन्ड प्रति वर्ष इंग्लैण्ड चले जाते हैं।

दादा भाई नौरोजी ने पुराने विदेशी शासकों की तुलना उन कसाइयों से की जो कि इधर–उधर मारकाट करके खून बहाते थे पर अंग्रेज़ों ने वैज्ञानिक विधि से भारतीय अर्थ–व्यवस्था के मर्म पर ऐसी चोट की कि खून का एक कतरा भी बहता हुआ नहीं दिखाई दिया और इस घाव को छुपाने के लिए उन्होंने उसके ऊपर सभ्यता और प्रगति की ऊँची–ऊँची बातों का प्लास्टर लगा दिया। उन्होंने इस बात पर हैरानी जताई कि बड़ी संख्या में शिक्षित होते हुए सरकार को उच्च पदों पर नियुक्ति योग्य भारतीय पर्याप्त संख्या में नहीं मिल रहे हैं।

1888 में दिए गए अपने *बेनिफ़िट्स ऑफ ब्रिटिश रूल एण्ड पॉवर्टी ऑफ इण्डिया* शीर्षक भाषण में दादा भाई नौरोजी ने भारत में ब्रिटिश शासन एक वरदान सिद्ध हुआ या कि एक अभिशाप, इसको जानने की एक मात्र कसौटी भारत की आर्थिक स्थिति को माना।

होम चार्ज अर्थात् भारतीय ऋण पर दादाभाई नौरोजी की प्रतिक्रिया अत्यन्त तीव्र थी। उन्होंने मई, 1867 में लन्दन में ईस्ट इण्डिया एसोसियेशन में पढ़े गए अपने पत्र में अंग्रेज़ों को चेतावनी देते हुए कहा था कि आर्थिक बोझ के कारण असन्तुष्ट बीस करोड़ से भी अधिक भारतीय दुबारा विद्रोह कर सकते हैं।

दादा भाई नौरोजी ने रेलवेज़ में ब्रिटिश पूंजी निवेश पर सरकार द्वारा पाँच प्रतिशत लाभ की गारण्टी की नीति की कटु आलोचना की। उनकी पुस्तक *पॉवर्टी एण्ड अनब्रिटिश रूल इन इण्डिया* भारत में आर्थिक राष्ट्रवाद की धर्म पुस्तक कही जा सकती है।

5.5.2 अन्य भारतीय नेताओं का आर्थिक राष्ट्रवाद के विकास में योगदान

दादा भाई नौरोजी की आर्थिक राष्ट्रवाद की विचारधारा को उनके समकालीन नेताओं ने अपना भरपूर समर्थन दिया। उन्होंने दमनकारी भू राजस्व व्यवस्था को किसानों की विपन्नता के लिए ज़िम्मेदार बताया। किसानों की निर्धनता अकाल की भयावहता को बढ़ाने में भी सहायक होती थी। एम0 जी0 रानाडे ने किसानों के भूमि पर स्वामित्व के मुद्दे को उठाया। उन्होंने पूना से त्रैमासिक पत्रिका *पूना सार्वजनिक सभा* का प्रकाशन किया। इस पत्रिका में उन्होंने तथा जी0 वी0 जोशी ने अगले दो दशकों तक भारत की दयनीय अर्थ–व्यवस्था के हर पहलू पर चर्चा की। सन् 1890 में अपने एक निबन्ध में एम0 जी0 रानाडे ने लिखा –

भारत में व्यापक निर्धनता है, इसके लिए सबूत जुटाने की ज़रूरत नहीं है। इसको जानने के लिए हमको सिर्फ़ सड़क पर चलने की और भारत की आर्थिक स्थिति पर थोड़ा गौर करने की ज़रूरत है।

भारत की अर्थ–व्यवस्था पर अनुसंधान की परिणति 1901–03 में रमेश चन्द्र दत्त की दो खण्डों में प्रकाशित *इकॉनॉमिक हिस्ट्री ऑफ इण्डिया* से हुई जिसमें कि उन्होंने भारतीयों के उद्योग, व्यापार, कृषि के इतिहास की चर्चा की। उन्होंने भारत का शासन करने की सेवा के एवज़ में इंग्लैण्ड भेजे जाने वाले शुल्क को भारत में अकालों की बढ़ती संख्या और उनकी भयावहता के लिए ज़िम्मेदार बताया। इस आर्थिक दोहन से भारत के औद्योगिक विकास में भी बाधा पहुंची। सन् 1901 में उन्होंने लॉर्ड कर्ज़न के नाम खुले पत्र में रैयतवारी व्यवस्था तथा किसानों के कर निर्धारण में ज़्यादती को दक्षिण भारत में किसानों की दरिद्रता और बार–बार

अकाल पड़ने के लिए ज़िम्मेदार ठहराया।अल्ताफ़ हुसेन हाली ने 1874 में रचित अपनी नज़्म *हुब्बे वतन* में भारतीयों को आत्मनिर्भर बनने का

सन्देश देते हुए कहा था –

क़ौम की इज़्ज़त अब हुनर से है, इल्म से या कि सीमो–ज़र से है ।
कोई दिन में वो दौर आएगा, बे–हुनर भीक तक न पाएगा ।।

(अब किसी जाति का सम्मान उसके कला–कौशल, ज्ञान अथवा समृद्धि से होता है। अब वह समय आने वाला है जबकि कला–कौशल व्यक्ति को कोई भीक तक नहीं देगा)

दयानन्द सरस्वती ने भारत के आर्थिक पुनरुत्थान को महत्व दिया था और इसके लिए स्वदेशी का प्रचार करना उन्होंने अपना लक्ष्य बना लिया था। अपने ग्रंथ *सत्यार्थ प्रकाश* में उन्होंने यूरोपियनों के स्वदेश प्रेम और उनके अध्यवसाय की प्रशंसा की थी। अंग्रेज़ी सरकार के कार्यालयों और अदालतों में स्वदेशी वेशभूषा में जाने वालों को तो अपने जूते उतार कर जाना पड़ता था किन्तु पाश्चात्य वेशभूषा धारण करने वाले बूट पहनकर अदालतों और कार्यालयों में प्रवेश कर सकते थे। इस पर उन्होंने टिप्पणी करते हुए कहा–

यूरोपियन अपनी स्वजाति की उन्नति के लिए तन–मन–धन व्यय करते हैं, आलस्य को छोड़ उद्योग किया करते हैं। देखो! अपने देश के बने हुए जूते को कार्यालय और कचहरी में जाने देते हैं, इस देशी जूते को नहीं।

अंग्रेज़ों की ऊपरी तौर पर सुधार की और अन्दर ही अन्दर शोषण करने की नीति पर आधुनिक हिन्दी युग के जन्मदाता भारतेन्दु हरिश्चन्द्र ने एक मुकरी लिखी थी –

भीतर–भीतर सब रस चूसैं, हंसि–हंसि कै, तन–मन–धन मूसैं।
जहिर बातन में अति तेज, क्यों सखि साजन? नहिं, अंगरेज।।

भारतेन्दु ने भारतीय नवयुवकों को यह सलाह दी कि वो पहले अंग्रेज़ी पढ़ें फिर विलायत जाकर तकनीकी ज्ञान प्राप्त करें और उसके बाद भारत लौटकर आधुनिक उद्योग की स्थापना करें ताकि देश की दीनता मिटाई जा सके। बिपिन चन्द्र पाल ने भारत में विदेशी पूंजी निवेश को भारतीय उद्योग के विकास में बाधक माना था। 1890 में अंग्रेज़ श्रोताओं के समक्ष दिए गए अपने एक भाषण में सुरेन्द्र नाथ बनर्जी ने उनका ध्यान करोड़ों भारतीयों की दयनीय और कुत्सित निर्धनता की ओर खींचा। सी0 वाई0 चिन्तामणि, गोपालकृष्ण गोखले, दिनशा वाचा आदि ने भारत में निरन्तर हो रही आर्थिक अवनति को विश्व के आर्थिक इतिहास की सबसे बड़ी त्रासदी बताया। धीरे–धीरे जागरूक भारतीयों के लिए आर्थिक मुद्दे सबसे महवपूर्ण हो गए।

औपनिवेशिक सरकार द्वारा भारतीय बाज़ारों को ब्रिटिश उत्पादों से भर देने तथा नवोदित भारतीय उद्योग के विकास में बाधा पहुंचाने का हर सम्भव प्रयास किया गया। इसीलिए राष्ट्रवादी नेताओं की ओर से उपनिवेशवादी अर्थतन्त्र पर सबसे भीषण प्रहार भारत से इंग्लैण्ड की ओर धन प्रवाह, और भारत के औद्योगिकीकरण में बाधा डालने के विषय में किए गए।

3. आर्थिक राष्ट्रवाद के उदय पर चर्चा कीजिए–

5.5.3 आर्थिक राष्ट्रवाद के विकास में भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस का योगदान

भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस जागरूक भारतीय शहरी मध्य वर्ग का प्रतिनिधित्व करती थी। इसके प्रमुख भारतीय नेताओं को भारत में अंग्रेज़ी शासन की आर्थिक दोहन की नीति स्वीकार्य नहीं थी। 1886 के कांग्रेस अधिवेशन की अध्यक्षता करते हुए दादा भाई नौरोजी ने ब्रिटिश शासन के कारण भारत की विपन्नता का उल्लेख किया था।

1888 में सरकार ने जब नमक कर में वृद्धि की तो कांग्रेस ने इस वृद्धि का विरोध किया क्योंकि इससे सबसे अधिक हानि निर्धन वर्ग को होने वाली थी।

कांग्रेस ने पॉन्ड–रूपिया सम्बन्ध में भारतीय हितों की उपेक्षा और नवोदित भारतीय मिलों के विकास में बाधा डालने की सरकारी नीति की आलोचना की थी।

कांग्रेस की एक प्रमुख मांग थी कि भारतीयों को प्रशासन, न्याय व्यवस्था, सेना, रेलवेज़, शिक्षा तथा अन्य क्षेत्रों में उच्च पदों पर नियुक्त किया जाए। इससे न केवल योग्य भारतीयों को उन्नति के अवसर प्राप्त होते अपितु सरकार के खर्च में भी कमी आती।

1902 के कांग्रेस अधिवेशन में भारी नमक कर के कारण पर्याप्त नमक खरीद पाने में असमर्थता के फलस्वरूप निर्धन वर्ग में नमक की कमी से होने वाली अनेक बीमारियों के फैलने पर चिन्ता व्यक्त की गई और कपास पर उत्पादन शुल्क हटाने की मांग की गई क्योंकि इससे भारतीय कपड़ा उद्योग के विकास में बाधा पहुंच रही थी। 1904 के कांग्रेस अधिवेशन में दुर्भिक्ष पीड़ित क्षेत्रों में भूमि–कर में रियायत किए जाने की बात भी रखी। सरकार से यह भी अपील की गई कि वह वैज्ञानिक कृषि पद्धति को प्रोत्साहित करने और तकनीकी शिक्षा का प्रसार करने के लिए धनराशि आवंटित करे। देश का आधुनिक ढंग से औद्योगिकीकरण करने में सरकार द्वारा पूरी निष्ठा से अपना सहयोग करने तथा भारतीय उद्योग के संरक्षण के लिए आयातित वस्तुओं पर तटकर (टैरिफ़) लगाने की मांगे कांग्रेस अधिवेशनों में रखी जाने वाली मांगों में शामिल थीं। स्वदेशी उद्योग के विकास को प्रोत्साहन देने के लिए कांग्रेस के अधिवेशनों के साथ औद्योगिक प्रदर्शनियां लगाई गईं। कई स्थानों पर स्वदेशी भंडार खोले गए।

5.5.4 आर्थिक राष्ट्रवाद के विकास में भारतीय समाचार पत्रों का योगदान

भारतीय समाचार पत्रों, विशेषकर भारतीय भाषाओं के समाचार पत्रों में आर्थिक राष्ट्रवाद के प्रसार–प्रचार में भूमिका अत्यन्त सराहनीय थी। अंग्रेज़ी, बंगला, मराठी, हिन्दी, उर्दू, तमिल आदि सभी भाषाओं में प्रकाशित पत्रों में सरकार की आर्थिक नीतियों की कटु आलोचना की गई तथा देशवासियों को अपनी आर्थिक दुर्दशा के निवारण के लिए आत्मनिर्भर होने का सन्देश दिया गया।

हिन्दू, मराठा, नेटिव ओपीनियन, संजीवनी, ज्ञान प्रकाश, अम्बाला गज़ट, केसरी, कवि वचन सुधा, भारत *जीवन* आदि पत्रों में सरकार की आर्थिक नीति की आलोचना के साथ भारतीयों को अपने आर्थिक उत्थान हेतु स्वयं प्रयास करने की आवश्यकता पर ज़ोर दिया गया था।

कवि वचन सुधा के नवम्बर, 1872 के अंक में भारतेन्दु ने इस बात पर ज़ोर दिया कि भारतीय वाणिज्य का पुनरोद्धार करने के लिए भारतवासियों को व्यापक स्तर पर तकनीकी शिक्षा ग्रहण करने की आवश्यकता थी। 23 मार्च, 1874 की *कविवचन सुधा* में प्रकाशित प्रतिज्ञा–पत्र में स्वदेशी व्रत धारण करने वालों ने भगवान को साक्षी मानते हुए यह प्रण किया कि वो अब विदेशी कपड़े का उपयोग नहीं करेंगे और केवल स्वदेशी कपड़ा पहनेंगे।

1873 में एक बंगला त्रैमासिक *मुकर्जीज़ मैग्ज़ीन* में भोलानाथ चन्द्र ने भारत में बिटिश आर्थिक नीति पर कठोर प्रहार किए। भारतीय भाषाओं के समाचार पत्रों में सरकार की शोषक एवं दमनकारी नीतियों की कटु आलोचना पर प्रतिबन्ध लगाने के लिए गवर्नर जनरल लॉर्ड लिटन ने 1878 में वर्नाक्युलर प्रेस एक्ट लागू किया। भारतीय समाचार पत्रों ने सरकार के सन् 1881 के फ़ैक्ट्री एक्ट को भारतीय उद्योग के विकास में बाधक माना था। लोकमान्य तिलक के पत्र *मराठा* के 25 मई, 1884 के अंक में भारत से कच्चे माल के निर्यात तथा इंग्लैण्ड से तैयार माल भारत आना भारतीय कारीगरों तथा उद्योग के लिए हानिकारक बताया गया था। अनाज का निर्यात भी भारत के लिए दो प्रकार से हानिकारक सिद्ध हुआ। एक तो अकाल की स्थिति में भी अनाज के निर्यात से अकाल की विभीषिका और बढ़ गई और इसके अलावा इसके कारण अनाज के दामों में वृद्धि हो गई जिसके कारण निर्धन वर्ग अपनी आवश्यकता

के अनुरूप अनाज खरीदने में और भी असमर्थ हो गया। उर्दू पत्र *अखबार–ए–आम, कैसरे अखबार,* हिन्दी पत्र *भारत जीवन,* तथा मराठी पत्र *हितवादी* में खाद्यान्न के मूल्य में वृद्धि को भारतीय जनता के लिए हानिकारक बताया गया था। इलाहाबाद से प्रकाशित हिन्दी पत्र *हिन्दी प्रदीप* के सम्पादक बालकृष्ण भटट ने सरकार की 'फ्री ट्रेड' नीति की आलोचना की और यह बताया कि इंग्लैण्ड में स्वदेशी उद्योग को हर प्रकार का संरक्षण दिया जाता है जब कि भारत में विदेशी कपड़े पर आयात शुल्क इस लिए बन्द कर दिया जाता है क्योंकि इससे मैनचेस्टर के मिलों का कपड़ा भारत में महंगा हो जाएगा और फिर वह भारतीय बाज़ारों में बम्बई के मिलों में तैयार सस्ते कपड़े का मुकाबला नहीं कर पाएगा। अंग्रेज़ी पत्र *न्यू इण्डिया, बैंगाली,* बंगला पत्र *सुलभ दैनिक,* हिन्दी पत्र *हिन्दी प्रदीप* आदि में भारतीयों को स्वदेशी अपनाने दी सलाह दी गई।

स्व मूल्यांकन हेतु प्रश्न

निम्नलिखित विषयों पर संक्षिप्त टिप्पणी लिखिए:

1. (क) भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस द्वारा सरकार की आर्थिक नीतियों की समीक्षा।

(ख) भारतीय समाचार पत्रों में मुक्त व्यापार नीति की आलोचना।

2. नीचे लिखे प्रश्नों के उत्तर दीजिए।

(i) क्या यह कहना उचित होगा कि भारत में आर्थिक राष्ट्रवाद के विकास ने भारत में सक्रिय राजनीतिक विरोध की पृष्ठभूमि तैयार की?

(ii) *पॉवर्टी एण्ड अनब्रिटिश रूल इन इण्डिया* के लेखक कौन थे?

5.6 आर्थिक नीतियों की आलोचना पर सरकार की प्रतिक्रिया तथा भारतीयों द्वारा स्वदेशी जागरण के प्रारम्भिक प्रयास

5.6.1 भारतीयों द्वारा आर्थिक नीतियों की आलोचना पर सरकार की प्रतिक्रिया

भारत की आर्थिक स्थिति के विषय में सन् 1881 से लेकर 1891 तक की प्रान्तीय रिपोर्ट्स के आधार पर यह घोषित किया गया कि भारत आर्थिक दृष्टि से सुखद स्थिति में है। गैर सरकारी ब्रिटिश लेखकों ने भी सरकार के दावों की पुष्टि की। भारत में आर्थिक राष्ट्रवाद के उदय से अंग्रेज़ सरकार की आर्थिक नीतियों कोई उल्लेखनीय सुधार नहीं आया। भारत का आर्थिक दोहन पूर्ववत जारी रहा बल्कि उसमें तीव्रता और आ गई। लॉर्ड लिटन के दमनकारी शासन में वर्नाक्युलर प्रेस एक्ट द्वारा भारतीय भाषाओं के पत्रों में सरकार की आलोचना करने पर प्रतिबन्ध लगा दिया गया। ब्रिटिश भारतीय सरकार सरकार पहले की तरह से ही ब्रिटिश उद्योगपतियों तथा व्यापारियों के इशारों पर चलती रही। सरकार ने किसानों की दशा सुधारने तथा अकाल राहत के लिए ऊपरी प्रयास तो किए परन्तु अपने शोषक स्वरूप में कोई क्रान्तिकारी परिवर्तन नहीं किया।

5.6.2 स्वदेशी आन्दोलन से पूर्व आर्थिक आत्म निर्भरता प्राप्त करने के प्रयास

जागरूक भारतीयों ने आत्म निर्भरता की महत्ता को समझ लिया था। बंगाल में राजनारायण बोस की प्रेरणा से नबगोपाल बोस ने जातीय मेला (बाद में 1867 में इसका नाम हिन्दू मेला रख दिया गया।) का आयोजन किया। इस मेले के अधिवेशनों में भारतीय उत्पादों की प्रदर्शनी लगाई जाती थी। सन् 1896 से कांग्रेस के वार्षिक अधिवेशनों के साथ औद्योगिक प्रदर्शनी का आयोजन होने लगा। कुटीर उद्योगों का विकास करना तथा अपने संसाधनों के बल पर तकनीकी संस्थाओं की स्थापना करना और आधुनिक तकनीक पर आधारित स्वदेशी कारखाने खोलना इस काल में देशभक्ति का परिचायक मानी गई।

उन्नीसवीं शताब्दी के उत्तरार्ध में भारत में आर्थिक राष्ट्रवाद के विकास ने बीसवीं शताब्दी के सक्रिय राजनीतिक विरोध की पृष्ठभूमि तैयार की। आर्थिक राष्ट्रवाद ने भविष्य के सभी राजनीतिक आन्दोलनों में आर्थिक समस्याओं के निराकरण को शामिल किया जाना आवश्यक कर दिया और समस्त भारत को आत्मनिर्भरता की महत्ता से अवगत कराया। भारतीय नवजागरण अथवा पुनर्जागरण ने भारत में राजनीतिक तथा आर्थिक जागृति की पृष्ठभूमि तैयार कर दी थी। राजा राममोहन राय ने प्रशासनिक तथा सैनिक व्यय में कमी किए जाने की मांग की थी तथा रैयतवारी भू–राजस्व प्रणाली में समय–समय पर लगान बढ़ाते रहने की व्यवस्था के स्थान पर एक निश्चित राशि लगान के

रूप में निर्धारित किए जाने की मांग की थी। द्वारिकानाथ टैगोर ने भारत में आधुनिक बैंकिग में प्रथम स्वदेशी बैंक स्थापित किया था। ब्रिटिश उद्योगपतियों तथा व्यापारियों के इशारे पर चलने वाली ब्रिटिश भारतीय सरकार ने भारतीयों की न्यायसंगत आर्थिक मांगों की हर स्तर पर उपेक्षा की। सरकार की आर्थिक नीतियों में किंचित भी सुधार न आने के कारण भारतीयों का आर्थिक असन्तोष राजनीतिक आन्दोलन तथा आर्थिक पुनरुत्थान हेतु स्वदेशी जागरण में परिलक्षित हुआ।

4. **भारतीयों द्वारा स्वदेशी जागरण के प्रारम्भिक प्रयासों पर चर्चा कीजिए–**

.....

स्व मूल्यांकन हेतु प्रश्न

निम्नलिखित विषयों पर संक्षिप्त टिप्पणी लिखिए:

1. (क) आर्थिक आलोचना पर सरकार की प्रतिक्रिया।

(ख) स्वदेशी जागरण के आरम्भिक प्रयास।

2. नीचे लिखे प्रश्नों के उत्तर दीजिए।

(i) किस गवर्नर जनरल ने भारतीय भाषाओं के पत्रों द्वारा सरकार की आलोचना करने पर प्रतिबन्ध लगाया था?

(ii) कांग्रेस के अधिवेशनों के साथ औद्योगिक प्रदर्शनी लगाने की परम्परा कब से शुरू हुई?

5.7 सार संक्षेप

भारत में आर्थिक राष्ट्रवाद के विकास ने भविष्य के सभी राजनीतिक आन्दोलनों में आर्थिक समस्याओं के निराकरण को शामिल किया जाना आवश्यक कर दिया और समस्त भारत को आत्मनिर्भरता की महत्ता से अवगत कराया। ब्रिटिश उद्योगपतियों तथा व्यापारियों के इशारे पर चलने वाली ब्रिटिश भारतीय सरकार ने भारतीयों की न्यायसंगत आर्थिक मांगों की हर स्तर पर उपेक्षा की। किसानों के ऊपर करों का बोझ अत्यधिक था। इंग्लैण्ड में ओद्योगिक क्रान्ति हो जाने के बाद अंग्रेज़ों ने भारतीय बाज़ार में अपना माल बेचने के उद्देश्य से भारतीय उद्योग को नष्ट करने का षडयंत्र रचा। मुक्त–व्यापार की एक–पक्षीय नीति अपना कर अंग्रेज़ों ने भारतीय सामान विदेशी बाज़ारों के लिए महंगा और भारत में अंग्रेज़ी माल सस्ता करा दिया। भारत में नागरिक तथा सैन्य प्रशासन पर किया जाने वाला व्यय विश्व में किसी भी देश के प्रशासनिक व्यय से अधिक था। भारत में आर्थिक राष्ट्रवाद के जनक दादा भाई नौरोजी ने सरकार की आर्थिक शोषण की नीति की कटु एवं निर्भीक आलोचना की।

कांग्रेस की प्रमुख मांग थी कि भारतीयों को उच्च पदों पर नियुक्त किया जाए,भारतीय उद्योग को बढ़ावा दिया जाए तथा सरकारी व्यय, भूराजस्व, और नमक कर में कमी की जाए। अंग्रेज़ी, बंगला, मराठी, हिन्दी, उर्दू, तमिल आदि सभी भाषाओं में प्रकाशित पत्रों में सरकार की आर्थिक नीतियों की कटु आलोचना की गई तथा देशवासियों को अपनी आर्थिक दुर्दशा के निवारण के लिए आत्मनिर्भर होने का सन्देश दिया गया। कुटीर उद्योगों का विकास करना तथा अपने संसाधनों के बल पर तकनीकी संस्थाओं की स्थापना करना और आधुनिक तकनीक पर आधारित स्वदेशी कारखाने खोलना इस काल में देशभक्ति का परिचायक मानी गई।

5.8 पारिभाषिक शब्दावली

मुक्त व्यापारः बिना किसी बाधा तथा हर प्रकार के कर से मुक्त व्यापार।

होमचार्जः भारत पर शासन करने की एवज़ में भारत द्वारा इंग्लैण्ड को दिया जाने वाला धन।

हाउस ऑफ कॉमन्सः ब्रिटिश संसद।

वान्ट्स एण्ड मीन्सः आवश्यकताएं एवं साधन।

अनब्रिटिशः ब्रिटिश चरित्र तथा प्रतिष्ठा के विरुद्ध।

तटकरः समुद्री मार्ग से आयातित माल पर लगाया जाने वाला कर।

वाणिज्यिक स्वायत्तताः व्यापारिक सम्बन्ध रखने या तोड़ देने की स्वतन्त्रता।

5.9 सन्दर्भ ग्रंथ

मजूमदार, आर0 सी0 (सम्पादक)–*ब्रिटिश पैरामाउंट्सी एण्ड इण्डियन रिनेसा,*

(भाग 1 व 2), बम्बई, 1965
ताराचन्दः *भारतीय स्वतन्त्रता आन्दोलन का इतिहास* (चार भागों में), नई दिल्ली, 1984
चन्द्रा, बिपन – *दि राइज़ एण्ड ग्रोथ ऑफ इकानॉमिक नेशनलिज़्म इन इण्डिया*
नई दिल्ली, 1965
नौरोजी, दादाभाई – *पॉवर्टी एण्ड अन ब्रिटिश रूल इन इण्डिया*, लन्दन, 1902
बनर्जी, एस0 एन0 – *नेशन इन मेकिंग*, कलकत्ता, 1915
दत्त, रमेशचन्द्र – *दि इकॉनॉमिक हिस्ट्री ऑफ इण्डिया*, नई दिल्ली, 1965

5.10 स्व मूल्यांकित प्रश्नों के उत्तर

1. (क) देखिए 5.3.5 होम चार्ज
   (ख) देखिए 5.3.4 प्रशासनिक तथा सैनिक व्यय

2. (i) हानिकारक।

(ii) अनेक अकाल पड़े।

1. (क) देखिए 5.4.3 आर्थिक राष्ट्रवाद के विकास में भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस का योगदान।
   (ख) देखिए 5.4.4 आर्थिक राष्ट्रवाद के विकास में भारतीय समाचार पत्रों का योगदान।

2. (i) उचित होगा।

(ii) दादा भाई नौरोजी।

1. (क) देखिए 5.5.1 भारतीयों द्वारा आर्थिक नीतियों की आलोचना पर सरकार की प्रतिक्रिया।
(ख) देखिए 5.5.2 स्वदेशी आन्दोलन से पूर्व आर्थिक आत्म निर्भरता प्राप्त करने के प्रयास।

2. (i) लॉर्ड लिटन ने सन् 1878 में।

(ii) सन् 1896 से।

5.11 अभ्यास प्रश्न

1. उन्नीसवीं शताब्दी के उत्तरार्ध में भारत की औद्योगिक स्थिति पर प्रकाश डालिए।
2. भारत में अंग्रेज़ों की मुक्त व्यापार की नीति की समीक्षा कीजिए।
3. कांग्रेस ने अपने प्रथम चरण में आर्थिक राष्ट्रवाद के विकास में किस प्रकार योगदान दिया?
4. भारतीय भाषाओं के समाचार पत्रों ने ब्रिटिश सरकार की आर्थिक नीतियों की किस प्रकार आलोचना की?
5. रमेश चन्द्र दत्त द्वारा ब्रिटिश सरकार की आर्थिक नीतियों के आकलन पर प्रकाश डालिए।

इकाई छहः कांग्रेस पूर्व संगठनों का उदय एवं संवृद्धि

6.1 प्रस्तावना

6.2 इकाई के उद्देश्य

6.3 उन्नीसवीं शताब्दी के प्रथमार्ध में भारत में राजनीतिक चेतना का प्रसार

6.4 उन्नीसवीं शताब्दी के उत्तरार्ध में भारत में राजनीतिक चेतना का प्रसार

6.5 उन्नीसवीं शताब्दी के उत्तरार्ध में कांग्रेस की स्थापना से पूर्व के राजनीतिक संगठन

- 6.5.1 ब्रिटिश इण्डियन एसोसियेशन
- 6.5.2 बॉम्बे एसोसियेशन
- 6.5.3 मैड्रास नेटिव एसोसियेशन
- 6.5.4 ईस्ट इण्डियन एसोसियेशन
- 6.5.5 हिन्दू मेला
- 6.5.6 पूना सार्वजनिक सभा
- 6.5.7 इण्डियन लीग
- 6.5.8 इण्डियन एसोसियेशन
- 6.5.9 महाजन सभा
- 6.5.10 नेशनल कान्फ्रेन्स

6.6 सार संक्षेप

6.7 पारिभाषिक शब्दावली

6.8 सन्दर्भ ग्रंथ

6.9 स्व मूल्यांकित प्रश्नों के उत्तर

6.10 अभ्यास प्रश्न

6.1 प्रस्तावना

पिछली इकाई में हमने आर्थिक राष्ट्रवाद की संवृद्धि की चर्चा की थी। भारतीय नवजागरण अथवा पुनर्जागरण काल में ही राजनीतिक चेतना का विकास होने लगा था। वास्तव में धार्मिक, सामाजिक और शैक्षिक जागृति का प्रभाव आर्थिक तथा राजनीतिक जीवन पर पड़ना नितान्त स्वाभाविक है। राजा राममोहन राय ने उन्नीसवीं शताब्दी के तीसरे तथा चौथे दशक में ही अभिव्यक्ति की स्वतन्त्रता तथा जन–कल्याण के प्रति राज्य के दायित्व का मुद्दा उठाया था। धीरे–धीरे भारतीय बुद्धिजीवियों ने उदार पाश्चात्य राजनीतिक विचारधारा से प्रेरित होकर भारत में भी राजनीतिक सुधार के प्रयास प्रारम्भ कर दिए थे।

1857 के विद्रोह की असफलता के बाद जागरूक भारतीयों ने सशस्त्र क्रान्ति के द्वारा अंग्रेज़ों को भारत से हटाना असम्भव मान लिया था और भारत में दीर्घकाल तक ब्रिटिश साम्राज्य बने रहने की वास्तविकता को स्वीकार कर लिया था। अब उन्होंने महारानी के घोषणा पत्र में दिए गए आश्वासनों पर विश्वास कर भारत में ब्रिटिश संसदीय प्रणाली और लोकतान्त्रिक मूल्यों की स्थापना के प्रयास प्रारम्भ कर दिए। इस इकाई में भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस की स्थापना से पूर्व रारजनीतिक संगठनों की कार्य–प्रणाली तथा उनके उद्देश्यों से आपको परिचित कराया जाएगा। वास्तव में भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस से सम्बद्ध प्रायः सभी नेता कांग्रेस की स्थापना से पूर्व ही विभिन्न राजनीतिक संगठनों से जुड़ चुके थे। दादाभाई नौरोजी, एम0 जी0 रानाडे तथा सुरेन्द्रनाथ बनर्जी आदि ने कांग्रेस की स्थापना से पूर्व विभिन्न राजनीतिक संगठनों की स्थापना की थी। इन प्रारम्भिक राजनीतिक संगठनों ने भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस के लिए आवश्यक पृष्ठभूमि तैयार कर दी थी।

6.2 इकाई के उद्देश्य

इस इकाई का उद्देश्य उन्नीसवीं शताब्दी के भारत में राजनीतिक चेतना के क्रमिक विकास का अध्ययन करना है। इस इकाई में राजनीतिक चेतना का समस्त भारत में हुए विस्तार का अध्ययन किया जाएगा। इसके विस्तार में क्या बाधाएं आईं, इसकी क्या सीमाएं थीं और इसके कारण सरकार के द्वारा सुधार हेतु क्या कदम उठाए गए, इसकी चर्चा भी की जाएगी। भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस की स्थापना से पूर्व स्थापित राजनीतिक संगठनों की आपको विस्तृत जानकारी दी जाएगी। इस इकाई को पढ़कर आप जानेंगेः

- कांग्रेस की स्थापना से पूर्व के जागरूक भारतीय बुद्धिजीवियों के राजनीतिक विचार।
- राजनीतिक चेतना के प्रसार में साहित्य तथा पत्रकारिता का योगदान।
- कांग्रेस से पूर्व के राजनीतिक संगठनों के उद्देश्यों तथा उनके कार्यक्रम।
- कांग्रेस से पूर्व के राजनीतिक संगठनों के प्रयासों के फलस्वरूप ब्रिटिश सरकार की नीतियों में किए गए सुधार।

6.3 उन्नीसवीं शताब्दी के प्रथमार्द्ध में भारत में राजनीतिक चेतना का प्रसार

पाश्चात्य शिक्षा प्राप्त भारतीयों ने पाश्चात्य उदार एवं प्रगतिशील राजनीतिक विचारधारा से प्रभावित होकर अपने देश में भी राजनीतिक चेतना का प्रसार करने का निश्चय किया और इसमें उदार ब्रिटिश अधिकारियों तथा पश्चिम के उदार चिन्तकों ने उनका सहयोग किया। उन्नीसवीं शताब्दी के प्रारम्भ तक भारत में राजनीतिक चेतना का संचार नहीं हुआ था। देश की एकता, राष्ट्र तथा भारतीयता की अवधारणा का अभी तक विकास नहीं हुआ था। ईस्ट इण्डिया कम्पनी के दमन और शोषण के विरुद्ध संगठित विद्रोह का कोई भी प्रयास इस काल में नहीं हुआ था। आधुनिक राष्ट्रवाद के विकास में पाश्चात्य विचारधारा और शिक्षा की सर्वाधिक महत्वपूर्ण भूमिका रही। राष्ट्रवाद का विकास भारतीय नवजागरण से घनिष्ठ रूप से जुड़ा हुआ था। भारतीय नवजागरण और राष्ट्रीय आन्दोलन के अधिकांश नेता पाश्चात्य शिक्षा से लाभान्वित हुए और पाश्चात्य विचारधारा से प्रभावित हुए। भारतीय राष्ट्रवाद में लोकतांत्रिक प्रणाली, मताधिकार, उत्तरदायी सरकार की स्थापना, अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता, प्रेस की स्वतंत्रता, नागरिक अधिकार, कल्याणकारी शासन आदि की अवधारणाओं को पाश्चात्य विचारधारा से लिया गया। पाश्चात्य शिक्षा ने भारतीय राष्ट्रवाद में धर्मनिर्पेक्षता को स्थान दिलाया। भारतीयों ने 1215 में इंग्लैण्ड में मैग्नाकार्टा के अन्तर्गत नागरिक अधिकार प्रदान किए जाने के विषय में जाना। इंग्लैण्ड की 1688 की गौरवपूर्ण क्रान्ति से संवैधानिक

राजतन्त्र, 1776 की अमेरिकन क्रान्ति से स्वतन्त्रता तथा 1789 की फ्रांसीसी क्रान्ति से स्वतन्त्रता, समानता तथा भ्रातृत्व की भावना का अध्ययन कर उनके राजनीतिक दृष्टिकोण में आमूल परिवर्तन आया। बेंथम के उपयोगितावाद के प्रभाव से भारत में उदार राजनीतिक विचारों के विकास हेतु अनुकूल वातावरण बना। 1833 के एक्ट में धर्म, जन्म स्थान, वंश अथवा वर्ण के आधार पर सरकारी नौकरियों में नियुक्ति के समय भेदभाव न किए जाने की घोषणा की गई। अभिव्यक्ति की स्वतन्त्रता को मान्यता तथा भारत में आधुनिक प्रेस के विकास ने भारत में राजनीतिक चेतना के विकास में महत्वपूर्ण योगदान दिया। सर विलियम जोन्स द्वारा स्थापित एशियाटिक सोसायटी ने भारतीयों में अपने गौरवशाली अतीत से प्रेरणा लेकर अपने वर्तमान को सुधारने के लिए प्रयत्नशील होने के लिए उद्यत किया।

राजा राममोहन राय को भारत में राजनीतिक चेतना का अग्रदूत कहा जा सकता है। राजा राममोहन राय को भारत में संवैधानिक सीमाओं में रहते हुए राजनीतिक आन्दोलन करने का सूत्रधार कहा जा सकता है। 1823 में कार्यवाहक गवर्नर जनरल एडम ने प्रेस की स्वतन्त्रता पर प्रतिबन्ध लगा दिया था। राममोहन राय ने अपने सहयोगियों के साथ इस निर्णय के विरुद्ध सुप्रीम कोर्ट को एक मेमोरयल तथा किंग–इन–काउंसिल को एक याचिका भेजी थी। राममोहन राय ने प्रेस की स्वतन्त्रता को सरकारों के स्थायित्व के लिए ज़रूरी माना क्योंकि स्वतन्त्र प्रेस के माध्यम से ही सरकार को अपनी गलतियां सुधारने तथा अपने शासन को लोकप्रिय बनाने का अवसर मिलता है। 1826 में उन्होंने ईसाइयों को अन्य धर्मावलम्बियों से अधिक महत्व देने वाले ज्यूरी एक्ट का विरोध किया और इसके विरुद्ध इंग्लैण्ड के दोनों सदनों में याचिकाएं प्रस्तुत कीं। 1833 के चार्टर एक्ट के पारित होने से पूर्व उन्होंने इंग्लैण्ड में पार्लियामेन्ट की सेलेक्ट कमेटी के समक्ष फ़ौजदारी न्याय प्रशासन में न्यायिक तथा प्रशासनिक कार्यों को अलग–अलग किया जाना, दीवानी अदालतों में कर निर्धारकों के पद पर भारतीयों की नियुक्ति, न्याय व्यवस्था में ज्यूरी प्रणाली का आरम्भ, प्रशासनिक पदों पर भारतीयों की नियुक्ति तथा कोई भी विधान पारित करने से पहले उसके विषय में जनता से परामर्श किए जाने की मांगे रखीं। उनके पत्र *सम्बाद कौमुदी* में पहली बार जनता की शिकायतों का प्रकाशन हुआ।

आधुनिक प्रेस ने इसके विकास व प्रसार में उल्लेखनीय भूमिका निभाई। सन् 1857 के विद्रोह में राजनीतिक चेतना और उभर कर आई परन्तु विद्रोह के दमन के बाद इसका स्वरूप मुख्यतः इंग्लैण्ड की राजनीतिक प्रणाली को प्रतिबिम्बित करने लगा। शिक्षित भारतीय अपने अंधकारों के प्रति सजग हो गए।

डेरोज़ियो के यंग बैंगाल आन्दोलन ने भी स्वतन्त्रता, समानता तथा देशभक्ति की भावना के प्रसार में योगदान दिया। हिन्दू कॉलेज में डेरोज़ियो के छात्र ताराचन्द चक्रवर्ती, प्यारे चन्द्र मित्र आदि ने उसके साथ पेन, ह्यूम, गिबन तथा बेकम के सिद्धान्तों का भारत में प्रचार किया। इस आन्दोलन की विचारधारा का प्रतिनिधि पत्र *ईस्ट इण्डियन* था। 1843 में हिन्दू कॉलेज के छात्रों ने कलकत्ता के टाउन हॉल में एक सभा कर भारतीय सेवाओं का भारतीयकरण करने के उद्देश्य से कोर्ट ऑफ प्रोप्राइटर्स को एक स्मरण पत्र भेजा। 1836 में 'बंगभाषा प्रकाशिका सभा' की स्थापना हुई। इसकी सभाओं में जन–कल्याण से सरोकार रखने वाली सरकारी नीतियों की समीक्षा की जाती थी। 1837 में प्रसन्न कुमार टैगोर, राजा राधाकान्त देब आदि द्वारा 'लैण्ड होल्डर्स सोसायटी' की स्थापना की गई जिसका कि प्रमुख उद्देश्य सन् 1828 के ज़मीदार विरोधी लैण्ड रिज़म्पशन एक्ट को रद्द कराना था। द्वारिकानाथ टैगोर के पत्र *बैंगाल हरकारा* के 1843 के अंकों में भारत में भी जनता की समस्याओं का निराकरण करने के लिए फ्रांस की जुलाई क्रान्ति का अनुकरण करने की बात कही गई।

महाराष्ट्र में अंग्रेज़ी शासन को वहां की जनता और वहां के बुद्धिजीवियों ने दिल से स्वीकार नहीं किया था। भास्कर पाण्डुरंग तरखादकर ने *बॉम्बे गज़ट* में अंग्रेज़ शासकों को सम्बोधित करते हुए लिखा था –

हम तुम्हारी सरकार को भारत के लिए केवल अब तक के सबसे भीषण अभिशाप के रूप में देख सकते हैं। हमारा सारा धन इंग्लैण्ड को भेज दिया गया है और हमारे लिए कोई रोज़गार भी नहीं बचा है।

बम्बई के मराठी साप्ताहिक पत्र *प्रभाकर* में गोपाल हरि देशमुख 'लोकहितवादी' ने सन् 1848–49 में ब्रिटिश सरकार को जनता की इच्छा के विरुद्ध कानून बनाने की प्रवृत्ति पर चेतावनी देते हुए लिखा था –

यदि तुम हमारी इच्छा के विरुद्ध हम पर अपने कानून थोपने का प्रयास करोगे तो हम संगठित होकर तुम्हें यहां से जाने के लिए कहेंगे।

'लोकहितवादी' ने भारत में निर्धनता के उन्मूलन तथा भारतीयों को रोज़गार के अवसर प्रदान करने के लिए स्वदेशी तथा भारतीय उद्योग के पुनरुत्थान का प्रचार किया। उन्होंने भारत में संसदीय प्रणाली स्थापित किए जाने की आवश्यकता पर भी बल दिया और ब्रिटिश पार्लियामेन्ट में भी भारतीयों को प्रतिनिधित्व दिया जाना उनका अधिकार माना।

1. **उन्नीसवीं शताब्दी के प्रथमार्द्ध में भारत में राजनीतिक चेतना का प्रसार पर चर्चा करें–**

.....

6.4 उन्नीसवीं शताब्दी के उत्तरार्ध में भारत में राजनीतिक चेतना का प्रसार

उन्नीसवीं शताब्दी के उत्तरार्ध में भारत में राजनीतिक चेतना के प्रसार की में गति में वृद्धि हुई। अब तक भारत में अंग्रेज़ी शिक्षा प्राप्त वर्ग ने पाश्चात्य जगत में हुई राजनीतिक चेतना से लाभान्वित होकर भारतीय समस्याओं के समाधान के लिए भारतीय सरकार तथा गृह सरकार के समक्ष मुखर होकर अपना पक्ष रखना शुरू कर दिया था। इस विषय में भारतीय भाषाओं में रचे गए साहित्य और उनके पत्रों ने महत्वपूर्ण भूमिका निभाई। दीनबन्धु मित्र के नाटक *नील दर्पण* ने नील के बागानों के गोरे मालिकों के अत्याचारों का मार्मिक चित्रण कर देशवासियों को अन्याय का प्रतिकार करने की प्रेरणा दी। मनमोहन बोस के उपन्यास *बंगाधिप पराजय* में यह दर्शाया गया कि पराधीनता का परिणाम प्रजा की घोर दरिद्रता होता है। बंकिमचन्द्र चट्टोपाध्याय के उपन्यासों *दुर्गेशनन्दिनी* तथा *आनन्दमठ* में अन्यायी का निर्भीक होकर प्रतिकार करने का संदेश दिया गया था। 'वन्देमातरम्' गीत *आनन्दमठ* उपन्यास का ही अंग है। भारतेन्दु हरिश्चन्द्र ने हिन्दी में *भारत दुर्दशा* तथा *अंधेर नगरी* में कुशासन की विभीषिकाओं पर प्रकाश डाला।

1867 में लन्दन में डब्लू0 सी0 बनर्जी ने 'भारत की प्रतिनिधि तथा उत्तरदायी सरकार' विषय पर दिए गए अपने भाषण में भारत में एक प्रतिनिधि सभा तथा सीनेट की स्थापना का सुझाव दिया। 1873 में आनन्दमोहन बोस ने ब्राइटन में दिए गए भाषण में क्रमिक चरणों में भारत में प्रतिनिधि सरकार की स्थापना का प्रस्ताव रखा। सन् 1874 में कृष्णदास पाल ने सन् 1874 में *हिन्दू पैट्रिएट* में प्रकाशित अपने एक लेख में भारत में होमरूल की स्थापना की मांग रखी।

शिवनाथ शास्त्री ने 'साधारण ब्रह्म समाज' के अन्तर्गत राष्ट्रीयता की भावना के प्रसार को अपने कार्यक्रम में सम्मिलित किया। आर्य समाज ने राजनीतिक चेतना के प्रसार में उल्लेखनीय भूमिका निभाई। दयानन्द सरस्वती ने स्वदेशी और स्वशासन को आत्मनिर्भरता तथा आत्म–गौरव से जोड़ कर देखा। उन्होंने राष्ट्रीय एकता की भावना का प्रसार करने के लिए हिन्दी को राष्ट्रभाषा तथा देवनागरी लिपि को देश–व्यापी लिप के रूप में स्थापित किए जाने की आवश्यकता पर बल दिया।

1877 में महारानी विक्टोरिया द्वारा भारत की साम्राज्ञी का पद ग्रहण करने की खुशी में दिल्ली दरबार का आयोजन किया गया। लॉर्ड लिटन के शासनकाल में दुर्भिक्ष की स्थिति में भी आंग्ल–अफ़गान युद्ध में अपव्यय तथा समारोहों का आयोजन करने की प्रवृत्ति भारतीयों को सहन नहीं हुई। अगले वर्ष लॉर्ड लिटन के दमनकारी –वर्नाक्युलर प्रेस एक्ट, इण्डियन आर्म्स एक्ट तथा लाइसेन्स एक्ट ने स्थिति और भी विस्फोटक कर दी और भारतीयों का असन्तोष अपनी पराकाष्ठा पर पहुंच गया।

सैयद अहमद खान के अलीगढ़ आन्दोलन ने मुसलमानों को राजनीतिक आन्दोलनों से खुद को अलग रहकर अंग्रेज़ शासकों के साथ सहयोग की नीति अपनाकर अपने लिए राजनीतिक, आर्थिक तथा शैक्षिक सुविधाएं प्राप्त करने की सलाह दी।

कांग्रेस की स्थापना के पूर्व के भारतीय भाषाओं के पत्रों ने गोरों द्वारा भारतीय स्त्रियों के यौन शोषण की घोर भर्त्सना की और अंग्रेज़ी न्याय व्यवस्था की जातीय भेद व रंगभेद की नीति का खुलासा किया।

गवर्नर जनरल लार्ड रिपन के शासन काल (1880–84) में अनेक सुधार किए गए तथा भारतीयों को पहले से अधिक अधिकार दिए गए। 1883 में भारतीय न्यायधीशों को गोरों का मुकदमा सुनने तथा उन्हें दण्ड देने के अधिकार विषयक इल्बर्ट बिल न्यायपालिका में रंगभेदी व्यवस्था को समाप्त करने के उद्देश्य से रखा गया था किन्तु

इसका एंग्लो इण्डियन समुदाय तथा प्रेस ने प्रबल विरोध किया। भारतीयों ने इस बिल के समर्थन में अपना आन्दोलन किया। इस विषय में सुरेन्द्रनाथ बनर्जी पर एंग्लो इण्डियन समुदाय पर आक्षेप करने पर मुकदमा चलाया गया और उन्हें सज़ा देकर कारावास भेजा गया। जेल से रिहा होने के बाद सुरेन्द्रनाथ बनर्जी देश के सबसे लोकप्रिय राजनीतिक नेता के रूप में वह प्रतिष्ठित हुए। इल्बर्ट बिल विवाद के कारण जनवरी, 1885 में 'बॉम्बे प्रेसीडेन्सी एसोसियेशन' की स्थापना हुई। इसके संस्थापक फ़िरोज़शाह मेहता, बदरुद्दीन तैयबजी तथा के0 टी0 तैलंग थे और इसके सदस्यों में सभी वर्गों तथा विचारधारा के लोग शामिल थे। इल्बर्ट बिल अपने मूल रूप में पारित नहीं हो सका एंग्लोइण्डियन समुदाय की मांगों को देखते हुए सरकार ने इसमें किंचित परिवर्तन किए। इससे भारतीयों को संगठित विरोध तथा आन्दोलन की शक्ति का पता चल गया और उन्हें देश में संगठित राजनीतिक आन्दोलन करने की प्रेरणा मिली।

2.उन्नीसवीं शताब्दी के उत्तरार्ध में भारत में राजनीतिक चेतना के प्रसार पर **चर्चा करें–**

स्व मूल्यांकन हेतु प्रश्न

निम्नलिखित विषयों पर संक्षिप्त टिप्पणी लिखिए:

1. (क) भारत में राजनीतिक चेतना के अग्रदूत के रूप में राजा राममोहन राय।

(ख) उन्नीसवीं शताब्दी के उत्तरार्ध के साहित्य में प्रतिबिम्बित राजनीतिक चेतना।

2. नीचे लिखे प्रश्नों के उत्तर दीजिए।

(i) डेरोज़ियो को किस आन्दोलन का जनक कहा जाता है?

(ii) 'लैण्ड होल्डर्स सोसायटी' की स्थापना कब हुई ?

6.5 उन्नीसवीं शताब्दी के उत्तरार्ध में कांग्रेस की स्थापना से पूर्व के राजनीतिक संगठन

6.5.1 ब्रिटिश इण्डियन एसोसियेशन

'लैण्ड होल्डर्स सोसायटी' तथा 'बैंगाल ब्रिटिश इण्डियन सोसायटी' ने संगठित होकर भारतीय हितों की रक्षार्थ संघर्ष करने का निश्चय किया। 1853 में चार्टर एक्ट द्वारा ईस्ट इण्डिया कम्पनी के भारत पर अधिकार के नवीनीकरण से पूर्व इन दोनों संगठनों ने एक साथ मिलकर 1851 में 'ब्रिटिश इण्डियन एसोसियेशन' की स्थापना की। इस एसोसियेशन का उद्देश्य चार्टर के नवीनीकरण से पूर्व देश की कानून व्यवस्था तथा नागरिक प्रशासन में विद्यमान दोषों को दूर करना तथा भारतवासियों के कल्याण को प्रोत्साहित करना था। इसके लिए ब्रिटिश भारतीय सरकार, गृह सरकार तथा ब्रिटिश संसद में अपनी बात रखना भी संगठन के कार्यक्रम में शामिल था। इस संगठन का स्वरूप अखिल भारतीय था। चार्टर के नवीनीकरण से पूर्व ही इस संगठन ने कार्यपालिका तथा विधायिका को पृथक करने तथा विधान परिषदों में भारतीय सदस्यों को शामिल किए जाने की मांग की।

6.5.2 बॉम्बे एसोसियेशन

अगस्त, 1852 में बम्बई के नागरिकों ने 'बॉम्बे एसोसियेशन' की स्थापना की। इस सभा की अध्यक्षता जगन्नाथ शंकरशेथ ने की।

इस संगठन के एक प्रस्ताव में कहा गया –

यह संगठन आवश्यकता पड़ने पर समय–समय पर भारतीय सरकार तथा इंग्लैण्ड की सरकार को विद्यमान खराबियों के उन्मूलन तथा भविष्य में नुक्सान पहुंचाने वाले निर्णयों पर रोक लगाए जाने के लिए आगाह करता रहेगा।

6.5.3 मैड्रास नेटिव एसोसियेशन

कलकत्ता के 'ब्रिटिश इण्डियन एसोसियेशन' की मद्रास में स्थापित की गई शाखा बाद में 'मैड्रास नेटिव एसोसियेशन' के नाम से फ़रवरी, 1852 में स्थापित हुई। इस संगठन ने ईस्ट इण्डिया कम्पनी के चार्टर के नवीनीकरण से पूर्व उसके प्रशासन में सुधार के सुझाव हेतु ब्रिटिश पार्लियामेन्ट को एक याचिका भेजी। इसमें मध्यम तथा निम्न वर्ग के भारतीयों की दशा सुधारने के लिए सुझाव भी दिए गए थे।

6.5.4 ईस्ट इण्डियन एसोसियेशन

लन्दन में 1866 में दादा भाई नौरोजी ने ईस्ट इण्डियन एसोसियेशन की स्थापना की थी। भारत के प्रमुख नगरों में इसकी शाखाएं स्थापित की गईं।

6.5.5 हिन्दू मेला

राजनारायण बोस के 'पैट्रिएट्स एसोसियेशन' तथा 'सोसायटी फ़ॉर दि प्रमोशन ऑफ नेशनल फ़ीलिंग अमंग दि एजुकेटेड नेटिव्ज़ ऑफ बैंगाल' से प्रेरणा लेकर 1867 में नबगोपाल मित्र ने 'हिन्दू मेला' की स्थापना की। इसका उद्देश्य देश की प्रगति हेतु भारतीयों में आत्मनिर्भरता की भावना, राष्ट्रीय एकता, राष्ट्रीय साहित्य, भारतीय कला, संस्कृति, कुटीर उद्योग, स्वास्थ्य निर्माण आदि का विकास करना था। मेले द्वारा भारतीय उत्पादों की प्रदर्शनी का नियमित आयोजन सराहनीय प्रयास था।

6.5.6 पूना सार्वजनिक सभा

1870 में पूना में 'सार्वजनिक सभा' की स्थापना का उद्देश्य जनता का प्रतिनिधित्व कर उसकी आकांक्षाओं तथा आवश्यकताओं को सरकार के समक्ष प्रस्तुत करना था। इसके सदस्यों में बड़े ज़मींदार, व्यापारी, बैंकर, अवकाश प्राप्त सरकारी अधिकारी, वकील, अध्यापक तथा बॉम्बे तथा महाराष्ट्र के कुछ राजा आदि शामिल थे। इस सभा के मार्गदर्शक व संस्थापक एम0 जी0 रानाडे थे। इसके द्वारा महारानी विक्टोरिया को एक याचिका प्रेषित की गई जिसमें भारतीयों को वही राजनीतिक अधिकार दिए जाने की बात कही गई जो कि ब्रिटिश नागरिकों को प्राप्त थे। सभा ने सरकार पर दबाव डाला कि वह विधान परिषदों में सदस्यों के चयन हेतु चुनाव की प्रक्रिया लागू करे। 1875 में सभा द्वारा ब्रिटिश संसद में भारतीयों को प्रतिनिधित्व दिए जाने रखी गई और इस हेतु हाउस ऑफ कॉमन्स में एक याचिका भी प्रस्तुत की
गई। 1878 में इस सभा ने अपने एक पत्र का प्रकाशन प्रारम्भ किया जिसमें भूमि सुधार, कृषि बैंकों की स्थापना, शिक्षा का प्रसार, करों तथा सरकारी व्यय में कमी और न्याय प्रशासन में सुधार के मुद्दों को उठाया गया।

6.5.7 इण्डियन लीग

बंगाल के प्रगतिशील राजनीतिक चिन्तकों ने 1875 में 'इण्डियन लीग' की स्थापना की। इसका उद्देश्य जनता में राजनीतिक चेतना तथा राष्ट्रीयता की भावना का विकास करना था।

6.5.8 इण्डियन एसोसियेशन

1876 में सुरेन्द्र नाथ बनर्जी ने आनन्दमोहन बोस, शिवनाथ शास्त्री आदि के साथ मिलकर 'इण्डियन एसोसियेशन' की स्थापना की। कृष्णमोहन बनर्जी इसके प्रथम अध्यक्ष थे। इस संगठन में शिक्षित युवा, वकील और पत्रकार शामिल थे। इसके मुख्य उद्देश्य थे –

- देश में जनमत का प्रतिनिधित्व करने वाली एक संस्था का निर्माण करना।
- सामान्य राजनीतिक हितों के आधार पर भारतीय जातियों को एकबद्ध करना।
- हिन्दू–मुस्लिम सद्भाव को बढ़ावा देना।
- राजनीतिक आन्दोलनों में जनता की भागीदारी को बढ़ाना तथा उसमें राजनीतिक जागृति का विकास करना।
- युवाओं को लोकतान्त्रिक प्रणाली की महत्ता से अवगत कराना।

इस संगठन की अनेक शाखाएं बंगाल के विभिन्न जिलों में स्थापित की गईं तथा अन्य प्रान्तों में स्थापित संगठनों के साथ मिलकर काम करने का प्रयास किया गया। इसके द्वारा आयोजित जनसभाओं में प्रेस की स्वतन्त्रता, ज्यूरी प्रणाली को लागू करना, जातिभेद तथा रंगभेद की भावना का उन्मूलन, नमक कर में कमी, रेलों में थर्ड क्लास के यात्रियों को अधिक सुविधाएं दिया जाना, उच्च प्रशासनिक सेवाओं में भारतीयों की अधिक हिस्सेदारी आदि विषयों को उठाया जाता था। 1877 में इस संगठन ने आई0 सी0 एस0 परीक्षा में अभ्यार्थियों की अधिकतम आयु 21 वर्ष से घटा कर 19 वर्ष किए जाने के विरोध में देश–व्यापी आन्दोलन किया। इस विषय में देश–व्यापी

समर्थन पाकर कलकत्ते हुई बैठक में यह निर्णय लिया गया कि ब्रिटिश ससंद को इस आशय का एक स्मरणपत्र भेजा जाए कि आई0 सी0 एस0 परीक्षा में अभ्यार्थियों की अधिकतम आयु 19 से बढ़ाकर 21 वर्ष कर दी जाए। इस स्मरणपत्र में यह मांग भी रखी जानी थी कि आई0 सी0 एस0 परीक्षा लन्दन के साथ भारत में एक अथवा उससे अधिक केन्द्रों में भी आयोजित की जाए। 1878 में गवर्नर जनरल लॉर्ड लिटन ने वर्नाक्युलर प्रेस एक्ट के द्वारा भारतीय भाषाओं के समाचार पत्रों पर सरकार की नीतियों की आलोचना करने पर प्रतिबन्ध लगा दिया। इसी वर्ष इण्डियन आर्म्स एक्ट तथा लाइसेन्स एक्ट जैसे जातिभेदी व रंगभेदी कानून बनाए गए। 'इण्डियन एसोसियेशन' ने इन सबका प्रबल विरोध किया। सार्वजनिक सभाएं कर इन दमनकारी कानूनों का विरोध किया गया, विशेषकर वर्नाक्युलर प्रेस एक्ट के विरुद्ध अभियान किया गया क्योंकि यह भारत में बढ़ती हुई राष्ट्रीय चेतना के विकास में बाधक था। इसके लिए हाउस ऑफ़ कॉमन्स में तत्कालीन विरोधी पक्ष के नेता व उदारदल के राजनीतिज्ञ ग्लैड्सटन को एक याचिका भेजने का निश्चय किया गया। ग्लैड्सटन ने भारत में 'वर्नाक्युलर प्रेस एक्ट' को रद्द किए जाने के लिए हाउस ऑफ कॉमन्स में एक प्रस्ताव भी रखा जिसके पक्ष में 152 तथा विरोध में 208 वोट पड़े। ग्लैड्सटन का प्रस्ताव पारित नहीं हो सका किन्तु संगठन ने इंग्लैण्ड की पार्लियामेन्ट में भी भारतीय राजनीतिक चेतना की छाप छोड़ने में अवश्य सफलता प्राप्त की।

इस संगठन के प्रयासों से 'इण्डियन स्टेट्यूटरी सर्विस' की स्थापना हुई जिसके कारण मझले स्तर तक के प्रशासनिक पदों पर भारतीयों की नियुक्ति का मार्ग प्रशस्त हो गया। 1879 में आयोजित एक जन–सभा में 'इण्डियन एसोसियेशन' ने अफ़गान युद्ध पर हो रहे खर्च से भारत की अर्थ–व्यवस्था पर प्रतिकूल प्रभाव की चर्चा की तथा ब्रिटिश कपड़ा मिलमालिकों को लाभ पहुंचाने व भारतीय कपड़ा मिलों के विकास में बाधा पहुंचाने के उद्देश्य से विदेशी कपड़े पर आयात कर हटाने का विरोध किया। 1879 से इस संगठन ने राष्ट्रीय स्तर पर स्वशासन की मांग करना भी प्रारम्भ कर दिया और इसके प्रथम चरण के रूप में स्थानीय निकायों में चुनाव के द्वारा स्वायत्त शासन के प्रचलन की आवश्यकताा पर ज़ोर दिया। इस संगठन ने किसानों के लिए लाभकारी 'रेन्ट बिल' का स्वागत किया तथा इसने 1885 के 'टैनेन्सी एक्ट' का भी समर्थन किया। विधान परिषदों मे चुनाव की प्रणाली लागू कर सदस्यों के निर्वाचन की मांग भी रखी गई। इस संगठन ने 1879 के विदेशी कपड़ों पर लगाए जाने वाले आयात कर को हटाए जाने का विरोध किया। इस संगठन ने शिक्षा प्रसार हेतु स्वयं भारतीयों के प्रयासों को महत्ता दी।

6.5.9 महाजन सभा

मद्रास में जन–जागृति हेतु 1878 में 'हिन्दू' की स्थापना हुई। इसके समर्थकों ने 1884 में एक राजनीतिक संगठन 'महाजन सभा' का गठन किया। दिसम्बर, 1884 में इसकी प्रान्तीय सभा का आयोजन किया गया जिसमें मद्रास प्रेसीडेन्सी के बड़े शहरों के प्रतिनिधियों ने विधान परिषदों में सुधार, न्यायपालिका को राजस्व सम्बन्धी दायित्व से मुक्ति दिलाने तथा नागरिक एवं सैन्य प्रशासन में कमी किए जाने पर चर्चा की और इस विषय में सरकार को एक स्मरणपत्र दिया।

6.5.10 नेशनल कान्फ्रेन्स

अपने पत्र *बैंगाली* के 27 मई, 1882 के अंक में नेशनल कान्फ्रेन्स के गठन की आवश्यकता पर सुरेन्द्रनाथ बनर्जी ने लिखा –

क्यों नहीं हमको एक राष्ट्रीय और नही तो कम से कम एक प्रान्तीय कांग्रेस का गठन कर लेना चाहिए, जिसमें कि देश के विभिन्न भागों से सार्वजनिक संस्थाओं के प्रतिनिधि अपने विचार रख सकें? अब तक हमारी सार्वजनिक संस्थाओं में संगठन अथवा आपसी सहयोग नहीं रहा है और इसके बिना सार्वजनिक क्षेत्र में हमारी गतिविधियों का स्वरूप सच्चे अर्थों में प्रातिनिधिक नहीं हो सकता। अब समय आ चुका है कि नेशनल कांग्रेस की बैठक वर्ष में एक बार हो जिससे कि भारत की विभिन्न जातियों में एकता स्थापित हो तथा इधर–उधर फैले राजनीतिक संगठन आपस में मिलकर राजनीतिक मुद्दों पर चर्चा कर सकें।

1883 में 28 से 30 दिसम्बर तक कलकत्ता में नेशनल कॉन्फ्रेन्स की प्रथम बैठक हुई। इसमें उठाए गए

मुद्दों में मुख्य थे – प्रतिनिधि सभाएं, सामान्य तथा तकनीकी शिक्षा, न्यायपालिका का कार्यपालिका से अलगाव, फ़ौजदारी न्याय प्रशासन तथा प्रशासनिक सेवाओं में भारतीयों की नियुक्ति।

दिसम्बर, 1885 में कलकत्ते में नेशनल कॉन्फ्रेन्स दूसरी बैठक हुई जिसमें विधान परिषदों में सुधार किए जाने की आवश्यकता पर ज़ोर दिया।

2. **कांग्रेस की स्थापना से पूर्व के राजनीतिक संगठनों पर चर्चा कीजिए–**

स्वमूल्यांकन हेतु प्रश्न

निम्नलिखित विषयों पर संक्षिप्त टिप्पणी लिखिएः

1. (क) पूना सार्वजनिक सभा।

(ख) नेशनल कान्फ्रेन्स के उद्देश्य।

2. नीचे लिखे प्रश्नों के उत्तर दीजिए।

(i) 'ब्रिटिश इण्डियन एसोसियेशन' की स्थापना कब हुई?

(ii) सुरेन्द्रनाथ बनर्जी के पत्र का क्या नाम था?

6.6 सार संक्षेप

पाश्चात्य शिक्षा प्राप्त भारतीयों ने पाश्चात्य उदार एवं प्रगतिशील राजनीतिक विचारधारा से प्रभावित होकर अपने देश में भी राजनीतिक चेतना का प्रसार करने का निश्चय किया। भारत में अनेक राजनीतिक संगठनों का उदय हुआ जिनके द्वारा कानून की सीमा में रहते हुए राजनीतिक, संवैधानिक, आर्थिक, सैनिक, शैक्षिक तथा प्रशासनिक सुधारों की मांग की गई। साहित्य और पत्रकारिता ने राजनीतिक चेतना के प्रसार–प्रचार में अमूल्य योगदान दिया। भारतीय राष्ट्रवाद में लोकतांत्रिक प्रणाली, मताधिकार, उत्तरदायी सरकार की स्थापना, अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता, प्रेस की स्वतंत्रता, नागरिक अधिकार, कल्याणकारी शासन आदि की अवधारणाओं को पाश्चात्य विचारधारा से लिया गया। 1853 में चार्टर द्वारा ईस्ट इण्डिया कम्पनी के भारत पर अधिकार के नवीनीकरण से पूर्व 'ब्रिटिश इण्डियन एसोसियेशन' की 1851 में, 1852 में बॉम्बे एसोसियेशन' की तथा 1852 में ही मैड्रास नेटिव एसोसियेशन' की स्थापना हुई। लन्दन में 1866 में दादा भाई नौरोजी ने ईस्ट इण्डियन एसोसियेशन की स्थापना की। 1867 में नबगोपाल मित्र ने 'हिन्दू मेला' की स्थापना की। 1870 में पूना में एम0 जी0 रानाडे द्वारा स्थापित 'सार्वजनिक सभा' की स्थापना की। 1876 में सुरेन्द्र नाथ बनर्जी तथा उनके सहयोगियों ने 'इण्डियन एसोसियेशन' की स्थापना की। लॉर्ड लिटन के दमनकारी शासन में राजनीतिक संगठनों की स्थापना की गति तीव्र हो गई। सैयद अहमद खान के अलीगढ़ आन्दोलन ने मुसलमानों को अंग्रेज़ शासकों के साथ सहयोग की नीति अपनाने की सलाह दी। 1883 के इल्बर्ट बिल विवाद से भारतीयों को संगठित विरोध तथा आन्दोलन की शक्ति का पता चल गया। सुरेन्द्रनाथ बनर्जी ने 1883 में कलकत्ता में नेशनल कॉन्फ्रेन्स की स्थापना की। मद्रास में 1884 'महाजन सभा' का गठन किया गया। भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस की स्थापना से पूर्व के राजनीतिक संगठनों ने भारतीय राष्ट्रीय आन्दोलन की दिशा निर्धारित करने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई।

6.7 पारिभाषिक शब्दावली

मैग्नाकार्टा: 1215 में इंग्लैण्ड के शासक जॉन द्वारा नागरिक अधिकार विषयक चार्टर।

इंग्लैण्ड के दोनों सदनः हाउस ऑफ कॉन्स तथा हाउस ऑफ लॉर्ड्स।

ज्यूरीः सभ्य नागरिकों का मण्डल जिसका काम न्यायधीश को फ़ैसला सुनाने में मदद करना होता है।

लैण्ड होल्डरः ज़मींदार।

देश–व्यापीः समस्त देश में जिसका प्रसार हो।

आई0 सी0 एस0: भारतीय प्रशासनिक सेवा।

वर्नाक्युलरः भारतीय भाषाएं।

6.8 सन्दर्भ ग्रंथ

मजूमदार, आर0 सी0 (सम्पादक)–*ब्रिटिश पैरामाउंट्सी एण्ड इण्डियन रिनेसा,* दो भागों मे, बम्बई, 1965

ताराचन्दः *भारतीय स्वतन्त्रता आन्दोलन का इतिहास* (चार भागों में), नई दिल्ली, 1984
चन्द्रा, बिपन – *दि राइज़ एण्ड ग्रोथ ऑफ इकानॉमिक नेशनलिज़्म इन इण्डिया*
नई दिल्ली, 1965
बनर्जी, एस0 एन0 – *नेशन इन मेकिंग*, कलकत्ता, 1915
नटेसन, जी0 ए0 (प्रकाशक) – *इण्डियन नेशनल कांग्रेस*, मद्रास, 1917

6.9 स्व मूल्यांकित प्रश्नों के उत्तर

1. (क) देखिए 6.1 उन्नीसवीं शताब्दी के प्रथमार्ध में भारत में राजनीतिक चेतना का प्रसार।
(ख) देखिए 6.2 उन्नीसवीं शताब्दी के उत्तरार्ध में भारत में राजनीतिक चेतना का प्रसार।

2. (i) 'यंग बैंगाल' आन्दोलन का।

(ii) सन् 1837 में।

1. (क) देखिए 6.5.6 पूना सार्वजनिक सभा।
(ख) देखिए 6.5.10 नेशनल कान्फ्रेन्स।

2. (i) सन् 1851 में।

(ii) *बैंगाली* ।

6.10 अभ्यास प्रश्न

1. ब्रिटिश भारतीय सरकार द्वारा प्रेस की स्वतन्त्रता पर लगाए गए प्रतिबन्धों की समीक्षा कीजिए।
2. नील दर्पण नाटक की कथावस्तु पर प्रकाश डालिए।
3. हिन्दू मेला ने स्वदेशी उद्योग को प्रोत्साहन देने के लिए क्या नीति अपनाई?
4. इण्डियन एसोसियोशन की राजनीतिक मांगों पर प्रकाश डालिए।
5. मद्रास प्रान्त में महाजन सभा की राजनीतिक गतिविधियों पर प्रकाश डालिए।

7.1 प्रस्तावना

7.2 इकाई के उद्देश्य

7.3 कांग्रेस की स्थापना की परिस्थितियां

7.3.1 उदार ब्रिटिश विचारकों तथा अधिकारियों का राजनीतिक चेतना के विकास में योगदान

7.3.2. लार्ड रिपन के सुधार

7.3.3 इल्बर्ट बिल विवाद तथा भारतीयों पर उसकी प्रतिक्रिया

7.3.3 इल्बर्ट बिल विवाद तथा भारतीयों पर उसकी प्रतिक्रिया

7.3.4 भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस के संस्थापक ए0 ओ0 ह्यूम की विचारधारा

7.4 प्रथम चरण में भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस के प्रमुख कार्य तथा उसकी सीमाएं

7.4.1 प्रथम चरण में कांग्रेस के उद्देश्य तथा उसकी कार्यप्रणाली

3.4.1.1 भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस का प्रथम अधिवेशन

7.4.2 प्रथम चरण में भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस की नीति

7.4.3 कांग्रेस के प्रारम्भिक नेताओं का राष्ट्रीय आन्दोलन में योगदान

7.4.4 अपनी स्थापना के प्रथम चरण में कांग्रेस के कार्यक्रम की सीमाएं

7.4.5 कांग्रेस के प्रति भारतीय सरकार तथा इंग्लैण्ड की जनता के दृष्टिकोण में बदलाव

7.4.6 कांग्रेस के भीतर तथा बाहर विरोधी स्वरों का मुखर होना

7.4.7 1892 के इण्डियन काउंसिल्स एक्ट से पूर्व कांग्रेस की नीतियां

7.4.8 1892 का इण्डियन काउंसिल्स एक्ट और कांग्रेस

7.4.9 1892 के बाद तथा बंगाल विभाजन के निर्णय से पूर्व कांग्रेस की नीतियां

7.4.10 कांग्रेस के प्रथम चरण में उसके प्रति मुसलमानों का दृष्टिकोण

7.4.11 कांग्रेस के प्रति भारतीय सरकार, गृह सरकार तथा ब्रिटिश जनता का रवैया

7.5 सार संक्षेप

7.6 पारिभाषिक शब्दावली

7.7 सन्दर्भ ग्रंथ

7.8 स्व मूल्यांकित प्रश्नों के उत्तर

7.9 अभ्यास प्रश्न

7.1 . प्रस्तावना

पिछली इकाई में हम 19 वीं शताब्दी के भारत में प्रारम्भिक राजनीतिक संगठनों के उदय की चर्चा कर चुके हैं। इन राजनीतिक संगठनों ने भारत में लोकतान्त्रिक मूल्यों की स्थापना हेतु सराहनीय प्रयास किया था। धीरे–धीरे उदार ब्रिटिश अधिकारी राजनीतिज्ञ तथा विचारक ब्रिटिश शासन को भारत में स्थायी तथा लोकप्रिय बनाने के उद्देश्य से शासन में भारतीयों की हिस्सेदारी बढ़ाए जाने की वकालत कर रहे थे और जागरूक भारतीय स्वयं भी इसकी मांग कर रहे थे।

इस इकाई में सर ए0 ओ0 ह्यूम द्वारा 1885 में एक धर्मनिर्पेक्ष राजनीतिक दल भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस की स्थापना और उसके माध्यम से भारतीयों की राजनीतिक एवं संवैधानिक महत्वाकांक्षाओं की अभिव्यक्ति से आपको अवगत कराया जाएगा। कांग्रेस की स्थापना के बाद उसके प्रथम 20 वर्ष नरमपंथियों के राजनीतिक प्रभुत्व का काल माना जाता है। इस काल में सक्रिय राजनीतिक विरोध के स्थान पर अनुनय–विनय के माध्यम से अपने अधिकारों के लिए याचना करने की नीति का अनुपालन किया गया और इसके लिए कांग्रेस के प्रमुख नेताओं को उग्रवादियों की कटु आलोचना का पात्र भी बनना पड़ा परन्तु भारत में राजनीतिक चेतना के प्रसार में कांग्रेस के इस प्रथम चरण जो महत्वपूर्ण प्रगति हुई उससे इस इकाई में आप परिचित होंगे।

7.2 इकाई के उद्देश्य

इस इकाई में 1885 से पूर्व भारतीय राजनीतिक परिदृश्य तथा भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस की स्थापना के लिए उत्तरदायी कारकों का विश्लेषणात्मक अध्ययन किया जाएगा। इस इकाई में कांग्रेस की स्थापना के प्रथम चरण में उसके कार्यों का विवरण तथा उनकी समीक्षा भी की जाएगी तथा उसकी कमियों तथा उसकी उपलब्धियों का आकलन भी किया जाएगा। इस इकाई को पढ़कर आप जानेंगेः

- कांग्रेस की स्थापना की पृष्ठभूमि।
- कांग्रेस की स्थापना के बाद उसके प्रथम बीस वर्षों में किए गए प्रमुख कार्य तथा उसकी नीतियां।
- कांग्रेस की स्थापना के प्रथम चरण में उसकी उपलब्धियां तथा उसकी असफलताएं।

7.3 कांग्रेस की स्थापना की परिस्थितियां

7.3.1 उदार ब्रिटिश विचारकों तथा अधिकारियों का राजनीतिक चेतना के विकास में योगदान

भारत में राजनीतिक चेतना के प्रसार का आरम्भ उन्नीसवीं शताब्दी के प्रथमार्ध में ही हो गया था किन्तु उसका प्रचार–प्रसार तो मुख्यतः 1858 के महारानी के घोषणापत्र के बाद ही हो सका था क्योंकि इसमें भारतीयों को अंग्रेज़ों के समान अधिकार तथा अवसर प्रदान किए जाने का आश्वासन दिया गया था। आधुनिक प्रेस के विकास के साथ राजनीतिक चेतना का विकास भी तीव्र गति से हुआ। ब्रिटिश राजनीतिक प्रणाली को अपना आदर्श बनाकर भारतीय राजनीतिज्ञों ने राजनीतिक संगठनों की स्थापना की परन्तु उनमें से किसी का भी अखिल भारतीय स्वरूप नहीं था। परन्तु एक राष्ट्रीय स्तर के राजनीतिक संगठन की आवश्यकता का अनुभव सभी जागरूक भारतीय कर रहे थे और इसमें उदार ब्रिटिश विचारक, राजनीतिज्ञ तथा भारत में कार्यरत अधिकारीगण उनके साथ थे। लॉर्ड लिटन के दमनकारी शासन तथा इल्बर्ट बिल विवाद से उभरे भारतीय असन्तोष ने भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस की स्थापना के लिए अनुकूल परिस्थितियां उत्पन्न कर दी थीं।

लोकतन्त्र की जननी इंग्लैण्ड के उदार राजनीतिक वातावरण को भारत में भी स्थापित करने की कामना करने वाले अनेक उदार अंग्रेज़ विचारक तथा अधिकारी भारतीयों को राजनीतिक व संवैधानिक सुधार दिए जाने के पक्ष में थे। लॉर्ड हेस्टिंग्स ने 1818 में यह आशा की थी कि भारतीयों में सार्वभौमिक चेतना जागृत कर अंग्रेज, अपनी सत्ता को भारतीयों को सौंपकर स्वदेश लौट जाएंगे। एलफ़िन्सटन ने 1819 में भारतीयों की स्थिति में आवश्यक सुधार के बाद भारत में विदेशी सत्ता की समाप्ति की कामना की थी। यद्यपि उसने इसमें बहुत अधिक समय लगने की बात स्वीकार की थी। टॉमस मुनरो ने भारतीयों में ज्ञान के प्रसार के बाद भारत पर धीरे–धीरे ब्रिटिश नियन्त्रण समाप्त किए जाने की सिफ़ारिश की थी। सर चार्ल्स ट्रेवेलियन ने यह आशा की थी कि अंग्रेज़ी शिक्षा के प्रसार के बाद भारत इंग्लैण्ड का गुलाम न रहकर उसका सहयोगी राष्ट्र बन जाएगा। 1833 के चार्टर एक्ट के पारित होने

से पूर्व हाउस ऑफ कॉमन्स में लॉर्ड मैकॉले ने यह कहा था कि अंग्रेज़ी शिक्षा के प्रचलन तथा सुशासन के माध्यम से हम भारतीयों में राजनीतिक चेतना का विकास कर सकते हैं। उसने अंग्रेज़ी शिक्षा के प्रसार के बाद यह आशा की थी कि भारत में उत्तरदायी शासन की स्थापना के लिए आन्दोलन होगा और भविष्य में होने वाले ऐसे किसी भी आन्दोलन को उसने अंग्रेज़ों के लिए सौभाग्य माना था। मैकॉले ने भारतीय न्याय व्यवस्था में श्वेत तथा अश्वेत न्यायधीशों को समान अधिकार दिए जाने का प्रस्ताव भी रखा था किन्तु श्वेत समुदाय के प्रबल विरोध के कारण उसको स्वीकार नहीं किया गया। मैटकाफ़ जैसे अधिकारियों ने भी भारतीयों को शासन में हिस्सेदारी दिए जाने की सिफ़ारिश की थी। मैटकाफ़ के अल्प शासनकाल में प्रेस की स्वतन्त्रता की स्थापना ने सुधारों के लिए अनुकूल वातावरण तैयार कर दिया था।

1839 में जॉर्ज टामसन ने मैनचेस्टर में दिए गए अपने छह भाषणों में भारतीयों की राजनीतिक महत्वाकांक्षाओं पर प्रकाश डाला था। हाउस ऑफ कॉमन्स में 1853 में चार्ल्स वुड बिल पर छिड़ी बहस के दौरान जॉन ब्राइट ने भारतीय शासन की खराबियों को दर्शाया था और यह बताया था कि भारतीय सर्वसम्मति से संवैधानिक सुधार किए जाने के पक्ष में हैं। 1858 के महारानी के घोषणा पत्र में भारतीयों को आश्वासन दिया गया था कि उनके साथ वर्ण, धर्म, जाति और राष्ट्रीयता के आधार पर किसी प्रकार का भेदभाव नहीं किया जाएगा। 1857 के विद्रोह के बाद शासक वर्ग और शासित वर्ग के मध्य खाई को पाटने का प्रयास भी किया गया था। 1861 के इण्डियन काउंसिल्स एक्ट में गवर्नर जनरल की कार्यकारी परिषद में भारतीय सदस्यों को मनोनीत किया जाना इसका एक उदाहरण था। लॉर्ड मेयो के शासनकाल में शक्ति के विकेन्द्रीकरण के प्रयास भी उदार वातावरण के विकास के परिचायक थे। 1864 में गवर्नर जनरल लॉर्ड लॉरेन्स ने नगरों को नागरिक सेवाओं के निमित्त स्वयं अपने संसाधन जुटाने की व्यवस्था का प्रस्ताव रखा था और 1870 तक हर छोटे–बड़े शहर में नगरपालिका की स्थापना हो गई परन्तु उनमें सरकारी अधिकारियों का हस्तक्षेप बना रहा। केवल कलकत्ता तथा बम्बई जैसे महानगरों की नगर महापालिकाओं में जनता का थोड़ा–बहुत प्रतिनिधित्व था। चार्ल्स ब्रैडला भारतीयों के परम हितैषी थे उन्होंने भारतीयों को शासन में भागीदारी दिए जाने की सदैव वकालत की। ब्रिटिश सांसद सैमुअल स्मिथ ने भारत की निर्धनता के कारण शिक्षित भारतीय समुदाय में बढ़ते हुए असन्तोष का उल्लेख किया था। 1883 में ब्रिटिश पार्लियामेन्ट में दिए गए अपने भाषण में उन्होंने भारत में ब्रिटिश शासन को लोकप्रिय बनाने के लिए सुधार किए जाने की आवश्यकता पर बल दिया था। उन्होंने सिफ़ारिश की थी कि भारत के प्रशासनिक तथा सैनिक व्यय में कमी की जाए, भारतीय उद्योग के विकास में बाधा डालकर ब्रिटिश उद्योग को लाभ न पहुंचाया जाए, भारतीयों को शासन के हर अंग में उच्च पदों पर नियुक्त किया जाए, इण्डियन सिविल सर्विस की परीक्षा का आयोजन भारत में भी हो तथा ब्रिटिश पार्लियामेन्ट में भारत का प्रतिनिधित्व हो।

7.3.2. लार्ड रिपन के सुधार

1882 में लॉर्ड रिपन ने 'लोकल सेल्फ़ गवर्नमेन्ट एक्ट' के द्वारा सभी जिला परिषदों तथा नगर पालिकाओं में जनता के चुने प्रतिनिधियों का नियन्त्रण स्थापित कर दिया। सरकारी अधिकारीगणों के लिए अधिक से अधिक एक तिहाई स्थान रखे गए। इस कदम को भारतीयों के लिए स्वशासन का पहला सबक माना गया। लॉर्ड रिपन ने वर्नाक्युलर प्रेस एक्ट को रद्द कर भारतीयों को अपनी आकांक्षाओं की अभिव्यक्ति का फिर से अवसर प्रदान किया था।

लॉर्ड रिपन ने 1884 में भारत से सेवा निवृत्त होते समय अपने उत्तराधिकारी लॉर्ड डफ़रिन को लिखे पत्रों में शिक्षित भारतीयों के राजनीतिक महत्व का उल्लेख करते हुए यह विचार व्यक्त किए थे कि सरकार को अपनी नीतियों के निर्धारण से पूर्व उनसे परामर्श करना चाहिए तथा उनकी राजनीतिक महत्वाकांक्षाओं को पूरा कर अपने शासन को भारत में लोकप्रिय बनाने में उनकी सहायता लेनी चाहिए।

7.3.3 इल्बर्ट बिल विवाद तथा भारतीयों पर उसकी प्रतिक्रिया

1883 के इल्बर्ट बिल विवाद में सरकार द्वारा एंग्लोइण्डियन समुदाय की मांगों के सामने झुकने के निर्णय ने एक तो भारतीयों को यह जतला दिया कि वो अपने ही देश में दूसरे दर्जे के नागरिक हैं, यदि भारत में किसी को

अधिकार प्राप्त हैं तो केवल गोरों को और दूसरे यह कि अपनी मांगों को पूरा कराने के लिए संगठित होकर आन्दोलन का मार्ग अपनाने से सफलता मिल सकती है। सुरेन्द्रनाथ बनर्जी को इल्बर्ट बिल विवाद में सक्रिय भाग लेने वाले कलकत्ता हाईकोर्ट के जस्टिस नौरिस के व्यवहार पर प्रतिकूल टिप्पणी करने पर उन पर मुकदमा चलाने और फिर उन्हें कारावास की सज़ा सुनाने से स्थिति और विस्फोटक हो गई थी। सुरेन्द्रनाथ बनर्जी को दण्डित किए जाने पर समस्त देश में आन्दोलन हुए और इसने भारत में राजनीतिक चेतना व राष्ट्रीय एकता की भावना जाग्रत करने में उत्प्रेरक का काम किया और यही नेशनल कॉन्फ्रेन्स की स्थापना का कारण बना जिसे कि हम भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस की स्थापना से पूर्व का पहला अखिल भारतीय राजनीतिक दल कह सकते हैं।

7.3.4 भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस के संस्थापक ए0 ओ0 ह्यूम की विचारधारा

इण्डियन सिविल सर्विस के ए0 ओ0 ह्यूम को 1879 में लॉर्ड लिटन ने उनके स्वतन्त्र एवं निर्भीक उदार विचारों की अभिव्यक्ति के कारण भारत सरकार में सचिव के पद से हटा दिया था। 1882 में उन्होंने सरकारी सेवा से अवकाश प्राप्त किया। सरकारी सेवा में रहते हुए भी उनका मानना था कि भारत का शासन, शासक और प्रजा दोनों के हितों को ध्यान में रखकर चलाना चाहिए। उनका यह भी कहना था कि भारत पर दूरस्थ इंग्लैण्ड से शासन करने की नीति ने भारत को दरिद्र बना दिया है, साथ ही सरकार जनता की आवश्यकताओं से पूरी तरह अनभिज्ञ है। सरकार व जनता के मध्य सम्पर्क के किसी
संवैधानिक साधन के अभाव के कारण सरकार को भारतीयों की समस्याओं की बहुत कम जानकारी मिल पाती है। अपने सेवाकाल में 1872 में ही उन्होंने तत्कालीन गवर्नर जनरल लॉर्ड नॉर्थब्रुक को लिखा था –

महामहिम! आप शायद ही इस का अनुमान लगा सकें कि हमारा शासन कितना अधिक डावांडोल है। किसी भी समय कोई अनजाना सा छोटा बादल बढ़कर पूरे साम्राज्य पर छा सकता है और अराजकता व विनाश की बारिश कर सकता है।

लॉर्ड लिटन के बदनाम शासन में भारतीय असन्तोष अपनी पराकाष्ठा पर पहुंच गया था। वर्नाक्युलर प्रेस एक्ट, इण्डियन आर्म्स एक्ट जैसे रंगभेदी व दमनकारी कानून तथा अकाल के समय द्वितीय आंग्ल–अफ़गान युद्ध तथा दिल्ली दरबार में धन का अपव्यय भारतीयों को सहन नहीं था। वेडरबर्न ने लिटन के दमन चक्र की तुलना रूसी पुलिस की नृशंस प्रणाली से की थी। इस स्थिति में एक विप्लव की प्रबल सम्भावना बन रही थी। निर्धन वर्ग अपने अस्तित्व संरक्षण के असफल प्रयास में लगा था और अब वह समझ गया था कि या तो वह एकजुट होकर संघर्ष करे नहीं तो उसका अन्त सन्निकट है।

भारतीयों के बढ़ते असन्तोष की परिणति अमेरिका तथा इटली के स्वतन्त्रता संग्राम के समान हो सकती थी। ह्यूम की दृष्टि में विप्लव के खतरे को रोकने के लिए सरकार की ओर से कुछ ठोस सुधार किए जाने आवश्यक थे और इन सुधारों में सबसे आवश्यक था राष्ट्रीय आन्दोलन का एक संगठन जिसके तीन लक्ष्य हों:
पहला, भारत के विभिन्न क्षेत्रों तथा जनसमूहों का सम्मिश्रण।
दूसरा, राष्ट्र का आध्यात्मिक, नैतिक, सामाजिक तथा राजनीतिक उत्थान।
तीसरा, अन्यायपूर्ण व हानिकारक तत्वों को दूर कर भारत तथा इंग्लैण्ड के मध्य सुदृढ़ सम्बन्ध स्थापित करना।

ए0 ओ0 ह्यूम ने मार्च, 1883 में कलकत्ता विश्वविद्यालय के स्नातकों को एक खुला पत्र लिखा था जिसमें उन्होंने उनसे राष्ट्रीय आन्दोलन में प्रविष्ट होने का आवाहन किया क्योंकि भारत के युवा जागरूक बुद्धिजीवी ही देश के उत्थान का स्वप्न साकार करने में सक्षम थे। उन्होंने यह भी स्पष्ट किया कि देश के कल्याण के लिए व्यक्तिगत नहीं बल्कि सामूहिक प्रयास ही कारगर हो सकता था।
ए0 ओ0 ह्यूम भारत में भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस की स्थापना कर उसकी वैसी ही भूमिका चाहते थे जैसी कि इंग्लैण्ड में विरोधी दल की होती थी। उन्हें कांग्रेस से सरकार की स्वस्थ आलोचना करने और आवश्यक सुधार हेतु उपयोगी सुझाव देने की अपेक्षा थी।

ए0 ओ0 ह्यूम ने 1884 में 'इण्डियन नेशनल यूनियन' अर्थात् 'भारतीय राष्ट्रीय संघ' की स्थापना की। इसको भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस का अग्रदूत कहा जा सकता है।

स्व मूल्यांकन हेतु प्रश्न

निम्नलिखित विषयों पर संक्षिप्त टिप्पणी लिखिए:

1. (क) इल्बर्ट बिल विवाद।

   (ख) सर ए0 ओ0 ह्यूम की उदार राजनीतिक विचारधारा।

2. नीचे लिखे प्रश्नों के उत्तर दीजिए।

(i) लोकल सेल्फ़ गवर्नमेन्ट एक्ट कब पारित हुआ?

(ii) 'इण्डियन नेशनल यूनियन' की स्थापना कब हुई?

7.4 प्रथम चरण में भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस के प्रमुख कार्य तथा उसकी सीमाएं

7.4.1 प्रथम चरण में कांग्रेस के उद्देश्य तथा उसकी कार्यप्रणाली

7.4.1.1 भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस का प्रथम अधिवेशन

28–31 दिसम्बर, 1885 को बम्बई में गोकुलदास तेजपाल संस्कृत कॉलेज परिसर में डब्लू0 सी0 बनर्जी की अध्यक्षता में भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस का प्रथम अधिवेशन सम्पन्न हुआ। ए0 ओ0 ह्यूम इसके महासचिव थे और इसमें भाग लेने वाले सदस्यों की कुल संख्या 72 थी जिनमें कि अधिकांश बॉम्बे तथा मैड्रास प्रेसीडेन्सी के शहरी मध्यवर्गीय हिन्दू थे। इसके विदेशी सदस्यों में वैडरबर्न और जस्टिस जॉन जॉर्डिन सम्मिलित थे। इस अधिवेशन में सदस्यों ने ब्रिटिश साम्राज्य के प्रति अपनी निष्ठा व्यक्त की और ब्रिटिश भारतीय सरकार की ओर से भी इसे संरक्षण प्रदान किया गया।

- कांग्रेस के पहले अधिवेशन में घोषित उद्देश्य थे:
- भारत के हितैषियों के मध्य सम्पर्क व सद्भाव बढ़ाना।
- धर्म, सम्प्रदाय, जाति, क्षेत्र की संकीर्ण भावना दूर कर राष्ट्रीय एकीकरण के प्रयास करना।
- शिक्षित समुदाय से विचार–विमर्श कर सामाजिक विषयों पर चर्चा करना।
- भारतीयों के कल्याण हेतु भावी कार्यक्रम की दिशा निर्धारित करना।
- इस अधिवेशन में कुल 9 प्रस्ताव पारित किए गए जिनमें कि मुख्य थे –
- भारतीय प्रशासन की कार्यप्रणाली की जांच करने के लिए रॉयल कमीशन की नियुक्ति की जाए।
- भारत सचिव की इण्डियन काउंसिल भंग की जाए।
- पश्चिमोत्तर प्रदेश तथा अवध और पंजाब में विधान परिषदों का गठन किया जाए।
- उच्चतम तथा स्थानीय विधान परिषदों में निर्वाचित सदस्यों को पर्याप्त संख्या में प्रवेश दिया जाए तथा उन्हें बजट पर बहस करने का अधिकार दिया जाए।
- हाउस ऑफ़ कॉमन्स में एक स्टैण्डिंग काउंसिल का गठन किया जाए जो कि विधान परिषदों में बहुमत से उठाए गए विरोधों पर विचार करे।
- सैनिक व्यय में कमी की जाए तथा इसका बोझ भारत और इंग्लैण्ड मिलकर उठाएं।
- इंग्लैण्ड तथा भारत दोनों में ही एकसाथ इण्डियन सिविल सर्विस की परीक्षा का आयोजन किया जाए तथा अभ्यार्थियों की आयु की अधिकतम सीमा बढ़ाई जाए।

कांग्रेस के दूसरे सत्र में सदस्यों की संख्या पहले अधिवेशन के सदस्यों की संख्या से छह गुनी से भी अधिक अर्थात् 441 हो गई, इसमें जनता के चुने प्रतिनिधियों ने भाग लिया अब से कांग्रेस के अधिवेशनों में दर्शकों को भी प्रवेश दे दिया गया।

दूसरे अधिवेशन की स्वागत समिति के अध्यक्ष राजेन्द्रलाल मित्र ने कहा था –

हमारी विदेशी नौकशाही, जन्म, धर्म और प्रकृति में हमसे भिन्न है। वह हमारी आवश्यकताओं, भावनाओं और आकांक्षाओं को समझ नहीं सकती।

मद्रास में हुए कांग्रेस के तीसरे अधिवेशन के अध्यक्ष बदरुद्दीन तैयबजी ने अपने मुसलमान भाइयों से कांग्रेस में आने की अपील की। अगले अधिवेशन में मुस्लिम सदस्यों की संख्या में वृद्धि हुई पर अधिकांश मुसलमान अब भी कांग्रेस में स्वयं को सुरक्षित अनुभव नहीं कर पाए। उनको अब भी यह लगता था कि कांग्रेस भारत में हिन्दू राज स्थापित करना चाहती है। सैयद अहमद ने कांग्रेस को बंगाली हिन्दुओं के प्रभुत्व वाला दल बताया और यह कहा कि यदि कांग्रेस की मांगे मान ली गईं तो भारत में बंगालियों का शासन स्थापित हो जाएगा। उन्होंने मुसलमानों को सलाह दी कि वो कांग्रेस से दूर रहें।

1888 में इलाहाबाद में कांग्रेस के चौथे अधिवेशन के अध्यक्ष जॉर्ज यूल बने। इस प्रकार कांग्रेस के प्रथम अधिवेशन के अध्यक्ष डब्लू0 सी0 बैनर्जी एक भारतीय ईसाई, दूसरे अधिवेशन के अध्यक्ष दादा भाई नौरोजी एक पारसी, तीसरे अधिवेशन के अध्यक्ष बदरुद्दीन तैयबजी एक मुसलमान और चौथे अधिवेशन के अध्यक्ष जॉर्ज यूल एक अंग्रेज़ थे। इन अध्यक्षों के चयन ने कांग्रेस की धर्मनिर्पेक्षता के सिद्धान्त में आस्था व उसके जातिगत भेदभाव में पूर्ण अविश्वास को स्पष्ट कर दिया।

कांग्रेस अधिवेशनों में सरकार के प्रति बार–बार निष्ठा व्यक्त की गई परन्तु इसके बावजूद इंग्लैण्ड की जनता कांग्रेस को भारत में ब्रिटिश शक्ति के लिए एक खतरा मानती रही। लन्दन के पत्र *दि टाइम्स* के सम्पादकीय टिप्पणी में कहा गया कि कांग्रेस की मांगे मानकर सरकार भारत में भारतीयों स्वशासन दिए जाने का मार्ग प्रशस्त कर देगी।

कांग्रेस ने भारत में राजनीतिक चेतना का प्रसार करने में सफलता प्राप्त की। इसके द्वारा पारित प्रस्तावों का जनता में व्यापक प्रसार–प्रचार किया गया। समाचार पत्रों ने इस संगठन का स्वागत किया।

इंग्लैण्ड में भारतीयों की समस्याओं को उठाने में कांग्रेस का प्रतिनिधित्व विलियम वैडरबर्न, चार्ल्स ब्रैडला तथा जॉन डिग्बी ने किया।

1901 के कांग्रेस अधिवेशन की अध्यक्षता करते हुए डी0 एन0 वाचा ने कहा था –

भारत को यह स्वतन्त्रता या अधिकार नहीं है कि वह अपना प्रशासक चुन सके। यदि उसे ऐसा करने का अधिकार होता तो वह पूरी तरह से स्वदेशी संस्था चुनता जो कि देश का पैसा देश के ऊपर ही खर्च करती।

कांग्रेस के प्रथम चरण में प्रेस तथा अभिव्यक्ति की स्वतन्त्रता की मांग की गई। इण्डियन आर्म्स एक्ट के उन्मूलन की मांग भी रखी गई। कार्यपालिका तथा न्यायपालिका के पृथक्कीकरण की आवश्यकता पर बहुत ज़ोर दिया गया तथा सरकार की नीतियों में रंगभेद की नीति को पूरी तरह समाप्त किए जाने की मांग बार–बार रखी गई। सरकार की आर्थिक नीतियों की कांग्रेस द्वारा आलोचना का उल्लेख पूर्व की इकाई में विस्तार से किया जा चुका है।

7.4.2 प्रथम चरण में भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस की नीति

कांग्रेस के प्रारम्भिक बीस वर्षों में सुरेन्द्रनाथ बनर्जी, दादा भाई नौरोजी, एम0 जी0 रानाडे, जी0 वी0 जोशी, फ़िरोज़ शाह मेहता, डब्लू0 सी0 बैनर्जी, बदरुद्दीन तैयबजी, रासबिहारी घोष, आनन्द मोहन बोस, लालमोहन बोस, रमेश चन्द्र दत्त, के0 टी0 तैलंग, वीर राघवचारी, आनन्द चारलू, दिनशा वाचा, गोपालकृष्ण गोखले, सुब्रह्मण्यम अय्यर, पण्डित मदन मोहन मालवीय, सी0 वाई0 चिन्तामणि आदि नेताओं ने सरकार की नीतियों की कटु आलोचना करते हुए भी याचिकाओं, शिष्ट मण्डलों,

जनसभाओं, पैम्फलैटों, स्मरणपत्रों, इंग्लैण्ड में जनता के समक्ष तथा पार्लियामेन्ट में भारत का पक्ष रखने में तथा अखबारों के माध्यम से अपनी निर्भीक राय रखने की रणनीति अपनाई। विलियम वेडरबर्न को इंग्लैण्ड में कांग्रेस की ब्रिटिश कमेटी का अध्यक्ष बनाया गया और कांग्रेस की मांगों को इंग्लैण्ड वासियों के सम्मुख रखने के लिए *इण्डिया* पत्र का प्रकाशन किया गया। इस चरण में सरकार के प्रति पूर्ण अविश्वास और विरोध की नीति को नहीं अपनाया गया क्योंकि कांग्रेस को विश्वास था कि महारानी के 1858 के घोषणापत्र में दिए गए आश्वासनों के कार्यान्वयन में

सरकार आनाकानी नहीं करेगी। कांग्रेस के नेताओं ने उदार ब्रिटिश जनता की सहानुभति प्राप्त कर भारत में राजनीतिक, संवैधानिक, आर्थिक, शैक्षिक व प्रशासनिक सुधार प्राप्त करना सम्भव माना। दादा भाई नौरोजी ने ब्रिटिश पार्लियामेन्ट में तथा गोपालकृष्ण गोखले ने भारत की केन्द्रीय विधान परिषद में भारतीयों की समस्याओं को रखा तथा सरकार की कथनी और उसकी करनी में फ़र्क को उजागर किया परन्तु आमतौर पर इन नेताओं को विश्वास था कि कॉब्डेन, बेंथम, ब्राइट, मिल तथा ग्लैड्सटन के देश की जनता तथा सरकार उनके न्यायपूर्ण अधिकारों को दिलाने में उनका साथ देगी। उनका लक्ष्य जनता को राजनीतिक आन्दोलन करने की शिक्षा देना और भारतीयों की आकांक्षाओं को ब्रिटिश जनता और राजनीतिज्ञों तक पहुंचाना था ।

7.4.3 कांग्रेस के प्रारम्भिक नेताओं का राष्ट्रीय आन्दोलन में योगदान

धर्मनिर्पेक्ष, अहिंसक राजनीतिक आन्दोलन का सूत्रपात करने के साथ–साथ कांग्रेस के प्रथम चरण के नेताओं ने भारतीयों को एकसूत्र में बांधने का सराहनीय कार्य भी किया। आर्थिक राष्ट्रवाद के विकास में उनका अभूतपूर्व योगदान था। इसकी विस्तृत चर्चा पिछली इकाइयों में की जा चुकी है। उन्होंने व्यक्ति स्वातन्त्र्य तथा सामाजिक समानता की महत्ता को जन–जन तक पहुंचाया, समाज सुधार हेतु 'नेशनल सोशल कॉन्फ्रेन्स' जैसी संस्थाओं को अपना पूर्ण सहयोग दिया। स्वदेशी की भावना का प्रसार–प्रचार करने में भी उन्होंने महत्वपूर्ण योगदान दिया था। कांग्रेस के अधिवेशनों के साथ औद्योगिक प्रदर्शनियों का आयोजन कर उन्होंने भारत की आर्थिक आत्मनिर्भरता की महत्ता को जन–साधारण तक पहुंचाया। कांग्रेस के लगभग सभी प्रारम्भिक नेता पत्रकारिता से सम्बद्ध रहे। निर्भीक तथा प्रतिबद्ध पत्रकारिता के उन्नत मापदण्ड स्थापित करने में भी उन्हें सफलता मिली थी।

7.4.4 अपनी स्थापना के प्रथम चरण में कांग्रेस के कार्यक्रम की सीमाएं

सरकार की नीतियों को बदलने में अथवा उसकी शोषक प्रकृति बदलने में उन्हें बहुत कम सफलता मिली। भारत में उत्तरदायी शासन स्थापित करने की दिशा में सरकार ने कछुए की गति से भी धीमा रुख अपनाया। लॉर्ड डफ़रिन की सिफ़ारिश के बावजूद सरकार ने 1892 के इण्डियन काउंसिल्स एक्ट में विधानपरिषदों में चुनाव की प्रक्रिया शुरू की जाने वाली भारतीयों की मांग को स्वीकार नहीं किया। इण्डियन सिविल सर्विस की परीक्षा का आयोजन इंग्लैण्ड के साथ–साथ भारत में नहीं किया गया। उच्च सेवाओं में भारतीयों की संख्या नगण्य ही रही। सरकार प्रशासनिक तथा सैनिक अपव्यय में पूर्ववत लिप्त रही और भारत से धन का दोहन भी पूर्ववत जारी रहा।

7.4.5 कांग्रेस के प्रति भारतीय सरकार तथा इंग्लैण्ड की जनता के दृष्टिकोण में बदलाव

गवर्नर जनरल लॉर्ड डफ़रिन प्रारम्भ में कांग्रेस की गतिविधियां सामाजिक मुद्दों तक ही सीमित रखे जाने के पक्ष में थे परन्तु बाद में उन्होंने उसके राजनीतिक स्वरूप को स्वीकार किया। सरकार ने कांग्रेस की स्थापना के चार वर्ष बाद ही उसको प्रोत्साहित करने अथवा उसके साथ सहयोग करने की नीति का परित्याग कर दिया। लॉर्ड डफ़रिन ने कांग्रेस को भारतीय जनता का प्रतिनिधित्व करने वाले दल के रूप में मान्यता नहीं दी। उसकी दृष्टि में मुठ्ठी भर शिक्षित शहरी मध्य वर्ग के दल को जिसको कि भारत के राजनीतिक पटल पर केवल सूक्ष्मदर्शी यन्त्र की सहायता से देख जा सकता था, भारतीय जनता का प्रतिनिधित्व करने का कोई अधिकार नहीं था। 1888 के बाद सरकारी अधिकारियों को कांग्रेस अधिवेशनों में भाग लेने की अनुमति नहीं दी गई। सरकार ने तथा उससे सहानुभूति रखने वाले अंग्रेज़ी पत्रों ने इस बात को उभारा कि कांग्रेस के प्रथम अधिवेशन में एक भी मुस्लिम सदस्य नहीं था। सैयद अहमद ने कांग्रेस को बंगाली हिन्दुओं के प्रभुत्व वाला दल बताया और यह कहा कि यदि कांग्रेस की मांगे मान ली गईं तो भारत में बंगालियों का शासन स्थापित हो जाएगा। उन्होंने मुसलमानों को सलाह दी कि वो कांग्रेस से दूर रहें। प्रारम्भ में कांग्रेस में मुस्लिम सदस्यों का प्रतिशत 13.5 तक बढ़ा किन्तु 1893 के साम्प्रदायिक दंगों के बाद यह गिरकर 7.1 प्रतिशत रह गया। सरकार ने भी सदैव यह प्रयास किया कि मुसलमान, भारतीय रियासतों के शासकगण, ज़मींदार, उद्योगपति आदि कांग्रेस से दूरी बनाए रखें।

सरकार ने कांग्रेस के प्रस्तावों की सामान्यतः नितान्त उपेक्षा की। इससे सर ए0 ओ0 ह्यूम को बहुत अधिक निराशा हुई। उन्होंने कहा –

शिक्षित भारतीय समुदाय, प्रेस और कांग्रेस, तीनों की सलाहों को अनसुनी कर सरकार ने अपने निरंकुश होने का सबूत दे दिया है।

कांग्रेस ने सरकार के आर्थिक दोहन की नीति का पर्दाफ़ाश किया । कांग्रेस के द्वारा अपनी नीतियों को रंगभेदी तथा जातिभेदी ठहराया जाना सरकार को सहन नहीं हुआ । उसने कांग्रेस को भारतीय जनता का प्रतिनिधि मानने से इंकार कर दिया। सरकार द्वारा कांग्रेस की प्रगति में बाधा पहुंचाई जाने लगी । 1888 में मैसूर के महाराजा को कांग्रेस को चन्दा देने के लिए वाइसराय डफ़रिन ने फटकार लगाई थी। 1900 में गवर्नर जनरल लॉर्ड कर्ज़न ने भारत सचिव को लिखे एक पत्र में कांग्रेस को पतन की कगार पर खड़ा बताया था और भारत में अपने शासनकाल में उसके शान्तिपूर्ण अवसान की कामना की थी।

7.4.6 कांग्रेस के भीतर तथा बाहर विरोधी स्वरों का मुखर होना

कांग्रेस में लोकमान्य तिलक, लाला लाजपत राय और बिपिन चन्द्र पाल ने सरकार की नीतियों को मूलतः शोषक, दमनकारी, रंगभेदी तथा जातिभेदी मानते हुए यह स्पष्ट किया कि सरकार के सदाशय में आस्था रखकर, संविधान की सीमाओं मे रहते हुए तथा सरकार से सहयोग करते हुए कुछ भी हासिल नहीं किया जा सकता। लोकमान्य तिलक ने भीख मांगने के स्थान पर लड़कर अपना अधिकार लेने की रणनीति अपनाने के लिए कांग्रेस पर दबाव डाला और कांग्रेस को शिक्षित शहरी मध्यवर्ग के राजनीतिक दल से उसे

आम भारतीय जनता का दल बनने की सलाह दी। युवा कवि रवीन्द्रनाथ टैगोर ने भी कांग्रेस की याचक प्रवृत्ति की आलोचना की थी और सुधारों के लिए आत्मशक्ति पर आधारित कार्यक्रमों की महत्ता दर्शाई थी। कांग्रेस के भीतर ही उभरते हुए विरोधी स्वरों में उसकी कागज़ी कार्यवाही करने की नीति की आलोचना की गई। कांग्रेस के त्रि–दिवसीय अधिवेशनों में बड़ी–बड़ी मांगे रखने के बाद शेष समय चुपचाप बैठ जाने की उसके नेताओं की दुर्बलता की भी आलोचना की गई। कांग्रेस के 1897 के अमरावती अधिवेशन को अश्विनीकुमार दत्त ने तीन दिनों का तमाशा कहा था। गोपालकृष्ण गोखले और मदनमोहन मालवीय जैसे नेताओं ने त्यागपूर्ण सार्वजनिक जीवन की मिसाल कायम की परन्तु अधिकांश भारतीय नेता आराम की ज़िन्दगी बिताते हुए अपना अधिकतर समय अपने–अपने व्यवसाय में ही व्यस्त रहने में लगाते थे। दिनशा वाचा ने इस विषय में फ़िरोज़शाह मेहता, रानाडे तथा के0 टी0 तैलंग की आलोचना की थी। प्रसिद्ध उर्दू शायर अकबर इलाहाबादी ने इन भारतीय नेताओं की जीवन शैली पर व्यंग्य कसते हुए कहा था–

क़ौम के ग़म में डिनर खाते हैं हुक्काम के साथ।
रंज लीडर को बहुत हैं, मगर आराम के साथ।।

(देश तथा देशवासियों की चिन्ता करने वाले नेतागण सरकारी अधिकारियों के साथ रात्रि–भोज करते हैं। देशसेवा करने में इनको कष्ट तो बहुत होते हैं मगर इनके विलासितापूर्ण जीवन में कोई बाधा नहीं पड़ती।)

वास्तव में उस समय भारत राजनीतिक चेतना की प्रक्रिया के प्रथम चरण से गुज़र रहा था अतः इसमें आम जनता की भागीदारी नहीं थी बल्कि इसमें वकीलों, पत्रकारों, शिक्षकों आदि शहरी मध्य वर्ग का ही प्रतिनिधित्व था। कैम्ब्रिज स्कूल के इतिहासकार कांग्रेस को एक राष्ट्रवादी राजनीतिक दल नहीं अपितु इसे महत्वाकांक्षी, सत्ता लोलुप मध्यवर्गीयों का आन्दोलन मानते हैं।

स्वमूल्यांकन हेतु प्रश्न

निम्नलिखित विषयों पर संक्षिप्त टिप्पणी लिखिए:

1. (क) कांग्रेस के प्रथम चरण के नेताओं की प्रमुख नीतियां ।
   (ख) प्रथम चरण में कांग्रेस के भीतर उभरते विरोध के स्वर।
2. नीचे लिखे प्रश्नों के उत्तर दीजिए।

(i) किस गवर्नर जनरल ने सर्वप्रथम कांग्रेस को जनता का प्रतिनिधित्व करने वाले दल के रूप मान्यता देने से इंकार किया था?

(ii) क्या मुसलमानों ने बड़ी संख्या में कांग्रेस की सदस्यता ग्रहण की थी?

कांग्रेस अपने प्रारम्भिक चरण में एक राजनीतिक दल की भूमिका निभाने में असफल हुई थी। वास्तव में इसका काम हर साल के सप्ताहान्त में किसी शहर में देश के राष्ट्रीय नेताओं को सम्मिलित कर तीन–चार दिन का एक आयोजन करने तक सीमित था। इस आयोजन के दौरान रस्मी तौर पर देश की जनता की शाश्वत एवं तत्कालीन समस्याओं को उठाया जाता था। यूं तो कांग्रेस अधिवेशनों के द्वार सभी के लिए खुले थे किन्तु इसके लिए प्रतिनिधि का नाम संगठन के द्वारा प्रस्तावित किया जाना अथवा एक सार्वजनिक सभा में उसका नामांकन किया जाना आवश्यक था। अधिवेशन में प्रतिनिधि बनने के लिए व्यक्ति को 10 से 20 रुपये तक का शुल्क देना होता था और इसके अतिरिक्त उसे अपने स्थान से अधिवेशन के स्थान तक आने जाने के व्यय का भी स्वयं निर्वाह करना होता था। देश की जनता के तत्कालीन आर्थिक संसाधनों को देखते हुए कांग्रेस का सदस्यता शुल्क तथा प्रतिनिधि शुल्क दे सकना आम आदमी के लिए अत्यन्त कठिन था। इसके अतिरिक्त कांग्रेस की कार्रवाही आमतौर पर अंग्रेज़ी भाषा में होती थी। इन कारणों से कांग्रेस अंग्रेज़ी शिक्षा प्राप्त शहरी मध्यवर्ग तक सिमटी हुई थी। 1905 में भी नरमपंथी गोपाल कृष्ण गोखले केवल शिक्षित वर्ग के लिए ही राजनीतिक अधिकारों की मांग कर रहे थे क्योंकि उनकी दृष्टि में राजनीतिक विषयों की समझ रखने के लिए शिक्षा एक आवश्यक शर्त थी। कांग्रेस के अधिवेशनों की तड़क–भड़क देखते ही बनती थी। आमतौर पर अधिवेशनों के आयोजनों में ही इसके संसाधनों का अधिकांश भाग खर्च हो जाता था।

कांग्रेस के पहले अधिवेशन में सदस्यों की कुल संख्या मात्र 72 थी। इसके दूसरे सत्र में यह संख्या पहले सत्र से छह गुने से भी अधिक – कुल 434 हो गई। इसमें जनता के चुने प्रतिनिधियों ने भाग लिया। मद्रास में हुए कांग्रेस के तीसरे अधिवेशन में प्रतिनिधियों की संख्या 607 हो गई। इलाहाबाद में कांग्रेस के चौथे अधिवेशन में इसके सदस्यों की संख्या 1248 और 1889 में बम्बई में हुए इसके पांचवे अधिवेशन में यह संख्या बढ़कर 1889 हो गई।

कांग्रेस के प्रथम अधिवेशन के अध्यक्ष डब्लू0 सी0 बैनर्जी एक भारतीय ईसाई, दूसरे अधिवेशन के अध्यक्ष दादा भाई नौरोजी एक पारसी, तीसरे अधिवेशन के अध्यक्ष बदरुद्दीन तैयबजी एक मुसलमान और चौथे अधिवेशन के अध्यक्ष जॉर्ज यूल एक अंग्रेज़ थे। इन अध्यक्षों के चयन ने कांग्रेस की धर्मनिर्पेक्षता के सिद्धान्त में आस्था व उसके जातिगत भेदभाव में पूर्ण अविश्वास को स्पष्ट कर दिया।

सन् 1885 से लेकर सन् 1906 तक ए0 ओ0 ह्यूम भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस के ऑनरेरी जनरल सेक्रेटरी बने रहे। ह्यूम कांग्रेस के अधिवेशनों के सुचारु संचालन, देश के विभिन्न नेताओं से सम्पर्क, उसके वित्तीय मामलों की देखभाल तथा अधिवेशनों की रिपोर्ट तैयार करने के दायित्वों का निर्वाह करते थे। वास्तव में गोपाल कृष्ण गोखले से पूर्व ए0 ओ0 ह्यूम ही एक मात्र व्यक्ति थे जिसने अपना पूरा समय कांग्रेस के कार्यों के लिए समर्पित कर रखा था।

7.4.7 1892 के इण्डियन काउंसिल्स एक्ट से पूर्व कांग्रेस की नीतियां

कांग्रेस के नरमपंथी नेता एडमन्ट बर्क, जॉन स्टुअर्ट मिल तथा जॉन मोर्ले के उपयोगितावादी सिद्धान्तों से प्रभावित थे। कांग्रेस के प्रारम्भिक बीस वर्षों में सुरेन्द्रनाथ बनर्जी, दादा भाई नौरोजी, एम0 जी0 रानाडे, जी0 वी0 जोशी, फ़िरोज़ शाह मेहता, डब्लू0 सी0 बैनर्जी, बदरुद्दीन तैयबजी, रासबिहारी घोष, आनन्द मोहन बोस, लालमोहन बोस, रमेश चन्द्र दत्त, के0 टी0 तैलंग, वीर राघवचारी, आनन्द चारलू, दिनशा वाचा, गोपालकृष्ण गोखले, सुब्रह्मण्यम अय्यर, पण्डित मदन मोहन मालवीय, सी0 वाई0 चिन्तामणि आदि नेताओं ने सरकार की नीतियों की कटु आलोचना करते हुए भी याचिकाओं, शिष्ट मण्डलों, जनसभाओं, पैम्फलैटों, स्मरणपत्रों, इंग्लैण्ड में जनता के समक्ष तथा पार्लियामेन्ट में भारत का पक्ष रखने में तथा अखबारों के माध्यम से अपनी निर्भीक राय रखने की रणनीति अपनाई। विलियम वेडरबर्न को इंग्लैण्ड में कांग्रेस की ब्रिटिश कमेटी का अध्यक्ष बनाया गया और कांग्रेस की मांगों को इंग्लैण्ड वासियों के सम्मुख रखने के लिए इण्डिया पत्र का प्रकाशन किया गया।

कांग्रेस ने अपने प्रथम चरण में सरकार के प्रति पूर्ण अविश्वास और विरोध की नीति को नहीं अपनाया क्योंकि उसे विश्वास था कि महारानी के 1858 के घोषणापत्र में दिए गए आश्वासनों के कार्यान्वयन में सरकार आनाकानी नहीं करेगी। कांग्रेस के नेताओं ने उदार ब्रिटिश जनता की सहानुभति प्राप्त कर भारत में राजनीतिक, संवैधानिक, आर्थिक, शैक्षिक व प्रशासनिक सुधार प्राप्त करना सम्भव माना। नरमपंथियों का यह मानना था कि भारतीयों के साथ

हो रहे अन्याय तथा ब्रिटिश चरित्र के सर्वथा विरुद्ध शासन के लिए मुख्यतः वाइसराय, उसकी कार्यकारिणी तथा स्थानीय नौकरशाही ज़िम्मेदार है और इसके परिष्कार हेतु ब्रिटिश पार्लियामेन्ट, गृह सरकार और ब्रिटिश जनता तक अपनी शिकायतें पहुंचाना आवश्यक है। दादा भाई नौरोजी ने ब्रिटिश पार्लियामेन्ट में तथा गोपालकृष्ण गोखले ने भारत की केन्द्रीय विधान परिषद में भारतीयों की समस्याओं को रखा तथा सरकार की कथनी और उसकी करनी में फ़र्क को उजागर किया। आमतौर पर इन नेताओं को विश्वास था कि कॉब्डेन, बेंथम, ब्राइट, मिल तथा ग्लैड्सटन के देश की जनता तथा सरकार उनके न्यायपूर्ण अधिकारों को दिलाने में उनका साथ देगी। उनका लक्ष्य जनता को राजनीतिक आन्दोलन करने की शिक्षा देना और भारतीयों की आकांक्षाओं को ब्रिटिश जनता और राजनीतिज्ञों तक पहुंचाना था ।

कांग्रेस के प्रारम्भिक अधिवेशनों में संवैधानिक सुधारों की मांगों में केन्द्रीय तथा प्रान्तीय विधान परिषदों के कार्यक्षेत्र तथा उसके सदस्यों के अधिकारों में वृद्धि और उसके सदस्यों को जनता द्वारा निर्वाचित किया जाना सम्मिलित था। प्रशासनिक एवं आर्थिक सुधारों की मांगें रखी गईं।

कांग्रेस के प्रथम चरण में प्रेस तथा अभिव्यक्ति की स्वतन्त्रता की मांग की गई और व्यक्ति–स्वातन्त्र्य को महत्व दिया गया। इस काल में भारतीय शासन में भारतीयों की हिस्सेदारी बढ़ाने की मांग की गई। इण्डियन सिविल सर्विस की परीक्षा का आयोजन भारत में भी करने और इसके हेतु परीक्षा देने वाले अभ्यार्थियों की अधिकतम आयु सीमा बढ़ाने की मांगों को बार–बार रखा गया। कार्यपालिका तथा न्यायपालिका के पृथक्कीकरण की आवश्यकता पर बहुत ज़ोर दिया गया तथा सरकार की रंगभेद की नीति को पूरी तरह समाप्त किए जाने की मांग बार–बार रखी गई। प्रशासनिक तथा सैनिक व्यय में कमी किए जाने की आवश्यकता पर ज़ोर दिया गया।

कलकत्ते में आयोजित कांग्रेस के दूसरे अधिवेशन का अध्यक्ष दादा भाई नौरोजी को चुना गया। अधिवेशन की अध्यक्षता करते हुए दादा भाई नौरोजी ने ब्रिटिश शासन के कारण भारत की विपन्नता का उल्लेख किया था। दूसरे अधिवेशन की स्वागत समिति के अध्यक्ष राजेन्द्रलाल मित्र ने कहा था –

हमारी विदेशी नौकरशाही, जन्म, धर्म और प्रकृति में हमसे भिन्न है। वह हमारी आवश्यकताओं, भावनाओं और आकांक्षाओं को समझ नहीं सकती।

दादा भाई नौरोजी, एम0 जी0 रानाडे, जी0 वी0 जोशी आदि ने भारत के खाद्यान्न तथा अन्य उत्पादन, उसके आयात, निर्यात, प्रति व्यक्ति औसत आय, शासन पर होने वाले व्यय तथा जन–कल्याण पर किए जाने वाले व्यय सम्बन्धी प्रामाणिक आंकड़े एकत्र किए और सरकार से भूमि कर में कमी करने, अपनी अकाल नीति में सुधार करने और भारतीय उद्योग को प्रोत्साहन व संरक्षण देने की मांग की। 1888 में सरकार ने जब नमक कर में वृद्धि की तो कांग्रेस ने इस वृद्धि का विरोध किया क्योंकि इससे सबसे अधिक हानि निर्धन वर्ग को होने वाली थी। कांग्रेस ने पॉन्ड–रूपया सम्बन्ध में भारतीय हितों की उपेक्षा और नवोदित भारतीय मिलों के विकास में बाधा डालने की सरकारी नीति की भी आलोचना की थी।

7.4.8 1892 का इण्डियन काउंसिल्स एक्ट और कांग्रेस

कांग्रेस को यह आशा थी कि भारत में उत्तरदायी सरकार स्थापित किए जाने की दिशा में सरकार की ओर से प्रारम्भिक कदम उठाए जाएंगे और इसके लिए सबसे पहले विधान परिषदों में सदस्यों के निर्वाचन की प्रक्रिया शुरू की जाएगी। 1888 में भारत के गवर्नर जनरल लॉर्ड डफ़रिन ने भारत सचिव लॉर्ड क्रास को लिखे गए अपने पत्र में प्रान्तीय परिषदों के कार्यक्षेत्र में विस्तार और उसके सदस्यों की संख्या में वृद्धि करने का सुझाव दिया था तथा उनके सदस्यों के निर्वाचन की बात भी रखी थी। भारत में लॉर्ड डफ़रिन के उत्तराधिकारी लॉर्ड लैन्सडाउन ने भी उसके सुझावों का अनुमोदन किया था किन्तु भारत सचिव लॉर्ड क्रास तथा इंग्लैण्ड के प्रधानमन्त्री लॉर्ड सेलिसबरी की दृष्टि में प्रान्तीय परिषदों में चुनाव की प्रक्रिया प्रारम्भ किए जाने का अभी उचित समय नहीं था क्योंकि इससे विभिन्न जातियों और वर्गों के हितों की रक्षा कर पाना कठिन हो जाता। 1892 के इण्डियन काउंसिल्स एक्ट में केन्द्रीय विधान परिषद और प्रान्तीय विधान परिषदों में चुनाव की व्यवस्था लागू नहीं की गई और इसके सदस्यों संख्या व उनके अधिकारों में भी मामूली सी वृद्धि ही की गई और साथ ही साथ इन सभी में सरकारी सदस्यों का

बहुमत बना रहा। कांग्रेस को 1892 के इण्डियन काउन्सिल्स एक्ट से घोर निराशा हुई और उसका सरकार की सुधार करने की सदाशयता पर से विश्वास उठने लगा।

7.4.9 1892 के बाद तथा बंगाल विभाजन के निर्णय से पूर्व कांग्रेस की नीतियां

ब्रिटिश शासनकाल में भारत में अकालों की आवृत्ति और भयावहता में निरन्तर वृद्धि होती जा रही थी। अकाल की समस्या से निपटने के लिए फ़ैमिन कोड का गठन किया जा चुका था किन्तु उससे भारत की जनता को कोई लाभ नहीं पहुंच रहा था। 1896–97 में पड़े भयंकर दुर्भिक्ष में ब्रिटिश भारतीय क्षेत्र में कुल 50 लाख और 1899–1900 में कुल 10 लाख लोग भुखमरी का शिकार हुए थे। भुखमरी फैलने के दौरान भी भारत से आमतौर पर प्रतिवर्ष दस लाख टन अनाज का निर्यात किया जाता रहा। नरमपंथियों ने सरकार की अकाल नीति की निर्भीक आलोचना की और सरकार से अकाल की स्थिति से निपटने के लिए ठोस और स्थायी कदम उठाने की मांग की।

कांग्रेस की एक प्रमुख मांग थी कि भारतीयों को प्रशासन, न्याय व्यवस्था, सेना, रेलवेज़, षिक्षा तथा अन्य क्षेत्रों में उच्च पदों पर नियुक्त किया जाए। इससे न केवल योग्य भारतीयों को उन्नति के अवसर प्राप्त होते अपितु सरकार के खर्च में भी कमी आती।

लॉर्ड कर्ज़न के शासनकाल की दमनकारी नीतियों का कांग्रेस ने खुलकर विरोध किया। महारानी विक्टोरिया के सिंहासनारूढ़ होने की हीरक जयन्ती पर भारत में भयानक दुर्भिक्ष के समय भी उत्सवों में प्रचुर मात्रा में सरकारी संसाधनों का दुरुपयोग हुआ। कर्ज़न की राजनीतिक दमन और प्रशासनिक अपव्यय की नीतियों पर भारतीयों द्वारा नियन्त्रण न रख पाने की असमर्थता पर 1901 के कांग्रेस अधिवेशन की अध्यक्षता करते हुए डी0 एन0 वाचा ने कहा था –

'भारत को यह स्वतन्त्रता या अधिकार नहीं है कि वह अपना प्रशासक चुन सके। यदि उसे ऐसा करने का अधिकार होता तो वह पूरी तरह से स्वदेशी संस्था चुनता जो कि देश का पैसा देश के ऊपर ही खर्च करती।'

दरिद्रता में आकण्ठ डूबे भारत में प्रशासन पर किया जाने वाला व्यय विश्व में किसी भी देश के प्रशासनिक व्यय से अधिक था। प्रशासन तथा सेना की सभी शाखाओं में सभी ऊँचे पदों पर अंग्रेज़ों का एकाधिकार रहा। सरकारी व्यय में निरन्तर वृद्धि होती गई। भारतीय सेना पर भी अत्यधिक व्यय किया जा रहा था और उसका उपयोग विदेशी भूमि पर युद्ध करने के लिए भी किया जा रहा था। भारत में शासन करने के शुल्क के रूप में इंग्लैण्ड भेजे जाने वाले होमचार्ज में निरन्तर वृद्धि हो रही थी। भारतीय ऋण 1901–02 में 312 करोड़ रुपये हो गया था।

कांग्रेस ने इस आर्थिक दोहन की निर्भीकतापूर्वक निन्दा की। 1902 के कांग्रेस अधिवेशन में भारी नमक कर के कारण पर्याप्त नमक खरीद पाने में असमर्थता के फलस्वरूप निर्धन वर्ग में नमक की कमी से होने वाली अनेक बीमारियों के फैलने पर चिन्ता व्यक्त की गई और कपास पर उत्पादन शुल्क हटाने की मांग की गई क्योंकि इससे भारतीय कपड़ा उद्योग के विकास में बाधा पहुंच रही थी। 1904 के कांग्रेस अधिवेशन में दुर्भिक्ष पीड़ित क्षेत्रों में भूमि–कर में रियायत किए जाने की बात भी रखी। सरकार से यह भी अपील की गई कि वह वैज्ञानिक कृषि पद्धति को प्रोत्साहित करने और तकनीकी शिक्षा का प्रसार करने के लिए धनराशि आवंटित करे। देश का आधुनिक ढंग से औद्योगिकीकरण करने में सरकार द्वारा पूरी निष्ठा से अपना सहयोग करने तथा भारतीय उद्योग के संरक्षण के लिए आयातित वस्तुओं पर तटकर (टैरिफ़) लगाने की मांगे कांग्रेस अधिवेशनों में रखी जाने वाली मांगों में शामिल थीं। स्वदेशी उद्योग के विकास को प्रोत्साहन देने के लिए कांग्रेस के अधिवेशनों के साथ औद्योगिक प्रदर्शनियां लगाई गईं। कई स्थानों पर स्वदेशी भंडार खोले गए।

7.4.10 कांग्रेस के प्रथम चरण में उसके प्रति मुसलमानों का दृष्टिकोण

भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस ने अपने धर्मनिर्पेक्ष स्वरूप को पहले ही दर्शा दिया था किन्तु कांग्रेस के प्रथम अधिवेशन में एक भी मुस्लिम सदस्य नहीं था। इसके तीसरे अधिवेशन के अध्यक्ष बदरुद्दीन तैयबजी ने अपने मुसलमान भाइयों से कांग्रेस में आने की अपील की। अगले अधिवेशन में मुस्लिम सदस्यों की संख्या में वृद्धि हुई पर अधिकांश मुसलमान अब भी कांग्रेस में स्वयं को सुरक्षित अनुभव नहीं कर पाए। उनको अब भी यह लगता था कि कांग्रेस भारत में हिन्दू राज स्थापित करना चाहती है। सैयद अहमद खान ने कांग्रेस को बंगाली हिन्दुओं के प्रभुत्व वाला दल बताया और

यह कहा कि यदि कांग्रेस की मांगे मान ली गईं तो भारत में बंगाली हिन्दुओं का शासन स्थापित हो जाएगा। उन्होंने मुसलमानों को सलाह दी कि वो कांग्रेस से दूर रहें। प्रारम्भ में कांग्रेस में मुस्लिम सदस्यों का प्रतिशत 13.5 तक बढ़ा किन्तु 1893 के साम्प्रदायिक दंगों के बाद यह गिरकर 7.1 प्रतिशत रह गया।

7.4.11 कांग्रेस के प्रति भारतीय सरकार, गृह सरकार तथा ब्रिटिश जनता का रवैया

कांग्रेस अधिवेशनों में सरकार के प्रति बार–बार निष्ठा व्यक्त की गई परन्तु इसके बावजूद इंग्लैण्ड की जनता कांग्रेस को भारत में ब्रिटिश शक्ति के लिए एक खतरा मानती रही। लन्दन के पत्र दि टाइम्स के सम्पादकीय टिप्पणी में कहा गया कि कांग्रेस की मांगे मानकर सरकार भारत में भारतीयों स्वशासन दिए जाने का मार्ग प्रशस्त कर देगी।

गवर्नर जनरल लॉर्ड डफ़रिन प्रारम्भ में कांग्रेस की गतिविधियां सामाजिक मुद्दों तक ही सीमित रखे जाने के पक्ष में था परन्तु बाद में उसने उसके राजनीतिक स्वरूप को स्वीकार किया। सरकार ने कांग्रेस की स्थापना के चार वर्ष बाद ही उसको प्रोत्साहित करने अथवा उसके साथ सहयोग करने की नीति का परित्याग कर दिया। लॉर्ड डफ़रिन ने कांग्रेस को भारतीय जनता का प्रतिनिधित्व करने वाले दल के रूप में मान्यता नहीं दी। उसकी दृष्टि में मुठ्ठी भर शिक्षित शहरी मध्य वर्ग के दल को जिसको कि भारत के राजनीतिक पटल पर केवल सूक्ष्मदर्शी यन्त्र की सहायता से देख जा सकता था, भारतीय जनता का प्रतिनिधित्व करने का कोई अधिकार नहीं था। 1888 के बाद सरकारी अधिकारियों को कांग्रेस अधिवेशनों में भाग लेने की अनुमति नहीं दी गई। सरकार ने कांग्रेस के प्रस्तावों की सामान्यतः नितान्त उपेक्षा की। इससे सर ए0 ओ0 ह्यूम को बहुत अधिक निराशा हुई। उन्होंने कहा –

शिक्षित भारतीय समुदाय, प्रेस और कांग्रेस, तीनों की सलाहों को अनसुनी कर सरकार ने अपने निरंकुश होने का सबूत दे दिया है।

कांग्रेस ने सरकार के आर्थिक दोहन की नीति का पर्दाफ़ाश किया । कांग्रेस के द्वारा अपनी नीतियों को आर्थिक दोहन, रंगभेदी तथा जातिभेदी नीतियां ठहराया जाना सरकार को सहन नहीं हुआ । सरकार द्वारा कांग्रेस की प्रगति में बाधा पहुंचाई जाने लगी । 1888 में मैसूर के महाराजा को कांग्रेस को चन्दा देने के लिए वाइसराय डफ़रिन ने फटकार लगाई थी। 1900 में गवर्नर जनरल लॉर्ड कर्ज़न ने भारत सचिव को लिखे एक पत्र में कांग्रेस को पतन की कगार पर खड़ा बताया था और भारत में अपने शासनकाल में उसके शान्तिपूर्ण अवसान की कामना की थी।

7.5 सार संक्षेप

आदि काल से ही हमारे भारत में देशदेश प्रेम की भावना के सर्वत्र दर्शन होते हैं। चारो वेदों में, पुराणों तथा महाकाव्यों में राष्ट्रीयता की भावना सर्वत्र व्यक्त हुई है। मध्यकाल में राष्ट्रीयता की भावना के दर्शन हमको चन्द बरदाई और अमीर खुसरो की रचनाओं में महाराष्ट्र के वाराकरी पंथ के सन्तों के उपदेशों में तथा अकबर की प्रशासनिक, आर्थिक व धार्मिक नीति में मिलते हैं।

भारतीय नवजागरण के अग्रदूत राजा राममोहन राय को हम भारतीय राजनीतिक चेतना का भी अग्रदूत कह सकते हैं। 1857 के विद्रोह में देशवासियों में राष्ट्रीय एकता की भावना प्रबल हुई। भारतीय नवजागरण में धार्मिक, सामाजिक, सांस्कृतिक एवं शैक्षिक चेतना के साथ–साथ राजनीतिक चेतना भी विकास हुआ। आर्थिक राष्ट्रवाद के अन्तर्गत दादा भाई नौरोजी, एम0 जी0 रानाडे, जी0 वी0 जोशी, दिनशा वाचा, रमेश चन्द्र दत्त, केशब चन्द्र सेन, दयानन्द सरस्वती, भारतेन्दु हरिश्चन्द्र, अल्ताफ़ हुसेन हाली आदि ने एक ओर जहां ब्रिटिश शासन की आर्थिक दोहन की नीति के कारण भारत की दुर्दशा पर प्रकाश डाला तो दूसरी ओर उन्होंने भारतीयों को आर्थिक स्वावलम्बन का लक्ष्य प्राप्त करने के लिए प्रयास करने का आवाहन किया। शहरी मध्यवर्गीय भारतीय बुद्धिजीवियों ने उदार पाश्चात्य राजनीतिक सिद्धान्तों से प्रेरित होकर भारतीयों के राजनीतिक तथा आर्थिक हितों की रक्षा के लिए अपने–अपने राजनीतिक संगठन बनाए। धीरे–धीरे भारत में राष्ट्रीय स्तर के राजनीतिक संगठन की आवश्यकता का अनुभव किया जाने लगा।

अंग्रेज़ी तथा भारतीय भाषाओं के पत्रों तथा अनेक भारतीय भाषाओं रचित देशभक्तिपूर्ण साहित्यिक रचनाओं ने भारतीय राजनीतिक चेतना के प्रसार–प्रचार में उल्लेखनीय भूमिका निभाई। सम्बाद कौमुदी, तत्व बोधिनी पत्रिका,

हितवादी, बैंगाल हरकारा, पयामें आज़ादी, हिन्दू पैट्रिएट, सोमप्रकाश, कवि वचन सुधा, मुकर्जीज़ मैग्ज़ीन, ज्ञान प्रकाश, इन्दु प्रकाश, केसरी तथा बैंगाली में राजनीतिक एवं आर्थिक चेतना का प्रचार–प्रसार किया गया।

लॉर्ड लिटन की दमनकारी एवं शोषक नीतियों के कारण भारतीयों का असन्तोष अपनी पराकाष्ठा पर पहुंच गया। गवर्नर जनरल लार्ड रिपन के शासन काल (1880–84) में भारतीयों को पहले से अधिक अधिकार दिए गए किन्तु इल्बर्ट बिल विवाद से भारतीयों को संगठित विरोध तथा आन्दोलन की शक्ति का पता चल गया और उन्हें देश में संगठित राजनीतिक आन्दोलन करने की प्रेरणा मिली। उन्नीसवीं शताब्दी के उत्तरार्ध में कांग्रेस की स्थापना से पूर्व के राजनीतिक संगठनों में ब्रिटिश इण्डियन एसोसियेशन, बॉम्बे एसोसियेशन, मैड्रास नेटिव एसोसियेशन, ईस्ट इण्डियन एसोसियेशन, हिन्दू मेला, पूना सार्वजनिक सभा, इण्डियन लीग, इण्डियन एसोसियेशन, महाजन सभा तथा सुरेन्द्रनाथ बनर्जी की नेशनल कान्फ्रेन्स प्रमुख थे।

लोकतन्त्र की जननी इंग्लैण्ड के उदार राजनीतिक वातावरण को भारत में भी स्थापित करने की कामना करने वाले अनेक उदार अंग्रेज़ विचारक तथा अधिकारी भारतीयों को राजनीतिक व संवैधानिक सुधार दिए जाने के पक्ष में थे। इण्डियन सिविल सर्विस के अवकाश प्राप्त अधिकारी सर ए0 ओ0 ह्यूम का मानना था कि सरकार व जनता के मध्य सम्पर्क के किसी संवैधानिक साधन के अभाव के कारण सरकार को भारतीयों की समस्याओं की बहुत कम जानकारी मिल पाती है। उनकी दृष्टि में ब्रिटिश सरकार के विरुद्ध किसी भी जन–विद्रोह के खतरे को रोकने के लिए सरकार की ओर से कुछ ठोस सुधार किए जाने आवश्यक थे और इन सुधारों में सबसे आवश्यक था राष्ट्रीय आन्दोलन का एक संगठन। ए0 ओ0 ह्यूम भारत में भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस की स्थापना कर उसकी वैसी ही भूमिका चाहते थे जैसी कि इंग्लैण्ड में विरोधी दल की होती थी। ग्रेट ब्रिटेन के उदार राजनीतिज्ञ, वहां की उदारवादी दल की सरकार और तत्कालीन भारतीय प्रशासकों ने भी ए0 ओ0 ह्यूम के प्रस्तावों का स्वागत किया। बम्बई में दिसम्बर, 1885 में सर ए0 ओ0 ह्यूम ने भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस की स्थापना हुई।

28–31 दिसम्बर, 1885 को बम्बई में डब्लू0 सी0 बनर्जी की अध्यक्षता में भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस का प्रथम अधिवेशन सम्पन्न हुआ। कांग्रेस के पहले अधिवेशन में घोषित उद्देश्य थेः

- भारत के हितैषियों के मध्य सम्पर्क व सद्भाव बढ़ाना।
- धर्म, सम्प्रदाय, जाति, क्षेत्र की संकीर्ण भावना दूर कर राष्ट्रीय एकीकरण के प्रयास करना।
- शिक्षित समुदाय से विचार–विमर्ष कर सामाजिक विषयों पर चर्चा करना।
- भारतीयों के कल्याण हेतु भावी कार्यक्रम की दिशा निर्धारित करना।

इस अधिवेशन में पारित प्रस्तावों में सरकार से संगभेदी व जातिभेदी नीति का परित्याग करने की अपील किए जाने के अतिरिक्त भारत में उत्तरदायी सरकार की स्थापना के प्रथम चरण के रूप में भारतीयों को भारतीय प्रशासन, विधि–निर्माण तथा आर्थिक नीति–निर्धारण में हिस्सेदारी दिए जाने की मांग रखी गई।

7.6 पारिभाषिक शब्दावली

शक्ति का विकेन्द्रीकरणः शासन में केन्द्रीय नियन्त्रण को कम करना अथवा समाप्त करना।

लोकल सेल्फ़ गवर्नमेन्टः स्वायत्त शासित संस्था जैसे नगर पालिका अथवा जिला परिषद।

रशो फ़ोबियाः भारत पर अफ़गानिस्तान के रास्ते रूसी आक्रमण का भय।

व्यक्ति स्वातन्त्र्यः नागरिक अधिकारों की रक्षा अर्थात् कानून के दायरे में रहते हुए कुछ भी करने अथवा कहने की स्वतन्त्रता।

क़ौमः जाति, देशवासी।

हुक्कामः अधिकारी गण।

धर्मनिर्पेक्षः धर्म से परे अर्थात् धर्म के बन्धनों से हटकर।

7.7 सन्दर्भ ग्रंथ

मजूमदार, आर0 सी0 (सम्पादक)–*ब्रिटिश पैरामाउंट्सी एण्ड इण्डियन रिनेसा,* (भाग 1 व 2), बम्बई, 1965

ताराचन्दः *भारतीय स्वतन्त्रता आन्दोलन का इतिहास* (चार भागों में), नई दिल्ली, 1984

चन्द्रा, बिपन – *दि राइज़ एण्ड ग्रोथ ऑफ इकानॉमिक नेशनलिज़्म इन इण्डिया*
नई दिल्ली, 1965
बनर्जी, एस0 एन0 – *नेशन इन मेकिंग*, कलकत्ता, 1915
नटेसन, जी0 ए0 (प्रकाशक) – *इण्डियन नेशनल कांग्रेस*, मद्रास, 1917
घोष, पी0 सी0 – *दि डवलपमेन्ट ऑफ इण्डियन नेशनल कांग्रेस*, कलकत्ता, 1960
सीतारमैया, पी0 – *दि हिस्ट्री ऑफ दि इण्डियन नेशनल कांग्रेस*, बम्बई, 1946
नन्दा, बी0 आर0 – *गोखले, दि इण्डियन मॉडरेट्स एण्ड दि ब्रिटिश राज*, दिल्ली, 1977

7.8 स्व मूल्यांकित प्रश्नों के उत्तर

1. (क) देखिए 7.3.3 इल्बर्ट बिल विवाद तथा भारतीयों पर उसकी प्रतिक्रिया।
   (ख) देखिए 7.3.4 भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस के संस्थापक ए0 ओ0 ह्यूम की विचारधारा।
2. (i) सन् 1882 में।

(ii) सन् 1884 में।

1. (क) देखिए 7.4.2 प्रथम चरण में भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस की नीति।
   (ख) देखिए 7.4.6 कांग्रेस के भीतर तथा बाहर विरोधी स्वरों का मुखर होना।
2. (i) लॉर्ड डफ़रिन।
   (ii) नहीं।

7.9 अभ्यास प्रश्न

1. पाश्चात्य शिक्षा के प्रसार से लॉर्ड मैकॉले ने भारत में राजनीतिक चेतना के विकास की क्या भविष्यवाणी की थी?
2. सर ए0 ओ0 ह्यूम ने भारत में किस उद्देश्य भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस की स्थापना की थी?
3. लॉर्ड लिटन की भारत में राजनीतिक दमन की नीति की समीक्षा कीजिए।
4. सरकार की नीतियों की आलोचना करने के बाद भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस के प्रति सरकार के रुख में क्या बदलाव आया?
5. कांग्रेस के नरम दल की नीतियों की उग्रवादियों द्वारा की गई आलोचना की समीक्षा कीजिए।

इकाई आठः बंगाल विभाजन तथा स्वदेशी आन्दोलन

8.1 प्रस्तावना

8.2 इकाई के उद्देश्य

8.3 बंगाल विभाजन की योजना तथा उसका निर्णय

8.3.1 बंगाल विभाजन का निर्णय तथा उसके पीछे अंग्रेज़ों की साज़िश

8.3.2 बंगाल विभाजन के परिणाम स्वरूप हिन्दू–मुस्लिम सम्बन्धों में दरार

8.3.3 बंगाल विभाजन के अन्यायपूर्ण निर्णय पर भारतीय तथा ब्रिटिश प्रतिक्रिया

8.4 क्रान्तिकारी आतंकवाद

8.5 स्वदेशी आन्दोलन

8.5.1 बहिष्कार

8.5.2 स्वदेशी का सकारात्मक रूप

8.5.3 आर्थिक आत्मनिर्भरता

8.5.4 ग्राम स्वराज्य

8.5.5 राष्ट्रीय शिक्षा

8.5.6 राष्ट्रीय एकता

8.5.7 स्वराज्य

8.5.8 बंगाल विभाजन का रद्द किया जाना

8.6 सार संक्षेप

8.7. पारिभाषिक शब्दावली

8.8 सन्दर्भ ग्रंथ

8.9 स्व मूल्यांकित प्रश्नों के उत्तर

8.10 अभ्यास प्रश्न

8.1 प्रस्तावना

19 वीं शताब्दी के अंतिम दशक तक भारत में उल्लेखनीय राजनीतिक चेतना का प्रसार हो चुका था। भारतीयों की बढ़ती हुई राजनीतिक महत्वाकांक्षाओं की तुलना में ब्रिटिश सरकार की सुधार की गति अत्यन्त धीमी थी। स्वाभाविक रूप से इस भारतीयों में असन्तोष की भावना बढ़ी और इसके साथ ही सरकार ने अपना सुधारवादी मुखौटा उतारकर राजनीतिक दमन की नीति अपनाना प्रारम्भ कर दिया। भारतीय राजनीतिक नेताओं द्वारा सरकार की नीतियों की आलोचना तथा अपनी मांगों को निर्भीकतापूर्वक सरकार के समक्ष रखे जाने के विषय में आप पिछली इकाइयों में जान चुके हैं। भारत में लोकतान्त्रिक प्रणाली स्थापित किए जाने का विरोधी लॉर्ड कर्ज़न जब 1899 में भारत का गवर्नर जनरल बनकर आया तो उसने बंगाल में बढ़ती हुई राजनीतिक चेतना का दमन करने तथा साम्प्रदायिक विघटन के उद्देश्य से 1905 में बंगाल विभाजन का निर्णय लिया।

इस इकाई में आपको बताया जाएगा कि बंगाल विभाजन के विरोध में स्वदेशी आन्दोलन तथा क्रान्तिकारी आतंकवाद की गतिविधियों ने किस प्रकार सरकार को अपना दुर्भाग्यपूर्ण निर्णय बदलने के लिए बाध्य किया।

8.2 .इकाई के उद्देश्य

इस इकाई में लॉर्ड कर्ज़न के शासनकाल में बंगाल विभाजन के निर्णय की पृष्ठभूमि तथा उसके कार्यान्वयन से आपको परिचित कराया जाएगा। कर्ज़न तथा ब्रिटिश सरकार ने किस प्रकार षडयन्त्र कर बंगाल में बढ़ती हुई राजनीतिक चेतना को तोड़ने तथा साम्प्रदायिक वैमनस्य फैलाने के लिए बंगाल विभाजन का निर्णय लिया था, इसकी जानकारी भी आपको दी जाएगी। बांल विभाजन के विरोध में स्वदेशी आन्दोलन के रूप में पहली बार अखिल भारतीय राजनीतिक आन्दोलन के विकास की जानकारी भी इस इकाई में दी जाएगी।

स्वदेशी आन्दोलन के निषेधात्मक तथा सकारात्मक दोनों ही पक्षों से आपको अवगत कराया जाएगा तथा विभाजन के विरोध में हुई क्रान्तिकारी गतिविधियों की चर्चा भी की जाएगी। इस इकाई को पढ़ने के बाद आप जानेंगेः

- बंगाल विभाजन के निर्णय के सरकारी स्पष्टीकरण के पीछे छिपे हुए षडयन्त्र के विषय में।
- बंगाल विभाजन के विरोध में की गई क्रान्तिकारी गतिविधियां।
- बंगाल विभाजन के विरोध में किए गए स्वदेशी आन्दोलन का निषेधात्मक तथा सकारात्मक पक्ष।
- भारतीय राष्ट्रीय आन्दोलन में स्वदेशी आन्दोलन का महत्व।

8.3 बंगाल विभाजन की योजना तथा उसका निर्णय

8.3.1 बंगाल विभाजन का निर्णय तथा उसके पीछे अंग्रेज़ों की साज़िश

बंगाल प्रान्त देश का सबसे बड़ा प्रान्त था। 1864 में इससे सिलहट तथा आसाम
को अलग करने पर विचार किया गया था तथा 1896–97 में आसाम के चीफ़ कमिश्नर विलियम वार्ड ने चिटगांव कमिश्नरी, ढाका तथा मैमनसिंह को आसाम में मिलाने का सुझाव दिया था। बंगाल के लेफ़्टिनेन्ट गवर्नर एन्ड्रू फ़्रेज़र ने मार्च 1903 में देश के क्षेत्रीय विभाजन का एक प्रस्ताव भेजा था जिसे गवर्नर जनरल लॉर्ड कर्ज़न ने जून, 1903 में स्वीकार कर लिया था। दिसम्बर 1903 में गृह सचिव एच0 एच0 रिज़ले ने अपने पत्र में बंगाल प्रान्त के बटवारे का समर्थन किया था। लॉर्ड कर्ज़न,एन्ड्रू फ्रेज़र तथा रिज़ले ने मिलकर बंगाल विभाजन की योजना तैयार की तथा बंगाल में से पूर्वी बंगाल और आसाम को अलग कर एक नया प्रान्त बनाने का निर्णय लिया। इस प्रान्त में चिटगांव, ढाका, राजशाही, त्रिपुरा, माल्दा तथा आसाम सम्मिलित थे। सात करोड़ अस्सी लाख आबादी वाले बंगाल में से एक करोड़ दस लाख आबादी वाला पूर्वी बंगाल तथा आसाम अलग कर उसे एक नया प्रान्त बना दिया गया, इसकी राजधानी ढाका बनाई गई। सरकार ने यह दावा किया कि वह प्रशासनिक सक्षमता बढ़ाने की दृष्टि से बंगाल विभाजन का निर्णय ले रही है परन्तु वास्तविकता कुछ और थी। अविभाजित बंगाल में आसाम, उड़ीसा तथा बिहार सम्मिलित थे। इन क्षेत्रों की बोलियां भी बंगाल के निवासियों से भिन्न थीं। इन क्षेत्रों को बंगाल से अलग कर प्रशासनिक क्षमता को बढ़ाया जा सकता था किन्तु बंगाल प्रान्त से बिहार तथा उड़ीसा को अलग करने के प्रस्ताव

को कर्ज़न ने स्वीकार नहीं किया। उसने भारत सचिव को भेजे तार में इस प्रस्ताव का विरोध करते हुए अंकित किया कि बंगाल से गैर–बंगाली क्षेत्र को अलग करने से तो बंगालियों की शक्ति और बढ़ जाती और यही अंग्रेज़ नहीं चाहते थे। कर्ज़न इससे पहले बरार के मामले में ऐसा कर चुका था। 1902 में निज़ाम से प्राप्त मराठी भाषी क्षेत्र बरार को बम्बई प्रेसीडैन्सी में न मिलाकर उसे मध्य प्रान्त में मिलाया गया क्योंकि बम्बई प्रेसीडेन्सी में इस क्षेत्र को मिलाने से शिवाजी के हिन्द स्वराज की अवधारणा को बल मिल सकता था।

लॉर्ड कर्ज़न को तथाकथित 'अपवित्र चीज़' कांग्रेस द्वारा सरकार की कटु आलोचना स्वीकार्य नहीं थी। उसकी दृष्टि में भारतीयों की नियति तथा उनका कर्तव्य शासित होना था और जो भारतीय इसके विपरीत अपने अधिकारों के लिए संघर्ष का रास्ता अपनाते थे वो उसके अनुसार मर्यादा की लक्ष्मण रेखा को पार करने की भूल करते थे। कर्ज़न फूट डाल कर शासन करने की नीति में विश्वास करता था। बंगाल में राजनीतिक चेतना का प्रसार–प्रचार करने में बंगाली भद्रलोक की अहम भूमिका थी। बंगाली मुसलमान, बंगाली हिन्दुओं की तुलना में पिछड़ी दशा में थे और उनमें सामान्यतः राजनीतिक जागृति भी कम थी। कर्ज़न इस स्थिति का लाभ उठाना चाहता था। वह मुसलमानों को कुछ सुविधाएं देकर उन्हें अपनी ओर मिलाना चाहता था। बंगाल विभाजन का मुख्य उद्देश्य पूर्वी बंगाल में एक मुस्लिम बहुल राज्य बनाकर हिन्दू–मुस्लिम सम्बन्धों में दरार डालना था। फ़रवरी, 1904 में ढाका में दिए गए अपने भाषण में कर्ज़न ने पूर्वी बंगाल के मुसलमानों को एकबद्ध होने का एक ऐसा अवसर प्रदान करने का प्रस्ताव रखा था जो कि उन्हें मुसलमान बादशाहों तथा नवाबों के समय के बाद से प्राप्त नहीं हुआ था।

बंगाल की बढ़ती हुई राजनीतिक चेतना तथा देशवासियों में विकसित होती हुई एकता की भावना अंग्रेज़ों की फूट डाल कर शासन करने की नीति के विरुद्ध थी। गृह सचिव एच0 एच0 रिज़ले ने फ़रवरी तथा दिसम्बर 1904 में अपने द्वारा लिखी टिप्पणियों में यह स्वीकार किया था कि –

एकीकृत बंगाल एक शक्ति है तथा विभाजित बंगाल का मतलब है विभाजित शक्ति। हमारा मुख्य उद्देश्य अपने विरोधियों की शक्ति को विभाजित कर उसको कमज़ोर करना है।

लॉर्ड कर्ज़न के शासनकाल के प्रारम्भ से ही बंगाल में दमनकारी निर्णय लिए जाने लगे थे। अपने शासनकाल के प्रथम वर्ष ही में बंगाल में बढ़ती हुई राजनीतिक चेतना से सशंकित लॉर्ड कर्ज़न ने 1899 में कलकत्ता नगर महापालिका में सरकारी नियन्त्रण बढ़ाने के उद्देश्य से उसके निर्वाचित सदस्यों की संख्या कम कर दी। कलकत्ते के यूरोपियन व्यापारिक समुदाय के हितों की रक्षा के लिए 1904 के यूनीवर्सिटी एक्ट द्वारा उसने कलकत्ता विश्वविद्यालय के स्वायत्त शासित ढांचे के बदल कर उसके सेनेट में सरकारी नियन्त्रण बढ़ा दिया। 1905 में कलकत्ता विश्वविद्यालय के दीक्षान्त समारोह में दिया गया उसका भाषण भारतीयों के प्रति उसकी घृणा और उनको नीचा दिखाने की उसकी प्रवृत्ति का खुलासा करता है–

मेरे विचार से ऐसा कहना कि सत्य का सर्वोच्च आदर्श काफ़ी हद तक पाश्चात्य अवधारणा है, यह न तो न तो कोई झूठा दावा है और न ही घमण्ड भरा।

16 अक्टूबर, 1905 को बंगाल का विभाजन कर दिया गया। बंगाल विभाजन के निर्णय को भारतीयों ने अपना राष्ट्रीय अपमान माना। कर्ज़न को बहुत आश्चर्य हुआ जब इस निर्णय का मुसलमानों ने भी विरोध किया। उसने स्पष्ट शब्दों में इस विभाजन से मुसलमानों को होने वाले लाभों को गिनाया और उन्हें सलाह दी कि वो इसके विरोध में हो रहे आन्दोलन से खुद को दूर रखें।

8.3.2 बंगाल विभाजन के परिणाम स्वरूप हिन्दू–मुस्लिम सम्बन्धों में दरार

बंगाल के विभाजन का निर्णय साम्प्रदायिक विघटन के उद्देश्य से किया गया था। पूर्वी बंगाल तथा आसाम के लेफ़्टिनेन्ट गवर्नर फुलर ने अपनी दो पत्नियों – हिन्दू तथा मुसलमान में, दूसरी बीबी अर्थात् मुसलमान को अपनी चहेती बीबी बताया था। मुस्लिम अलगावादी तत्वों को बढ़ावा देने की सरकारी नीति के दुष्परिणाम सामने आने लगे थे। मुसलमान स्वदेशी आन्दोलन में सम्मिलित हुए। दीन मुहम्मद, दीदार बक्श तथा लियाक़त हुसेन जैसे अनेक स्वदेशी मुसलमान आन्दोलनकारियों पर मुकदमे चलाए गए। अंग्रेज़ों ने निम्न वर्ग के मुस्लिम अराजकतावादी तत्वों

को प्रोत्साहन देकर उन्हें आन्दोलनकारियों के विरुद्ध हिंसात्मक कार्यवाही के लिए तैयार किया। अंग्रेज़ों ने प्रचार किया कि पूर्वी बंगाल तथा आसाम के नए गठित मुस्लिम बहुमत के प्रान्त में मुसलमानों को रोज़गार के बेहतर अवसर मिलेंगे। आमतौर पर उच्च वर्ग तथा मध्यम वर्ग के मुसलमान इस आन्दोलन से अलग रहे। बंगाल विभाजन के विरोधी आन्दोलन का नेतृत्व प्रायः उग्रवादी कर रहे थे। ढाका के नवाब सलीमुल्ला को उग्रवादियों द्वारा हिन्दू उत्सवों के आयोजन स्वीकार्य नहीं थे। उन्होंने बंगाल विभाजन का स्वागत किया क्योंकि उन्हें इससे मुसलमानों के हितों की रक्षा की आशा थी। सलीमुल्ला स्वदेशी आन्दोलन के विरोधियों में सबसे अग्रणी थे। सन् 1906 में मुस्लिम राजनीतिक आकांक्षाओं की परिणति सर आगा खां के नेतृत्व में मुस्लिम शिष्ट मण्डल का शिमला में तत्कालीन गवर्नर जनरल लॉर्ड मिन्टो से मिलकर अपनी मांगे रखना था। मिन्टो ने कर्ज़न की राह पर चलते हुए मुसलमानों की अपनी अलग पहचान बनाने की कोशिश का स्वागत किया। उसने मुसलमानों के राजनीतिक, आर्थिक तथा शैक्षिक अधिकारों को महत्व दिया तथा उन्हें आश्वासन दिया कि उनके पूर्व में गौरवशाली इतिहास को ध्यान में रखकर शासन में उनकी महत्ता निर्धारित की जाएगी। इन्हीं परिस्थितियों में ढाका के नवाब सलीमुल्ला के प्रयासों से ढाका में ही 1906 में मुस्लिम लीग की स्थापना हुई जिसने कि भारत के विभाजन में अहम भूमिका निभाई। साम्प्रदायिकता को बढ़ाने तथा हिन्दू–मुस्लिम सम्बन्धों के बीच पड़ी दरार को और चौड़ा करने के लिए 1909 के इण्डियन काउंसिल्स एक्ट में मुसलमानों को विधान परिषदों में साम्प्रदायिक प्रतिनिधित्व प्रदान किया गया अर्थात् मुसलमानों के लिए सुरक्षित सीटों के लिए खड़े मुस्लिम प्रत्याशियों को चुनने का अधिकार केवल मुस्लिम मतदाताओं को दे दिया गया। मुस्लिम समुदाय ने इस निर्णय का स्वागत किया और गैर–मुस्लिम समुदाय ने इसका विरोध। इस प्रकार 1905 के बंगाल विभाजन से हिन्दू–मुस्लिम सम्बन्धों में जो दरार डाली गई वह अब और चौड़ी कर दी गई।

स्व मूल्यांकन हेतु प्रश्न

निम्नलिखित विषयों पर संक्षिप्त टिप्पणी लिखिए:

1. (क) बंगाल विभाजन के निर्णय के पक्ष में सरकार द्वारा प्रस्तुत तर्क।

(ख) हिन्दू–मुस्लिम सम्बन्धों में दरार डालने में बंगाल विभाजन की भूमिका।

2. नीचे लिखे प्रश्नों के उत्तर दीजिए।

(i) बंगाल विभाजन कब लागू हुआ?

(ii) किस भारत सचिव ने बंगाल विभाजन के निर्णय को अन्यायपूर्ण माना था?

8.3.3 बंगाल विभाजन के अन्यायपूर्ण निर्णय पर भारतीय तथा ब्रिटिश प्रतिक्रिया

बंगाली भद्रलोक को अंग्रेज़ों की दमनकारी नीतियां और उनका जातीय अहंकार सहन नहीं होता था। पाश्चात्य देश अपनी सर्वोच्चता का दावा करते थे। अपने को अजेय मानने वाले यूरोपियन देशों के दम्भ को पहला झटका इटली पर अबीसीनिया की विजय ने दिया था। बोअर युद्ध में अंग्रेज़ों की असफलता और 1904 के युद्ध में एशियायी शक्ति जापान की यूरोपियन शक्ति रूस पर विजय तथा आप्रवासन सम्बन्धी कानून के विरोध में चीन के द्वारा अमरीकी सामान का बहिष्कार किए जाने का बंगाली भद्रलोक ने स्वागत किया था।

दिसम्बर, 1903 में बंगाल विभाजन की योजना के प्रकाशित होते ही भारतीय प्रेस ने इसका विरोध करना प्रारम्भ कर दिया। *आनन्द बाज़ार पत्रिका, चारु मिहिर, संजीवनी, ढाका गज़ट* आदि पत्रों ने इस योजना के विरुद्ध अभियान छेड़ दिया। बैंगाल नेशनल चैम्बर ऑफ़ कॉमर्स तथा सेन्ट्रल नेशनल मोहम्मडन एसोसियेशन ऑफ़ कैलकटा ने यह स्पष्ट किया कि सभ्यता, भाषा, आचार–विचार, भू–राजस्व प्रशासन आदि की दृष्टि से पूर्वी बंगाल तथा पश्चिमी बंगाल दोनों एक दूसरे के करीब हैं और यदि विभाजन करना है

तोबंगाल से भिन्न बिहार व उड़ीसा को उससे अलग कर दिया जाए। बंगाल विभाजन के निर्णय का इंग्लैण्ड में विरोध हुआ। *लन्दन टाइम्स* तथा *मैनचेस्टर गार्जियन* ने इस निर्णय को बंगालवासियों के लिए अन्यायपूर्ण बताया तथा इसके विरुद्ध आन्दोलन को न्यायसंगत ठहराया। दिसम्बर, 1905 में भारत सचिव का पद सम्भालने के बाद जॉन मॉर्ले ने पार्लियामेन्ट में यह स्वीकार किया कि यह निर्णय जन–भावनाओं के सर्वथा विरुद्ध था। भारत के

भूतपूर्व सेनाध्यक्ष लॉर्ड किचनर ने भी बंगाल विभाजन के निर्णय की भर्त्सना की किन्तु इस दुर्भाग्यपूर्ण एवं अन्यायपूर्ण निर्णय को वापस नहीं लिया गया।

बंगाल विभाजन के विरोधियों ने यह प्रयास किया कि सभी वर्ग उनके आन्दोलन में सम्मिलित हों तथा प्रेस का उन्हें पूर्ण सहयोग मिले। बंगाल विभाजन रद्द कराने के उद्देश्य से स्थानीय, प्रान्तीय राष्ट्रीय तथा गृह सरकार को याचिकाएं भेजी गईं तथा इस निर्णय के विरोध में सैकड़ों जन–सभाएं की गईं। समाचार पत्रों में प्रकाशित लेखों में विभाजन से होने वाली कठिनाइयों को दर्शाया गया। यह बताया गया कि किसी नए प्रान्त का गठन मुख्यतः भौगोलिक, भाषागत, आर्थिक, ऐतिहासिक तथा सांस्कृतिक आधार पर किया जाता है किन्तु इस निर्णय का ऐसा कोई आधार नहीं था। इस अन्यायपूर्ण निर्णय के विरुद्ध ब्रिटिश जनता से भी सहयोग प्राप्त करने का प्रयास किया गया। परन्तु इन प्रयासों का सरकार पर कोई असर नहीं हुआ। जुलाई 1905 तक बंगाल विभाजन की योजना का शान्तिपूर्ण तरीके से विरोध किया गया। प्रेस के माध्यम से इस निर्णय के विरुद्ध प्रचार, जनसभाओं के आयोजन तथा याचिकाओं के माध्यम से इसका विरोध किया गया। कलकत्ता के टाउन हॉल में इसके विरोध में मार्च, 1904 तथा जनवरी, 1905 में सभाएं हुईं। जब इन तरीकों से सरकार अपना इरादा बदलने को तैयार नहीं हुई तो फिर प्रतिरोध का रास्ता अपनाया गया। कृष्णकुमार मित्र के सप्ताहिक पत्र *संजीवनी* के 13 जुलाई, 1905 के अंक में ब्रिटिश सामान के बहिष्कार का सुझाव दिया गया। रबीन्द्रनाथ टैगोर के सुझाव पर 16 अक्टूबर, 1905 अर्थात् विभाजन के दिन भ्रातृत्व के प्रतीक के रूप में रक्षा बन्धन मनाया गया और इस दिन को शोक–दिवस के रूप में मनाया गया, बाज़ार बन्द कर दिए गए तथा जुलूस निकाले गए। छात्र आन्दोलनकारियों को 22 अक्टूबर के कार्लाइल सर्कुलर के द्वारा रोकने का प्रयास किया गया। आन्दोलनकारी छात्रों की छात्रवृतियां तथा विभाजन करने वालों के साथ सहानुभूति रखने वाली शैक्षिक संस्थाओं के अनुदान व उनकी मान्यता समाप्त करने की धमकी दी गई। स्वदेशी तथा बॉयकाट आन्दोलन में भाग लेने वालों को सरकारी कॉलेजों और नौकरियों से निकाला गया तथा पुलिस द्वारा उन्हें पीटा भी गया।

विभाजन के निर्णय के विरोध में पूर्वी तथा पश्चिमी बंगाल के हिन्दू, मुसलमान, ईसाई, अमीर, गरीब सभी ने रक्षा बन्धन मनाया। रबीन्द्रनाथ ने लिखा –

किसी शासक की तलवार, चाहे वह कितनी भी शक्तिशाली क्यों न हो, एक ही जाति में विधाता द्वारा प्रदत्त एकता के टुकड़े नहीं कर सकती है।

आन्दोलनकारियों ने अब नरमपंथियों की याचक वाली प्रवृत्ति का परित्याग कर स्वावलम्बन की नीति पर ज़ोर दिया। बिपिन चन्द्र पाल के पत्र *न्यू इण्डिया*, अरबिन्दो घोष के पत्र *बन्दे मातरम्* ब्रह्म बांधव उपाध्याय के पत्र *सांध्य* तथा बारीन्द्रनाथ घोष के पत्र *जुगान्तर* में बंगाल विभाजन को रद्द कराने में शान्तिपूर्ण आन्दोलन तथा केवल सृजनात्मक कार्यक्रमों को अपर्याप्त बताया। *सांध्य* में सरकारी कर्मचारियों का सामाजिक बहिष्कार करने का आवाहन किया।

8.4 क्रान्तिकारी आतंकवाद

प्रमोथ मित्तर, जतीन्द्रनाथ बनर्जी तथा बारीन्द्रकुमार घोष ने 1902 में मिदनापुर तथा कलकत्ते में क्रान्तिकारी संस्था अनुशीलन समिति की स्थापना की थी। बारीन्द्रकुमार घोष तथा भूपेन्द्रनाथ दत्त ने अप्रैल, 1906 में *जुगान्तर* पत्र का प्रकाशन प्रारम्भ किया। पूर्वी बंगाल के दमनकारी लेफ़्टिनेन्ट गवर्नर फुलर को मारने का असफल प्रयास किया गया। *जुगान्तर* के मार्च, 1907 तथा अगस्त 1907 के अंकों में अपने लक्ष्यों को प्राप्त करने के लिए शान्तिपूर्ण रणनीति को निरर्थक मानते हुए, उनकी प्राप्ति हेतु अपना खून बहाना आवश्यक बताया गया। हेमचन्द्र कानूनगो सैनिक प्रशिक्षण के लिए पेरिस गए, उन्होंने लौटकर मानिकतल्ला में एक धार्मिक विद्यालय में बम बनाने का गुप्त कारखाना खोला।

30 अप्रैल, 1908 को खुदीराम बोस तथा प्रफुल्ल चाकी ने अत्याचारी न्यायधीश किंग्सफ़ोर्ड की हत्या का असफल प्रयास किया। पुनीत दास की ढाका अनुशीलन समिति ने 2 जून को बराह में डकैती डाली। अत्याचारी अधिकारियों तथा गद्दार मुखबिरों पर प्रहार करना क्रान्तिकारियों की रणनीति में शामिल था।

8.5 स्वदेशी आन्दोलन

8.5.1 बहिष्कार

सरकार बंगाल विभाजन के निर्णय के विरुद्ध शान्तिपूर्ण विरोध के दबाव में अपना इरादा बदलने को तैयार नहीं हुई तो फिर प्रतिरोध का रास्ता अपनाया गया। कृष्णकुमार मित्र के सप्ताहिक पत्र संजीवनी के 13 जुलाई, 1905 के अंक में ब्रिटिश सामान के बहिष्कार का सुझाव दिया गया। 16 अक्टूबर, 1905 अर्थात् विभाजन के दिन को शोक–दिवस के रूप में मनाया गया, बाज़ार बन्द कर दिए गए तथा जुलूस निकाले गए। बिपिन चन्द्र पाल के पत्र न्यू इण्डिया, अरबिन्दो घोष के पत्र बन्दे मातरम्, ब्रह्मबांधव उपाध्याय के पत्र सांध्य तथा बारीन्द्र कुमार घोष के पत्र जुगान्तर में बंगाल विभाजन को रद्द कराने में शान्तिपूर्ण आन्दोलन तथा केवल सृजनात्मक कार्यक्रमों को अपर्याप्त बताया गया। सांध्य में सरकारी कर्मचारियों का सामाजिक बहिष्कार करने का आवाहन किया गया।

बॉयकॉट अर्थात् बहिष्कार को राजनीतिक हथियार के रूप में प्रयुक्त करने की रणनीति सर्वप्रथम आयरलैण्ड के होमरूल आन्दोलन में अपनाई गई थी। बंगाल विभाजन के विरोध में जब पहली बार भारतीयों ने किसी अप्रिय निर्णय के विरुद्ध सक्रिय विरोध करने का निश्चय किया तो उन्होंने इसी रणनीति का प्रयोग किया। भारतीय जानते थे कि इंग्लैण्ड की सरकार तथा भारत की सरकार इग्लैण्ड के उद्योगपतियों तथा व्यापारियों के इशारे पर चलती है और यदि उन्हें भारतीयों के निर्णय से किसी प्रकार का नुक्सान उठाना पड़े तो वो भारत की सरकार पर उस निर्णय को बदलने के लिए दबाव डाल सकते हैं। इसलिए भारत में ब्रिटिश औपनिवेशिक शासन के आर्थिक आधार को कमज़ोर करने के उद्देश्य से बॉयकाट अर्थात बहिष्कार में भारत में विदेशी उत्पादों के उपयोग पर तथा भारत से विदेशों में कच्चे माल के निर्यात पर प्रतिबन्ध लगाया गया। सुरेन्द्रनाथ बनर्जी ने बॉयकॉट अर्थात् ब्रिटिश सामान के बहिष्कार को आन्दोलनकारियों का अन्तिम अस्त्र माना। अरबिन्दो घोष ने बंगाल विभाजन के विरुद्ध बहिष्कार के निर्णय तथा आन्दोलन के अन्य तरीकों को स्वराज तथा पूर्ण स्वतन्त्रता प्राप्त करने की दिशा में पहला कदम बताया था। आन्दोलनकारियों ने सरकारी शिक्षण संस्थाओं का बहिष्कार करने का निश्चय किया। बॉयकाट आन्दोलन के अंतर्गत सरकारी स्कूलों, अदालतों, कार्यालयों आदि का बहिष्कार किया गया परन्तु नरमपंथियों ने बॉयकॉट के अन्तर्गत 16 नवम्बर, 1905 में शिक्षा संस्थानों के बहिष्कार के निर्णय को रद्द करा दिया। लोकमान्य तिलक ने बंगाल विभाजन के अन्यायपूर्ण निर्णय को केवल बंगाल नहीं अपितु समस्त भारत के लिए दुर्भायपूर्ण बताया। उन्होंने अपने सहयोगियों के साथ बॉम्बे प्रेसीडेन्सी में अनेक स्थानों पर बहिष्कार के समर्थन में जन–सभाओं का आयोजन किया। कांग्रेस ने 1905 के अधिवेशन में ब्रिटिश कपड़ों के बहिष्कार हेतु प्रस्ताव पारित किया गया। लोकमान्य तिलक ने बहिष्कार आन्दोलन को महाराष्ट्र में तथा लाला लाजपत राय ने इसे पंजाब तक फैला दिया।

ज़मींदारों ने अपनी–अपनी ज़मींदारी में किसानों को विदेशी कपड़ों का बहिष्कार करने के लिए कहा। 'लैण्डलॉर्ड्स एसोसियेशन' ने मारवाड़ी व्यापारियों को प्रेरित किया कि वो मैनचेस्टर के कपड़े के व्यापार से हाथ खींच लें। शान्तिपुर तथा नवद्वीप के पुजारियों ने उन लोगों के लिए पूजा करने से मना कर दिया जो विदेशी वस्त्र धारण किए हुए थे। डॉक्टर, वकील, अध्यापक, मज़दूर, नाई, धोबी, साधु, सन्यासी, सभी ने बहिष्कार आन्दोलन को सफल बनाने में अपना योगदान दिया। विवाहोत्सवों में विदेशी कपड़े का बहिष्कार किया गया। विदेशी कपड़ों की होली जलाकर आन्दोलनकारियों ने अपना आक्रोश प्रकट किया। विदेशी वस्तुओं की दुकानों के सामने आन्दोलनकारियों ने धरना देकर उनके व्यापार में बाधा पहुंचाने का प्रयास किया। बॉयकॉट प्रारम्भ में काफ़ी सफल रहा। कलकत्ता के कस्टम कलैक्टर ने सितम्बर, 1906 में पिछले साल की तुलना में आयातित सूती कपड़े में 22 प्रतिशत, सूती धागे में 44 प्रतिशत, नमक में 11 प्रतिशत, सिगरेटों में 55 प्रतिशत तथा जूतों में 68 प्रतिशत की कमी की बात स्वीकार की।

सरकार ने बहिष्कार को राजद्रोह, आंग्ल–विरोधी तथा मुस्लिम विरोधी माना अतः उसके दमन के लिए उसने अपनी पूरी शक्ति का प्रयोग किया। जनसभाओं तथा प्रचार कार्यक्रम पर प्रतिबन्ध लगा दिया गया। वन्दे मातरम् का नारा लगाने पर भी प्रतिबन्ध लगा दिया गया। आन्दोलनकारियों के दमन के लिए बारिसाल में गोरखा सेना बुलाई गई। बारिसाल में ही प्रान्तीय सम्मेलन को भंग करने के लिए उसमें भाग लेने वालों पर लाठियां बरसाई गईं।बहिष्कार की भावना का कारखानों पर भी प्रभाव पड़ा। अंग्रेज़ मिल मालिकों के प्रतिष्ठानों में श्रमिकों तथा अन्य

कर्मचारियों ने हड़तालें कीं तथा ट्रेड यूनियनन्स का गठन किया। कपड़ा मिलों छापाखाना, जूट मिलों तथा रेलवेज़ में भी ट्रेड यूनियनन्स का गठन किया गया।

बहिष्कार ने सरकार की कठिनाइयां बढ़ा दीं और ब्रिटिश उद्योगपतियों तथा व्यापारियों ने भारत सरकार पर इस निर्णय को रद्द करने के लिए दबाव डालना शुरू कर दिया।

8.5.2स्वदेशी का सकारात्मक रूप

8.5.3 आर्थिक आत्मनिर्भरता

पिछले डेड़ सौ वर्षों के अंग्रेज़ी शासन में भारत अपनी आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए काफ़ी हद तक आयातित वस्तुओं पर निर्भर करने लगा था अतः विदेशी वस्तुओं का बहिष्कार कार्यक्रम सफल बनाने के लिए यह आवश्यक था कि भारत में उन वस्तुओं का उत्पादन बढ़े। भारतीयों के लिए मन, वचन और कर्म से स्वदेशी को जीवन में अपनाना उनका धर्म बन गया। स्वदेशी के अंतर्गत भारत में बनी वस्तुओं के प्रयोग का प्रण लिया गया। चरखे को भारत की आर्थिक आत्मनिर्भरता का प्रतीक बनाया गया। स्वदेशी वस्तुओं की बिक्री के लिए स्वदेशी स्टोर खोले गए तथा स्वदेशी मेलों का आयोजन किया गया। इलाहाबाद से आचार्य महावीर प्रसाद द्विवेदी के सम्पादन में प्रकाशित पत्रिका *सरस्वती* के अगस्त, 1905 के अंक में जापान–रूस युद्ध में जापान की विजय का प्रमुख कारण उसका स्वदेश के प्रति प्रेम तथा स्वदेशी के प्रति अनुराग बताया गया था। इलाहाबाद से प्रकाशित *हिन्दी प्रदीप* के अक्टूबर, 1905 के अंक में बालकृष्ण भट्ट ने स्वदेशी आन्दोलन को सफल बनाने के लिए महिलाओं के योगदान की महत्ता पर प्रकाश डाला। उन्होंने कथा वाचकों और पण्डितों से यह अपेक्षा की कि वो अपनी कथाओं और प्रवचनों में स्त्रियों को स्वदेशी व्रत धारण करने का उपदेश दें। इस पत्र में भारतीयों की परमुखकातरता पर खेद प्रकट करते हुए टिप्पणी की गई कि एक अन्न को छोड़कर जीवनोपयोगी सभी वस्तुएं जैसे कागज़, कलम, स्याही, कपड़ा, डोरा, सुई, दियासलाई, चाकू, कैंची, रंदा, रेती आदि विलायत से मंगाने की प्रवृत्ति ने देश को पूर्णतः परावलम्बी बना दिया था। देशप्रेम से ओतप्रोत जागरूक भारतीय जानते थे कि आर्थिक आत्म–निर्भरता प्राप्त किए बिना न तो भारत का सामाजिक–सांस्कृतिक पुनरुत्थान हो सकता है और न ही स्वराज के लक्ष्य को प्राप्त किया जा सकता है।

स्वदेशी आन्दोलन ने कुटीर उद्योग के पुनरुत्थान को बढ़ावा दिया। हैण्डलूम तथा रेशम उद्योग को पुनर्जीवित किया गया। आधुनिक स्वदेशी उद्योग के लिए युवाओं को तकनीकी शिक्षा प्राप्त करने के लिए विदेश भेजे जाने की वकालत तो बहुत पहले से की जा रही थी। बंगलक्ष्मी कॉटन मिल्स, मोहिनी मिल्स, बंगाल केमिकल्स, स्वदेशी स्टीम नेविगेशन कम्पनी (अक्टूबर, 1906 में ट्यूटीकोरिन में), स्वदेशी बैंक तथा स्वदेशी बीमा कम्पनियों की स्थापना की गई। अहमदाबाद और कानपुर में कपड़ा उद्योग को विकसित किया गया।

जमशेदजी टाटा का जमशेदपुर में स्थापित इस्पात का कारखाना भारत का गौरव बन गया। चीनी मिटटी के बर्तन, साबुन, माचिस तथा सिगरेटों के उत्पादन के लिए भी स्वदेशी प्रतिष्ठान खोले गए। मैनचेस्टर और लंकाशायर के महीन कपड़ों के स्थान पर भारतीय हथकरघे के बने मोटे कपड़ों को पहनने में देशवासी गौरव का अनुभव करने लगे।

आर्थिक आधार की दुर्बलताओं के कारण स्वदेशी आन्दोलन भारत की अर्थ–व्यवस्था पर अंग्रेज़ी उद्योग एवं व्यापार की पकड़ को कमज़ोर नहीं कर पाया परन्तु इसने देश को आत्मनिर्भरता को जो पाठ पढ़ाया उसको ही फिर व्यापक स्तर पर महात्मा गांधी ने दोहराया था।

8.5.4 ग्राम स्वराज्य

स्वदेशी आन्दोलन से पूर्व ही 1904 में रवीन्द्रनाथ टैगोर ने *स्वदेशी समाज* शीर्षक अपने भाषण में गांवों में सृजनात्मक कार्यों की एक योजना प्रस्तुत की थी जिसमें गांवों की स्वायत्तता, तथा उनकी आत्मनिर्भरता को पुनर्स्थापित करने के लिए कुटीर उद्योगों के पुनरुत्थान पर बल दिया दिया गया था। रवीन्द्रनाथ टैगोर ने इस अभियान को आत्मशक्ति का नाम दिया। इस आन्दोलन में स्वदेशी न्याय–व्यवस्था का भी पोषण किया गया। अश्विनीकुमार दत्त की स्वदेश बांधव समिति ने बारिसाल के गांवों में एक वर्ष के भीतर में 89 पंचायतों द्वारा 523 मामले निबटाए थे। अप्रैल, 1907 तक 1000 ग्राम समितियां इस कार्य में जुटी थीं। महात्मा गांधी ने ग्राम स्वराज्य

की स्थापना की प्रेरणा स्वदेशी आन्दोलन से ही प्राप्त की थी।

8.5.5 राष्ट्रीय शिक्षा

सरकारी शिक्षा संस्थानों में महंगी अंग्रेज़ी शिक्षा पद्धति से विद्यार्थियों को मानसिक रूप से गुलाम बनाया जाता था और अपनी संस्कृति तथा अपने संस्कारों के प्रति घृणा करना सिखाया जाता था। प्रसिद्ध शायर अकबर इलाहाबादी ने युवा पीढ़ी को पथभ्रष्ट करने वाली इस शिक्षापद्धति के विषय में कहा था –

हम ऐसी कुल किताबें क़ाबिले ज़ब्ती समझते हैं ।
जिन्हें पढ़कर के बेटे बाप को खब्ती समझते हैं ।।

(हम उन सभी पुस्तकों को प्रतिबन्धित करने योग्य समझते हैं, जिनको कि पढ़कर बच्चे अपने ही पिता को पागल समझने लगते हैं।)

बहिष्कार में सरकारी शिक्षण संस्थाओं का बहिष्कार भी शामिल था परन्तु इसके सृजनात्मक विकल्प को भी खोजना था। स्वदेशी शिक्षा के विकास के लिए राष्ट्रीय शिक्षा संस्थान स्थापित करने के लिए सुबोध मलिक ने 5 नवम्बर, 1905 को एक लाख रुपयों का अनुदान दिया। सतीशचन्द्र मुकर्जी के पत्र *डॉन* ने राष्ट्रीय शिक्षा की महत्ता पर प्रकाश डाला। स्वदेशी आन्दोलन के अन्तर्गत राष्ट्रीय शिक्षा परिषद की स्थापना की गई। 1906 में बैंगाल टैक्निकल इन्सटीट्यूट की स्थापना की गई। 1906 में ही बंगाल नेशनल कॉलेज की स्थापना की गई जिसके प्राचार्य अरबिंदो घोष थे। इस विद्यालय में मानव चरित्र को महत्व दिया गया था और साथ ही आधुनिक तकनीक के प्रयोग को देश के विकास के लिए आवश्यक मानकर उसको अपनाए जाने बल दिया गया था।

राष्ट्रीय शिक्षा कार्यक्रम के अन्तर्गत भारत में भारतीय भाषाओं में प्रशिक्षण देने वाले तकनीकी संस्थानों की स्थापना को महत्व दिया गया। रवीन्द्रनाथ टैगोर के शान्तिनिकेतन में इस पद्धति का प्रचलन किया गया। पश्चिम बंगाल, पूर्वी बंगाल तथा बिहार में राष्ट्रीय पाठशालाओं की स्थापना की गई।

8.5.6 राष्ट्रीय एकता

राष्ट्रीय एकीकरण स्वदेशी आन्दोलन का लक्ष्य था। इस आन्दोलन में हिन्दू–मुस्लिम एकता को सदैव महत्व दिया गया। स्वदेशी आन्दोलन केवल बंगाल तक सीमित नहीं रहा, यह पहला राजनीतिक आन्दोलन था जो किसी क्षेत्र, समुदाय अथवा वर्ग तक सीमित नहीं था। महाराष्ट्र के लोकमान्य तिलक, पंजाब के लाला लाजपत राय, संयुक्त प्रान्त के मदनमोहन मालवीय, दक्षिण भारत के सी0 वाई0 चिन्तामणि आदि सभी देश को एकसूत्र में बांधने का प्रयास कर रहे थे। देश को जोड़ने के लिए हिन्दी को राष्ट्रभाषा तथा देवनागरी को देश–व्यापी लिपि के रूप में प्रतिष्ठित करने के प्रयास किए गए। वन्दे मातरम् गीत आन्दोलन देशवासियों के लिए राष्ट्रगान के रूप में प्रतिष्ठित हो चुका था।

8.5.7 स्वराज्य

लोकमान्य तिलक स्वराज्य को अपना जन्मसिद्ध अधिकार मानते थे किन्तु भारतीयों ने स्वशासन अथवा स्वराज्य के लक्ष्य को प्राप्त करने का एकजुट प्रयास पहली बार स्वदेशी आन्दोलन में ही किया था। इसी आन्दोलन के कारण कांग्रेस ने भी पहली बार स्वराज्य की प्राप्ति को अपना लक्ष्य घोषित किया था। श्रीमती एनीबीसेन्ट तथा लोकमान्य तिलक के होमरूल आन्दोलन तथा महात्मा गांधी के असहयोग आन्दोलन में स्वदेशी आन्दोलन के इस राजनीतिक लक्ष्य को ही प्राप्त करने का प्रयास किया गया था।

8.5.8 बंगाल विभाजन का रद्द किया जाना

देश–व्यापी आन्दोलन के सामने ब्रिटिश सरकार को पहली बार झुकना पड़ा और 1911 में बंगाल विभाजन को रद्द करना पड़ा। भारतीय राष्ट्रीय आन्दोलन की यह पहली महान सफलता थी।

स्वमूल्यांकन हेतु प्रश्न

निम्नलिखित विषयों पर संक्षिप्त टिप्पणी लिखिए:

1. (क) देखिए 8.3.2 ग्राम स्वराज्य तथा 8.3.3 राष्ट्रीय शिक्षा।

(ख) स्वदेशी आन्दोलन के दौरान भारत में आधुनिक उद्योग का विकास।

2. नीचे लिखे प्रश्नों के उत्तर दीजिए।

(i) खुदीराम बोस ने किस अंग्रेज़ अधिकारी की हत्या करने का प्रयास किया था?

(ii) बंगाल विभाजन को कब रद्द किया गया?

8.6 सार संक्षेप

मध्यकालीन बंगाल में जैसोर के षासक महाराज प्रतापादित्य तथा बर्दवान के शासक राजा सीताराम राय ने हिन्दुओं के राजनीतिक पुनरुत्थान का प्रयास किया था। राजनारायण बोस के 'पैट्रिएट्स एसोसियेशन' तथा 'सोसायटी फ़ॉर दि प्रमोशन ऑफ नेशनल फ़ीलिंग अमंग दि एजुकेटेड नेटिव्ज़ ऑफ बैंगाल' एवं नबगोपाल मित्र के 'हिन्दू मेला' ने भारतीयों में आत्मनिर्भरता की भावना, राष्ट्रीय एकता, राष्ट्रीय साहित्य, भारतीय कला, संस्कृति, कुटीर उद्योग तथा स्वास्थ्य निर्माण के विकास का प्रयास किया। बंकिम चन्द्र का उपन्यास आनन्द मठ विभिन्न धार्मिक, देशभक्तिपूर्ण एवं राष्ट्रीय गतिविधियों का प्रेरणा स्रोत बना। इसका 'वन्देमातरम् गीत' करोड़ों देशवासियों में देशभक्ति की भावना का संचार करने में सफल रहा।

लॉर्ड कर्ज़न, एन्ड्रू फ्रेज़र तथा रिज़ले ने मिलकर बंगाल विभाजन की योजना तैयार की तथा प्रशासनिक क्षमता बढ़ाने के बहाने बंगाल में से पूर्वी बंगाल और आसाम को अलग कर एक नया प्रान्त बनाने का निर्णय लिया। किन्तु इसका मुख्य उद्देश्य पूर्वी बंगाल में एक मुस्लिम बहुल राज्य बनाकर हिन्दू–मुस्लिम सम्बन्धों में दरार डालना था।

भारतीय पत्रों, व्यापारिक संगठनों तथा मुसलमानों सहित सभी समुदायों ने इस योजना के विरुद्ध अभियान छेड़ दिया। आन्दोलनकारियों ने अब शान्तिपूर्ण आन्दोलन तथा केवल सृजनात्मक कार्यक्रमों को अपर्याप्त बताया। आयरलैण्ड के होमरूल आन्दोलन में अपनाई गई बॉयकॉट अर्थात् बहिष्कार की नीति को राजनीतिक हथियार के रूप में प्रयुक्त करने की रणनीति स्वदेशी आन्दोलन में भी अपनाई गई। भारत में ब्रिटिश औपनिवेशिक शासन के आर्थिक आधार को कमज़ोर करने के लिए बहिष्कार में भारत में विदेशी उत्पादों के उपयोग पर तथा भारत से विदेशों में कच्चे माल के निर्यात पर प्रतिबन्ध लगाया गया। आन्दोलनकारियों ने सरकारी शिक्षण संस्थाओं, अदालतों, कार्यालयों आदि का बहिष्कार किया। लोकमान्य तिलक ने बॉयकाट को महाराष्ट्र में तथा लाला लाजपत राय ने इसे पंजाब तक फैला दिया। ज़मींदारों, व्यापारियों, पुजारियों, डॉक्टरों, वकीलों, अध्यापकों, मज़दूरों, साधुओं आदि सभी ने बहिष्कार आन्दोलन को सफल बनाने में अपना योगदान दिया।सरकार ने बहिष्कार को राजद्रोह, आंग्ल–विरोधी तथा मुस्लिम विरोधी माना अतः उसके दमन के लिए उसने अपनी पूरी शक्ति का प्रयोग किया। स्वदेशी आन्दोलन ने भारत को आर्थिक आत्मनिर्भरता दिलाने हेतु कुटीर उद्योग के पुनरुत्थान को बढ़ावा दिया। ग्राम स्वराज्य, राष्ट्रीय शिक्षा तथा राष्ट्रीय एकता स्वदेशी आन्दोलन के अन्य लक्ष्य थे। स्वदेशी आन्दोलन का राजनीतिक लक्ष्य – स्वराज अथवा स्वशासन प्राप्त करना था।बंगाल प्रान्त देश का सबसे बड़ा प्रान्त था। प्रशासनिक सक्षमता बढ़ाने का बहाना कर लॉर्ड कर्ज़न, बंगाल के लेफ़्टिनेन्ट गवर्नर एन्ड्रू फ्रेज़र तथा गृह सचिव रिज़ले ने मिलकर बंगाल विभाजन की योजना तैयार की तथा बंगाल में से पूर्वी बंगाल और आसाम को अलग कर एक नया प्रान्त बनाने का निर्णय लिया। बंगाल विभाजन का मुख्य उद्देश्य पूर्वी बंगाल में एक मुस्लिम बहुल राज्य बनाकर हिन्दू–मुस्लिम सम्बन्धों में दरार डालना था। सरकार को इस उद्देश्य में कुछ सफलता मिली। 1906 में मुस्लिम लीग की स्थापना हुई तथा मुसलमानों की मांग पर 1909 के एक्ट में उन्हें साम्प्रदायिक प्रतिनिधित्व प्रदान कर दिया गया।

16 अक्टूबर, 1905 को बंगाल का विभाजन कर दिया गया। बंगाल विभाजन का विरोध करने में राष्ट्रीय नेता, साहित्यकार व पत्रकार सभी एकजुट हो गए। इस निर्णय के विरुद्ध देशव्यापी आन्दोलन हुआ। क्रान्तिकारी आतंकवाद ने अन्याय का प्रतिकार हिंसा से लेने का निश्चय किया। स्वदेशी आन्दोलन का राजनीतिक लक्ष्य स्वराज्य प्राप्ति था। सरकार पर विभाजन को रद्द करने के लिए दबाव डालने के लिए विदेशी सामान, सरकारी कार्यालयों, न्यायालयों तथा शिक्षा संस्थाओं का बहिष्कार किया गया। स्वदेशी आन्दोलन के सकारात्मक पहलू के अन्तर्गत भारत का आर्थिक पुनरुत्थान, ग्राम्य विकास, राष्ट्रीय शिक्षा का विकास तथा राष्ट्रीय एकता स्थापित करने के प्रयास किए

गए। 1911 में सरकार को बंगाल विभाजन को रद्द करना पड़ा। भारतीय राष्ट्रीय आन्दोलन की यह पहली महान सफलता थी।

8.7 पारिभाषिक शब्दावली

बॉयकाटः मूलतः आयरलैण्ड के होमरूल आन्दोलन से ली गई अवधारणा जिसका तात्पर्य बहिष्कार है।

अलगाववादीः विघटनकारी, पृथकतावादी।

साम्प्रदायिक प्रतिनिधित्वः अपने सम्प्रदाय के प्रत्याशियों के चुनाव का अधिकार केवल उस सम्प्रदाय के लोगों को प्रदान किए जाने की व्यवस्था।

मुखबिरः खबर देने वाला, विशेषकर अपने ही साथियों के विरुद्ध खबर देने वाला।

लैण्ड होल्डर्स एसोसियेशनः ज़मींदारों का संघ

क़ाबिले ज़ब्तीः अधिकार करने योग्य।

खब्तीः पागल।

8.8 सन्दर्भ ग्रंथ

मजूमदार, आर0 सी0 (सम्पादक)–*ब्रिटिश पैरामाउंट्सी एण्ड इण्डियन रिनेसा,* बम्बई, 1965

ताराचन्दः *भारतीय स्वतन्त्रता आन्दोलन का इतिहास* (चार भागों में), नई दिल्ली, 1984

चन्द्रा, बिपन – *दि राइज़ एण्ड ग्रोथ ऑफ इकानॉमिक नेशनलिज़्म इन इण्डिया*
नई दिल्ली, 1965

बनर्जी, एस0 एन0 – *नेशन इन मेकिंग,* कलकत्ता, 1915

नटेसन, जी0 ए0 (प्रकाशक) – *इण्डियन नेशनल कांग्रेस,* मद्रास, 1917

सीतारमैया, पी0 – *दि हिस्ट्री ऑफ दि इण्डियन नेशनल कांग्रेस,* बम्बई, 1946

बोस, एन0 एस0 – *दि इण्डियन अवेकेनिंग एण्ड बैंगाल,* कलकत्ता,1976

सरकार, सुमीत – *स्वदेशी मूवमेन्ट इन बैंगाल,* नई दिल्ली, 1973

8.9 स्व मूल्यांकित प्रश्नों के उत्तर

1. (क) देखिए 8.3.1 बंगाल विभाजन का निर्णय तथा उसके पीछे अंग्रेज़ों की साज़िश।

(ख) देखिए 4.3.2 बंगाल विभाजन के परिणाम स्वरूप हिन्दू–मुस्लिम सम्बन्धों में दरार।

2. (i) सन् 1905 में।

(ii) जॉन मॉर्ले ने।

(क) 8.3.3 बंगाल विभाजन के अन्यायपूर्ण निर्णय पर भारतीय तथा ब्रिटिश प्रतिक्रिया।

(ख) देखिए 8.5.3 आर्थिक आत्मनिर्भरता।

2.(i) जज किंग्सफ़ोर्ड।

(ii) सन् 1911 में।

8.10 अभ्यास प्रश्न

1. बंगाल विभाजन के पीछे अंग्रेज़ों की साज़िश पर प्रकाश डालिए।
2. लॉर्ड कर्ज़न की राजनीतिक दमन की नीतियों की समीक्षा कीजिए।
3. बंगाल विभाजन के निर्णय के विरुद्ध भारतीय समाचार पत्रों की भूमिका का आकलन कीजिए।
4. भारतीय राजनीतिक आन्दोलन में बायकॉट की महत्ता का आकलन कीजिए।
5. स्वदेशी आन्दोलन के दौरान राष्ट्रीय शिक्षा के विकास हेतु प्रयासों का वर्णन कीजिए।

इकाई नौः क्रान्तिकारी चरमपंथ

9.1 प्रस्तावना

9.2 इकाई के उद्देश्य

9.3 भारत में क्रान्तिकारी चरमपंथ का प्रथम चरण

9.3.1 बंगाल तथा महाराष्ट्र में प्रारम्भिक क्रान्तिकारी गतिविधियां

9.3.2 बंगाल विभाजन के विरोध में क्रान्तिकारी गतिविधियां

9.3.3 1911 तक बंगाल से इतर क्षेत्रों में क्रान्तिकारी आन्दोलन का विकास

9.4 1911 के बाद से प्रथम विश्वयुद्ध की समाप्ति तक क्रान्तिकारी आन्दोलन का विकास

9.5 बंगाल में क्रान्तिकारी आन्दोलन का दूसरा चरण

9.6 बंगाल से इतर क्षेत्रों में क्रान्तिकारी आन्दोलन का दूसरा चरण

9.7 सार संक्षेप

9.8 पारिभाषिक शब्दावली

9.9 सन्दर्भ ग्रंथ

9.10 स्व मूल्यांकित प्रश्नों के उत्तर

9.11 अभ्यास प्रश्न

9.1 प्रस्तावना

पिछली इकाइयों में हम 1857 के विद्रोह तथा भारत में राजनीतिक चेतना के विकास की चर्चा कर चुके हैं। ब्रिटिश शासन की दमनकारी नीतियों के विरोध में भारत में व्यापक असन्तोष की अभिव्यक्ति क्रान्किारी चरमपंथ के रूप में मुखरित हुई थी। 1857 के विद्रोह की असफलता से यह स्पष्ट हो गया था कि भारत में सशस्त्र क्रान्ति द्वारा ब्रिटिश शासन का उन्मूलन नहीं किया जा सकता है किन्तु क्रान्तिकारियों ने चरमपंथ का आश्रय लेकर ब्रिटिश शासन को यह जताना चाहा कि भारतीय ब्रिटिश दमन चक्र को चुपचाप बैठकर सहन नहीं करेंगे और उसका करारा जवाब देंगे। भारतीय क्रान्तिकारी चरमपंथ का आश्रय लेकर भारतीयों में अन्याय का प्रतिकार करने का साहस जुटाना

चाहते थे। बंगाल विभाजन के विरोध में हुई क्रान्तिकारी गतिविधियों ने सरकार के लिए अनेक कठिनाइयां खड़ी कीं। बंगाल विभाजन को रद्द किए जाने का आंशिक श्रेय हम क्रान्तिकारियों को दे सकते हैं।1906 में कलकत्ता अनुशीलन के बारीन्द्रकुमार घोष और भूपेन्द्रनाथ दत्त ने साप्ताहिक युगान्तर का प्रकाशन शुरू किया। उन्होंने कुछ कुख्यात लोगों के सफाये की कोशिशें की, हालांकि इन कोशिशों में वे सफल न हो सके थे। इसी दरमियान प्रसिद्ध क्रान्तिकारी हेमचन्द्र कानूनगो एक रूसी आप्रवासी से प्रशिक्षण हासिल करने पेरिस गए। उन्होंने लौटकर एक धार्मिक स्कूल और बम बनाने का कारखाना स्थापित किया, जिसे कलकत्ता के बाहरी इलाके में स्थित मानिकतला मोहल्ले के एक बगीचे वाले घर में लगाया गया था। लेकिन 30 अप्रैल 1908 को केनेडी महिलाओं की हत्या के चन्द घन्टों बाद पुलिस ने इस कारखाने को पकड़ लिया। इसी दिन प्रफुल्ल चाकी और खुदीराम बोस ने एक बदनाम मजिस्ट्रेट डगलस किंग्सफर्ड को मारने की कोशिश की थी, लेकिन वह बच गया और उनके हमले में ये महिलायें मारी गई थीं। इस कांड के बाद पुलिस ने क्रान्तिकारियों के इस समूचे दल को गिरफ्तार कर लिया था।

इस बीच पूर्वी बंगाल में ढाका अनुशीलन की संगठित गतिविधियाँ शुरू हो चुकी थीं। संगठन का संचालन पुलिन दास किया करते थे। 2 जून 1908 की बारा डकैती इस समूह का सबसे पहला साहसिक अभियान था। 1911 में बंग–विभाजन की कार्यवाही वापस ली जा चुकी थी। तब तक यह दल समूचे प्रान्त में फैल चुका था और अन्य प्रान्तों में भी इसकी पहुंच बन चुकी थी। समूह का मुख्य काम सरकारी खजाने को लूटना था, जिसे वे 'स्वदेशी डकैती' कहा करते थे। इन डकैतियों का मकसद अपनी कार्यवाहियों के लिए कोष का प्रबन्ध करना था। इसके अलावा उनकी योजना में अंग्रेज व अन्य औपनिवेशिक अफसरों की हत्या करना शामिल था। जो भी सरकार के लिए काम करे, उसे वे गद्दार समझते थे, इसलिए वे उसकी हत्या भी कर देते थे। दूसरा समूह जतीन्द्रनाथ मुकर्जी के नेतृत्व वाला युगान्तर था, जो अनेक दलों का एक ढीला–ढाला मंच था। यह समूह उस वक्त अपने संसाधन जुटाने और अन्तर्राष्ट्रीय सम्पर्क बनाने में लगा था, और उसका मकसद उचित अवसर उपस्थित होने पर अंग्रेजों के खिलाफ एक बड़ा सैनिक हमला आयोजिक करना था। 23 दिसम्बर 1912 को रास बिहारी बोस और सचिन सान्याल ने तत्कालीन वायसराय लार्ड हार्डिंग पर हमला किया, हालांकि हत्या के लिए की गई इस कार्यवाही में वे सफल नहीं हुए थे।

इन संगठनों के अलावा वीडी सावरकर ने 1904 में क्रान्तिकारियों के एक गुप्त संगठन अभिनव भारत का गठन किया था। बाद में इस दल की कार्यवाहियों का केन्द्र लंदन स्थानान्तरित हो गया था (जिसपर अगले पाठ में हम और अधिक चर्चा करेंगे)। 1905 के बाद ऐसे कई अखबार निकलने लगे थे जो हिंसा के जरिए अंग्रेजी शासन को उखाड़ फेंखने की खुली वकालत करते थे।

इन घटनाओं से भारत में क्रान्तिकारी आन्दोलन के युग का आगाज़ हो चुका था। भारत के सभी प्रान्तों में क्रान्तिकारियों के गुप्त संगठन सक्रिय हो रहे थे। इनमें युगान्तर और अनुशीलन समिति की सक्रियता सबसे स्थायी साबित हुई। महाराष्ट्र और पंजाब जैसे अन्य प्रान्तों में भी चरमपंथी व रैडिकल आन्दोलन हो रहे थे, हालांकि वहां इन आन्दोलनों का जोर जन गोलबन्दी करने और क्रान्तिकारी साहित्य निकालने पर ज्यादा था। इन आन्दोलनों को इसी दौर में दमन झेलना पड़ा था, जिसके कारण महाराष्ट्र में एक अल्प दौर के अलावा यह क्रान्तिकारी आतंकवाद के रास्ते पर नहीं बढ़ पाया था। बारीन्द्रकुमार घोष और भूपेन्द्रनाथ दत्त, वीडी सावरकर नासिक में सक्रिय थे। उन्होंने सफलतापूर्वक लंदन से हथियार जुटाए थे, जिनका इस्तेमाल नासिक के जिला मजिस्ट्रेट की हत्या में किया गया था। ग्वालियर में क्रान्तिकारियों ने नव भारत समाज का गठन किया था, जिसके द्वारा भारत में गणतन्त्र की स्थापना को अपना लक्ष्य घोषित किया गया था। बाद में, लंदन में लार्ड वायली की हत्या के बाद इन दोनों समूहों की कार्यवाहियाँ ठप हो गई थीं। नासिक और ग्वालियर षड़यन्त्र मुकदमों के बाद के माहौल में महाराष्ट्र की क्रान्तिकारी गतिविधियां भी धीरे–धीरे समाप्त हो गईं।

अंग्रेज 1918 तक बंगाल में भी राज्य के भीतर से या बाहर से संगठित सभी क्रान्तिकारी आन्दोलन रोकने में सफल हो गए थे। आन्दोलन खत्म करने के लिए अन्धाधुन्ध गिरफ्तारियों के बाद कठोर सजायें दी जा रही थीं। बाद में तो दमन चक्र ने सार्वजनिक गतिविधियों को भी अपनी जद में ले लिया था। इनमें रैडिकल और क्रान्तिकारी साहित्य के

प्रकाशन और राजनीतिक सभाओं के आयोजन की गतिविधियॉ भी शामिल थीं। इस इकाई में आपको भारतीय क्रान्तिकारी आन्दोलन के प्रथम चरण से परिचित कराया जाएगा।

9.2 इकाई के उद्देश्य

इस इकाई में आपको भारत में क्रान्तिकारी चरमपंथ के विकास के प्रथम चरण (प्रथम विश्व युद्ध की समाप्ति तक) की आपको जानकारी दी जाएगी। क्रान्तिकारी चरमपंथ का दार्शनिक एवं धार्मिक आधार, उसका विस्तार, क्रान्तिकारियों की रणनीति, उनकी सफलताओं, असफलताओं तथा उनके दमन हेतु ब्रिटिश सरकार के प्रयासों की चर्चा भी इस इकाई में की जाएगी। इस इकाई को पढ़ने के बाद आप अवगत होंगेः

- बंगाल विभाजन से पूर्व भारत में क्रान्तिकारी की नीतियों तथा उनकी गतिविधियों से।
- बंगाल से इतर क्षेत्रों में हुई क्रान्तिकारी गतिविधियों से।
- बंगाल विभाजन के रद्द किए जाने के बाद, प्रथम विश्व युद्ध की समाप्ति तक हुई क्रान्तिकारी गतिविधियों से।

9.3 भारत में क्रान्तिकारी चरमपंथ का प्रथम चरण

9.3.1 बंगाल तथा महाराष्ट्र में प्रारम्भिक क्रान्तिकारी गतिविधियां

1857 के विद्रोह को अंग्रेज़ों के विरुद्ध प्रथम क्रान्ति भी कहा जाता है किन्तु इस अवधारणा के समर्थक कम हैं तथा विरोधी अधिक हैं। पंजाब के सिक्खों का कूका आन्दोलन तथा मुसलमानों का वहाबी आन्दोलन भी क्रान्तिकारी आतंकवाद की श्रेणी में नहीं आता। वास्तव में भारत में क्रान्तिकारी आतंकवाद का प्रारम्भ हम उन्नीसवीं शताब्दी के अंतिम दशक से मान सकते हैं और इसका मुख्य क्षेत्र हम महाराष्ट्र तथा बंगाल में देख सकते हैं।

भारतीय क्रान्तिकारियों को क्रान्ति की प्रेरणा आंशिक रूप से भारतीय धर्म और उसके गौरवशाली इतिहास से प्राप्त हुई। मातृ सम्प्रदाय के अनुयायियों ने भारतमाता को आततायी विदेशी आक्रान्ता के चंगुल से छुड़ाने का संकल्प लिया। बंकिम चन्द्र चटर्जी के अमर उपन्यास *आनन्द मठ* में बिखरे केश लिए, श्रृंगार विहीन, मलिन वस्त्र धारी भारतमाता को आतताई के हाथों अपमानित होते हुए चित्रित किया गया है। *आनन्द मठ* के अमर पात्रों, शान्ति, भवानन्द और जीवानन्द की भांति भारतीय युवा भी भारतमाता को मुक्त कराने के लिए आतताई का उन्मूलन करने के लिए अपने प्राणों का उत्सर्ग करने के लिए तत्पर थे। बंकिम के लिखे गीत 'वन्दे मातरम्' को बंगाल के युवा क्रान्तिकारियों ने राष्ट्रगान की प्रतिष्ठा दी थी।

भवानी मन्दिर पुस्तक में क्रान्तिकारियों के लिए योजनाबद्ध तरीके से रणनीति बनाने के आवश्यक निर्देश उपलब्ध किए गए। प्रमोथ मित्तर, जतीन्द्रनाथ बनर्जी, सतीशचन्द्र बसु तथा बारीन्द्रकुमार घोष ने 1902 में मिदनापुर तथा कलकत्ते में क्रान्तिकारी संस्था अनुशीलन समिति की स्थापना की थी। 1902 में बंगाल में क्रान्तिकारी आतंकवाद को इन समितियों के गठन से बहुत बल मिला। ये समितियां थीं – मिदनापुर में ज्ञानेन्द्रनाथ बसु द्वारा स्थापित मिदनापुर सोसायटी तथा कलकत्ते की सरला घोषाल की व्यायामशाला और युवाओं द्वारा स्थापित आत्मोन्नति समिति। 1905 तक इन समितियों ने हिंसा का मार्ग नहीं अपनाया किन्तु इनकी विचारधारा में अन्याय का प्रतिकार करने के लिए हिंसा के मार्ग को अपनाना उचित ठहराया गया। 1907 में *वर्तमान रणनीति* शीर्षक पुस्तक में युवकों को सैनिक शिक्षा ग्रहण करने के लिए प्रेरित किया गया।

लोकमान्य तिलक के प्रशंसक व क्रान्तिकारी संस्था हिन्दू धर्म संरक्षिणी सभा के सदस्य दामोदर व बालकृष्ण चापेकर बन्धु प्लेग कमिश्नर रैण्ड तथा उसके सहयोगी एमहर्स्ट के दमनकारी कार्यों से नाराज़ थे। 1897 में उन्होंने इन दोनों अधिकारियों की हत्या कर दी। इन दोनों भाइयों को फांसी दे दी गई।

वीर सावरकर तथा उनके भाई महान क्रान्तिकारी गणेश सावरकर ने 1899 में मिलकर मित्र मेला की स्थापना की। वीर सावरकर ने लन्दन में अभिनव भारत की स्थापना कर क्रान्तिकारी गतिविधियां प्रारम्भ की थीं। भारत में इसकी अनेक गुप्त शाखाएं स्थापित की गईं। पूना और बम्बई के अनेक कॉलेजों में भी इसकी शाखाएं थीं। इसके कार्यक्रमों में बम व हथियार बनाना तथा उनको चलाने का प्रशिक्षण आदि शामिल थे। वी0 एन0 वापट को रूसी क्रान्तिकारियों से बम बनाने की तकनीक सीखने के लिए रूस भेजा गया। वहां उसने रूसी भाषा की पुस्तक

बम मैनुअल प्राप्त की और फिर उसके अंग्रेज़ी अनुवाद की साइक्लोस्टाइल प्रति भारतीय क्रान्तिकारियों में वितरित की गई।

9.3.2 बंगाल विभाजन के विरोध में क्रान्तिकारी गतिविधियां

भारतीयों को 1903 में ही बंगाल विभाजन की योजना की जानकारी मिल गई थी और इसके विरुद्ध पूरे बंगाल में आक्रोश था। 16 अक्टूबर, 1905 को बंगाल का विभाजन कर दिया गया। अब बंगाल के युवाओं ने देश की राजनीति को एक नई दिशा देने का निश्चय किया।

नरमपंथियों के प्रति सरकार के उपेक्षापूर्ण रवैये के कारण भारतीय युवाओं का अपनी मांगों की पूर्ति के लिए संवैधानिक तरीकों पर से भरोसा उठ गया था। अब याचिकाओं, जन–सभाओं तथा शिष्टमण्डलों के द्वारा सुधार प्राप्त किए जाने की आशा करने का दौर बीत चुका था। देशभक्ति के उच्च आदर्श और आत्म–बलिदान की भावना युवाओं को प्रेरित कर रही थी। देश की दुर्दशा और राजनीतिक ठहराव से उपजा क्षोभ, और कुछ नया करने की इच्छा ने उन्हें क्रान्तिकारी मार्ग की ओर अग्रसर किया। बंगाल में स्थापित मिदनापुर की मिदनापुर सोसायटी और कलकत्ते की सरला घोषाल व्यायामशाला, आत्मोन्नति समिति तथा अनुशीलन समिति ने अब अन्याय का प्रतिकार करने के लिए हिंसा का मार्ग अपनाने का निश्चय कर लिया।

रूस तथा इटली के क्रान्तिकारी आन्दोलनों से प्रेरित होकर ब्रिटिश शासन के उन्मूलन के लिए क्रान्तिकारियों ने निम्न योजना बनाईः

1. प्रेस के माध्यम से क्रान्ति की भावना का प्रचार किया जाए।
2. स्वतन्त्रता सेनानियों के जीवन पर आधारित नाटकों का मंचन हो तथा उन पर लिखे गीतों का पाठ हो।
3. सरकार के लिए परेशानी खड़ी करने के लिए हड़तालों तथा जल्सों, जुलूसों का आयोजन किया जाए।
4. क्रान्तिकारी आन्दोलन को दृढ़ आर्थिक प्रदान करने के लिए सरकारी और सरकार के समर्थकों के प्रतिष्ठानों पर डाके डाले जाएं। 1906 में पुलिनबिहारी दास ने ढाका में अनुशीलन समिति की स्थापना की। बारीन्द्रनाथ घोष तथा भूपेन्द्रनाथ दत्त ने अप्रैल, 1906 में बंगला साप्ताहिक पत्र *जुगान्तर* का प्रकाशन प्रारम्भ किया। अरबिंदो घोष ने *बंदे मातरम्* पत्र निकाला।
5. . युवकों को व्यायाम, सैनिक शिक्षा, शक्तिपूजा आदि के लिए प्रशिक्षित किया जाए।

हथियार एकत्र किए जाएं, बम और पिस्तौलों के प्रयोग व उनके निर्माण हेतु प्रशिक्षण की व्यवस्था की जाए।

सांध्य भी एक महत्वपूर्ण क्रान्तिकारी पत्र था। दिसम्बर, 1906 में क्रान्तिकारियों ने अखिल बंगाल सम्मेलन का आयोजन किया। कलकत्ते में अनुशीलन समिति का संचालन बारीन्द्रकुमार घोष, हेमचन्द्र कानूनगो तथा प्रफुल्ल चाकी ने किया। अपने आन्दोलन के लिए धन एकत्र करने के उद्देश्य से क्रान्तिकारियों द्वारा पहली डकैती अगस्त 1906 में रंगपुर में डाली गई। मानिकतल्ला में एक बम बनाने की फ़ैक्ट्री लगाई गई। अत्याचारी, अधिकारियों तथा सरकार के मुखबिरों की हत्या के प्रयास किए गए। *जुगान्तर* के मार्च, 1907 तथा अगस्त 1907 के अंकों में अपने लक्ष्यों को प्राप्त करने के लिए शान्तिपूर्ण रणनीति को निरर्थक मानते हुए, उनकी प्राप्ति हेतु अपना खून बहाना आवश्यक बताया गया। पूर्वी बंगाल के दमनकारी लेफ़्टिनेन्ट गवर्नर फुलर को मारने का असफल प्रयास किया गया। 1907 में उसकी रेलगाड़ी को उड़ाने के दो बार असफल प्रयास किए गए। 1907–08 में क्रान्तिकारियों ने साहा व्यापारीगणों के घरों में डकैतियां डालीं क्यों कि उन्होने कि चेतावनी के बाद भी अंग्रेज़ों से अपने व्यापारिक सम्बन्ध नहीं तोड़े थे।

बारीन्द्रनाथ घोष तथा भूपेन्द्रनाथ दत्त ने अप्रैल, 1906 में *जुगान्तर* पत्र का प्रकाशन प्रारम्भ किया। पूर्वी बंगाल के दमनकारी लेफ़्टिनेन्ट गवर्नर फुलर को मारने का असफल प्रयास किया गया। *जुगान्तर* के मार्च, 1907 तथा अगस्त 1907 के अंकों में अपने लक्ष्यों को प्राप्त करने के लिए शान्तिपूर्ण रणनीति को निरर्थक मानते हुए, उनकी प्राप्ति हेतु अपना खून बहाना आवश्यक बताया गया। क्रान्तिकारियों ने अब विदेश जाकर हथियार चलाने व उनको बनाने का प्रशिक्षण लेना आवश्यक समझा।

हेमचन्द्र कानूनगो सैनिक प्रशिक्षण के लिए पेरिस गए। जनवरी, 1908 में भारत लौटकर उन्होंने मानिकतल्ला में एक

धार्मिक विद्यालय में बम बनाने का गुप्त कारखाना खोला।

30 अप्रैल, 1908 को खुदीराम बोस तथा प्रफुल्ल चाकी ने मुज़फ़्फरपुर के अत्याचारी प्रेसीडेन्सी मैजिस्ट्रेट किंग्सफ़ोर्ड की हत्या का असफल प्रयास किया, गल्ती से हमले में केनेडी परिवार की एक महिला और एक बच्ची की मृत्यु हो गई। पकड़े जाने से पहले प्रफुल्ल चाकी ने खुद को गोली मारकर आत्महत्या कर ली परन्तु खुदीराम बोस पकड़ा गया। इस नाबालिग क्रान्तिकारी पर मुकदमा चलाकर उसे प्राणदण्ड दिया गया जब कि ब्रिटिश कानून में नाबालिग को किसी भी अपराध के लिए प्राणदण्ड का प्रावधान नहीं था। खुदीराम बोस की शहादत को बंगाल की देशभक्त युवतियों ने अनोखे ढंग से सराहा। उन्होंने उसकी चिता की राख से अपनी मागं सजाईं और पुलिस के कोप की परवाह न करते हुए उसके नाम के छापे की साड़ियां पहनीं। भिखारी भिक्षा मांगते समय उसके बलिदान के गीत गाने लगे और ये गीत बंगाल की सड़कों पर उसकी शहादत के दशकों के बाद भी सुने जा सकते थे।

बारीन्द्रकुमार घोष की असावधानी से मानिकतल्ला बम फ़ैक्ट्री से सम्बद्ध क्रान्तिकारी पकड़े गए, इनमें अरबिन्दो घोष भी सम्मिलित थे। मानिकतल्ला बम षडयन्त्र की सुनवाई और युवा खुदीराम बोस को फांसी दिए जाने से पूरे बंगाल में देशभक्ति की लहर दौड़ पड़ी। इन क्रान्तिकारियों के बलिदान पर लोकगीतों तथा गीतों की रचना हुई। चितरन्जन दास ने अरबिन्दो की पैरवी करते हुए कहा कि यदि देश को स्वतन्त्र कराने का स्वप्न देखना कोई अपराध है तो उनके मुवक्किल ने अवश्य अपराध किया है। अरबिन्दो घोष को बरी कर दिया गया किन्तु बारीन्द्रकुमार व उल्लासकर दत्त को फांसी व अन्य दस को आजीवन कारावास दिया गया। इस फ़ैसले के विरुद्ध अपील करने के बाद फांसी की सज़ा कम करके आजन्म कारावास में बदल दी गई। अन्य अभियुक्तों की सज़ा में भी कमी कर दी गई। सरकारी मुखबिर नरेन्द्र गोसाईं की कन्हैया लाल दत्त तथा सत्येन्द्र बोस ने हत्या कर दी। इन दोनों को फांसी दे दी गई। इस घटना के बाद बंगाल में क्रान्तिकारी गतिविधियां मन्द पड़ गईं परन्तु पूर्णतया समाप्त नहीं हुईं। पुनीत दास की ढाका अनुशीलन समिति ने 2 जून, 1908 को बराह में डकैती डाली। अत्याचारी अधिकारियों तथा गद्दार मुखबिरों पर प्रहार करना क्रान्तिकारियों की रणनीति में शामिल था। नवम्बर, 1909 में गवर्नर जनरल लॉर्ड मिन्टो की रेलगाड़ी से अहमदाबाद यात्रा के समय दो बम रेल की पटरी पर पाए गए।

क्रान्तिकारी आतंकवादियों का मानना था कि विदेशी शासन भारतीयों के धर्म, उनकी संस्कृति और उनके नैतिक मूल्यों के लिए विनाशकारी है और उनके शासन को जड़ से उखाड़ फेंकना मातृभूमि के आध्यात्मिक पुनरुत्थान के लिए आवश्यक है। उनका कहना था कि जब तक भारत से विदेशी शासन समाप्त नहीं हो जाता वो ऐसे ही लड़ते रहेंगे और लड़ाई में क्या उचित है, क्या अनुचित है, इसकी चर्चा भी बेमानी होगी। स्वतन्त्रता के शत्रुओं, चाहे वो अंग्रेज़ हों या भारतीय, उनके विरुद्ध बम और पिस्तौल का प्रयोग क्रान्तिकारियों की दृष्टि में न्यायसंगत था। वो जानते थे कि अधिकारियों तथा गद्दारों की छुटपुट हत्याओं से वो सरकार का तख्ता नहीं पलट पाएंगे पर उन्हें आशा थी कि इससे अत्याचारी सरकार हतोत्साहित अवश्य होगी और प्रशासनिक व्यवस्था चरमरा जाएगी। हर हत्या, डकैती और रेल की पटरियां उखाड़े जाने की वारदातों के बाद देशवासियों में उत्साह की लहर दौड़ जाती थी।

क्रान्तिकारियों की देशभक्ति, उनकी बलिदान की भावना और उनकी संगठनात्मक प्रतिभा का लोहा उनकी विचारधारा के विरोधी भी मानते थे किन्तु बंगाली क्रान्तिकारियों में अधिकांश भद्रलोक से सम्बद्ध थे और उनकी गतिविधियां मूलतः शहरों तक सीमित रहीं, कभी–कभी ग्रामीण क्षेत्रों में छापामार रणनीति का भी प्रयोग किया गया। परन्तु उनकी गतिविधियों से कभी भी ब्रिटिश प्रशासन की भारत पर पकड़ कमज़ोर नहीं हो सकी। प्रारम्भिक क्रान्तिकारियों के उग्र हिन्दूवाद ने मुसलमानों को उनके आन्दोलन से दूर रखा। हेमचन्द्र कानूनगो के अनुसार गीता के निष्काम कर्मयोग ने क्रान्तिकारियों में आत्मबलिदान की भावना तो जागृत की किन्तु उन्हें एक सुनिश्चित योजना बनाकर कार्यक्रम बनाने की प्रेरणा नहीं दी। अरबिन्दो को विश्वास था कि उन्हें कोई योजना, रणनीति अथवा कार्यक्रम बनाने की आवश्यकता नहीं है, माँ काली स्वयं उनके लिए इन्हें तैयार करेंगी। पौण्डिचेरी भेजे जाने के बाद अरबिन्दो ने वहां अपना आश्रम खोला तथा जतिन्द्रनाथ बन्दोपाध्याय रामकृष्ण मिशन में स्वामीजी बन गए। सरकार ने क्रान्तिकारियों के दमन के लिए हर सम्भव उपाय किए। सरकार के विरुद्ध साज़िश करने वालों और सरकार के

विरुद्ध देशवासियों को भड़काने वालों की गतिविधियों पर नज़र रखने के लिए गुप्तचरों की सेवाएं ली गईं। भारत सरकार तथा बंगाल सरकार दोनों ने ही सरकार विरोधी गतिविधियों को कुचलने की व्यवस्था की। आवश्यक संशोधन करके दण्ड प्रणाली संहिता को और कठोर बना दिया गया। जांच पड़ताल को और सुरक्षा–व्यवस्था को और कड़ा कर दिया गया। 1908 में सरकार ने एक्सप्लोसिव सब्सटेन्सेज़ एक्ट तथा न्यूज़पेपर एक्ट (इनसाइटमेन्ट ऑफ ऑफ़ेन्सेज़ एक्ट), इण्डियन लॉ अमेन्डमेन्ट एक्ट बनाकर क्रान्तिकारियों की गतिविधियों तथा उनके प्रचार कार्य को कुचलने का प्रयास किया।

बंगाल में क्रान्तिकारी गतिविधियों अनुशीलन समिति की सबसे महत्वपूर्ण भूमिका थी। कलकत्ता तथा ढाका की दो मुख्य शाखाओं के अतिरिक्त बंगाल प्रान्त में इसकी अनेक शाखाएं स्थापित की गईं। इन शाखाओं से युवाओं के मध्य क्रान्तिकारी साहित्य का वितरण किया जाता था तथा इसके गुप्त भूमिगत ठिकानों में हथियार तथा बारूद बनाने जैसे कार्यों का सम्पादन किया जाता था।

क्रान्तिकारी आतंकवाद में संलग्न युवाओं का साहस, उनका देशप्रेम व उनकी बलिदान की भावना देखकर उसके प्रति जनता में वितृष्णा का भाव तिरोहित हो गया और उसे सम्मान की दृष्टि से देखा जाने लगा। अधिकांश युवाओं की दृष्टि में यह नरमपंथियों की याचना की प्रवृत्ति से एक बेहतर विकल्प था। सन् 1909 में जब इण्डियन काउंसिल्स एक्ट पारित हुआ तो उसमें किए गए सुधारों के लिए एक बड़े जनसमूह द्वारा क्रान्तिकारी गतिविधियों को श्रेय दिया गया। एच0 चक्रबर्ती अपनी पुस्तक *पॉलिटिकल प्रोटैस्ट इन बैंगालः बॉयकॉट एण्ड टैरेरिज़्म, 1905–18* में जस्टिस सिन्हा की वाइसराय की कार्यकारी परिषद में लॉ मेम्बर के रूप में नियुक्ति तथा 1911 में बंगाल विभाजन को रद्द किए जाने के फ़ैसले का श्रेय क्रान्तिकारियों को देते हैं।

9.3.3 1911 तक बंगाल से इतर क्षेत्रों में क्रान्तिकारी आन्दोलन का विकास

वीर सावरकार के भाई तथा अभिनव भारत के सदस्य गणेश सावरकर को देशभक्तिपूर्ण गीतों की रचना करने के अपराध में जज जैक्सन द्वारा अण्डमान द्वीप में निर्वासन की सज़ा सुनाई गई। दिसम्बर 1909 में वीर सावरकर द्वारा लन्दन से भेजी गई पिस्तौल से अभिनव भारत के सदस्य अनन्त कन्हारे ने जैक्सन को गोली मार कर उसकी हत्या कर इस अन्यायपूर्ण फ़ैसले का बदला लिया। नासिक षडयंत्र मामले के अंतर्गत उस पर मुकदमा चला और उसे फांसी दे दी गई तथा उसके 27 साथियों को कारावास दिया गया।

पंजाब में 1907 में *पंजाबी* पत्र में अंग्रेज़ों के लिए जातीय अपशब्दों का प्रयोग करने के कारण उसके सम्पादक पर मुकदमा चलाया गया जब कि *सिविल एण्ड मिलिटरी गज़ट* जैसे अंग्रेज़ी पत्र भारतीयों को खुलेआम गालियां दिया करते थे। लाहौर में क्रुद्ध भारतीयों ने फ़रवरी और मई, 1907 में गोरों पर हमले किए। लैण्ड एलिएनेशन एक्ट में बदलाव से तथा चिनाब कॉलोनीज़ बिल से व्यापारी, किसान तथा भूतपूर्व सैनिक अंग्रेज़ सरकार से बहुत नाराज़ थे। सरदार अजीत सिंह ने लाहौर में *अन्जुमन–ए– मोहिबान–ए–वतन* की स्थापना की और *भारतमाता* पत्र निकाला। अंग्रेज़ सरकार ने अजीत सिंह को बन्दी बना लिया। जेल से छूटकर अजीत सिंह ने क्रान्तिकारी आन्दोलन को संचालित किया। 1908 में लायलपुर के डी0 एस0 पी0 क्लग तथा उसके चपरासी की हत्या कर दी गई। 1909 में अम्बाला के डिप्टी कलैक्टर के घर पर बम फेंका गया।

आंध्र क्षेत्र में बंगाल विभाजन के विरोध में किए जाने वाले आन्दोलन का समर्थन किया गया। 1907 में बिपिनचन्द्र पाल के आंध्र क्षेत्र के दौरे के बाद *वन्देमातरम्* आन्दोलन का वहां प्रसार हुआ। वन्देमातरम् का नारा लगाने वाले एक छात्र को एक अंग्रेज़ द्वारा पीटे जाने पर मई, 1907 में ककिनाड यूरोपियन क्लब पर भीड़ ने हमला कर दिया। तिरुनवेल्ली में क्रान्तिकारी आतंकवाद के प्रसार से सरकार चिन्तित थी। जी0 सुब्रमनिय अय्यर द्वारा 1906 तथा 1907 के दौरों से इस क्षेत्र में उग्रवादी भावना का और विस्तार हुआ था। वी0 ओ0 चिदम्बरम पिल्लई एक महान उग्रवादी नेता के रूप में उभर कर आए। उनकी गिरफ़्तारी का विरोध कर रही भीड़ पर गोली चलाने वाले अधिकारी की 'भारतमाता ऐसोसियेशन' के वांची अय्यर ने हत्या कर दी। मदुरा से आए साधारण समाज से आए नेता सुब्रमनिय शिवा ने ट्यूटीकोरिन में 905 की रूसी क्रान्ति से प्रेरणा लेकर अंग्रेज़ी स्वामित्व के मिलों के मज़दूरों को अपने अधिकारों के लिए हड़ताल और तोड़फोड़ व हिंसा के तरीके अपनाने के लिए उक्साया। कोरल

कॉटन मिल्स के मज़दूरों के वेतन में मिलमालिकों को 50 प्रतिशत की वृद्धि करनी पड़ी। शिवा तथा पिल्लई की गिरफ़्तारी के विरोध में नगरपालिका के कार्यालय, अदालतों तथा पुलिस स्टेशनों पर भीड़ ने हमले कर दिए। मार्च, 1908 में पुलिस को हिंसक भीड़ पर दो बार गोली चलानी पड़ी। कलकत्ता से प्रकाशित *बन्दे मातरम्* पत्र ने इस घटना को शिक्षित वर्ग तथा आम जनता का संयुक्त क्रान्तिकारी अभियान बताकर इसका स्वागत किया। काफ़ी समय तक शान्त रहने के बाद क्रान्तिकारियों ने जून, 1911 में ट्यूटीकोरिन के जिलाधीश एशे की हत्या कर दी। हिन्दू पुनरुत्थानवादी वीर सावरकर के शिष्य वी0 वी0 एस0 अय्यर ने दक्षिण में क्रान्ति की महत्ता पर प्रकाश डाला।

स्व मूल्यांकन हेतु प्रश्न

निम्नलिखित विषयों पर संक्षिप्त टिप्पणी लिखिए:

1. (क) बंगाल विभाजन के विरुद्ध क्रान्तिकारी पत्रों का अभियान।

(ख) वीर सावरकर का अभिनव भारत।

2. नीचे लिखे प्रश्नों के उत्तर दीजिए।

(i) 1897 में प्लेग कमिश्नर रैण्ड की हत्या किसने की?

(ii) अभिनव भारत संस्था की स्थापना किसने की?

9.4 1911 के बाद से प्रथम विश्वयुद्ध की समाप्ति तक क्रान्तिकारी आन्दोलन का विकास

9.5 बंगाल में क्रान्तिकारी आन्दोलन का दूसरा चरण

बंगाल विभाजन को रद्द किए जाने के बाद बंगाल में क्रान्तिकारी गतिविधियां समाप्त नहीं हुईं। जतीन्द्रनाथ मुकर्जी (बाघा जतीन) के नेतृत्व में जुगान्तर दल ने क्रान्तिकारी गतिविधियों को सफल बनाने के लिए विदेशी सहायता लेना उचित माना।

वाइसरॉय की कार्यकारी परिषद के गृह सदस्य रैजिनैल्ड क्रैडक ने अप्रैल, 1913 के मिनट में अंग्रेज़ी शासन के विरुद्ध व्यापक असन्तोष के दो मुख्य कारण बताए – प्रशासनिक अक्षमता तथा आर्थिक विपन्नता। किन्तु इनका निदान करने के स्थान पर सरकार ने केवल असन्तोष को निर्ममता से कुचलने का निश्चय किया।

अलीपुर षडयन्त्र के सरकारी मुखबिर गोसाईं, सरकारी वकील तथा इस काण्ड से सम्बद्ध पुलिस अधीक्षक की हत्या कर दी गई। बाघा जतीन के दल को अगस्त, 1914 में कलकत्ते की रोडा फ़र्म के एक अपने एक साथी द्वारा 50 पिस्तौलें तथा 46000 कारतूसें प्राप्त हुईं। इसके बाद राजनीतिक डकैतियों तथा हत्याओं की वारदातें बढ़ गईं। 1914–15 में 12 डकैतियां तथा 7 हत्याएं और 1915–16 में 23 डकैतियां तथा 9 हत्याएं हुईं। बाघा जतीन ने फ़ोर्ट विलियम की रक्षा के लिए तैनात 16 वीं राजपूत राइफ़ल्स के जवानों के साथ मिलकर उस पर अधिकार करने तथा रेल यातायात को भंग करने के लिए रेल की पटरियों को उखाड़ने की योजना बनाई। जर्मन हथियारों की खेप लाने के लिए उन्होंने नरेन भट्टाचार्जी को जावा भेजा परन्तु आपसी तालमेल की कमी से योजना निष्फल रही। उड़ीसा के तट पर बालासोर में स्थानीय ग्रामीणों की मदद से बाघाजतीन सितम्बर, 1915 में पुलिस की गोलियों से शहीद हुए।

रासबिहारी बोस तथा सचिन सान्याल ने ग़दर पार्टी के भारत लौटे

सदस्यों के साथ मिलकर भारत में क्रान्तिकारी गतिविधियों को तेज़ करने का प्रयास किया परन्तु इसकी चर्चा अन्य इकाई में की जाएगी। रॉलट कमेटी के आंकड़ों के अनुसार 1906 से 1917 के बीच बंगाल में हत्या या हत्या के प्रयास की 64 तथा डकैती व लूट की 112, बम विस्फोट की 12 और रेलगाड़ी पलटने की 3 वारदातें हुईं। 1917 के शुरू के कुछ महीनों ही 700 लोगों को डिफ़ेन्स ऑफ इण्डिया एक्ट के अन्तर्गत पूछताछ के लिए रोका गया। 1918 के रेग्युलेशन 3 द्वारा क्रान्तिकारी गतिविधियों में लिप्त व्यक्तियों के लिए कठोर दण्ड की व्यवस्था की गई। 1918 के रेग्युलेशन 3 के अन्तर्गत अकेले बंगाल में 100 लोगों को गिरफ़्तार किया गया।

क्रान्तिकारी आतंकवादी आन्दोलन को व्यापक जनाधार कभी नहीं मिला इसलिए अनेक इतिहासकार इसको आन्दोलन नहीं मानते हैं। विभिन्न क्रान्तिकारी दलों में आपसी सम्पर्क व सामन्जस्य न होना, उच्च वर्ग का समर्थन न मिलने के कारण संसाधनों की कमी, इन दलों की गतिविधियों पर नज़र रखने में सरकार के गुप्तचर विभाग की

तत्परता व पकड़े गए क्रान्तिकारियों तथा उनके सहयोगियों को दिए जाने वाले कठोर दण्ड भी महत्वपूर्ण कारण थे। भारतीयों की सामान्यतः शान्तिपूर्ण अहिंसक आन्दोलनों में अभिरुचि भी क्रान्तिकारी आन्दोलनों की असफलता का एक कारण थी। यह सही है कि जनता ने क्रान्तिकारियों को खुलकर कभी अपना सहयोग नहीं दिया लेकिन इस बात से इंकार नहीं किया जा सकता कि क्रान्तिकारियों के अदम्य साहस, उनके निःस्वार्थ देशप्रेम तथा उनकी बलिदान की भावना से जन–मानस में उनके प्रति प्रशंसा और श्रद्धा का भाव जागृत हुआ। युवा पीढ़ी पर क्रान्तिकारियों ने अपनी अमिट छाप छोड़ी। समय–समय पर अनेक उत्साही युवक–युवतियां अपने प्राणों का मोह त्याग कर क्रान्तिकारी आन्दोलन में सम्मिलित होते रहे। समीचीन घटनाओं अथवा समस्याओं पर तुरन्त अमल करने की उनकी प्रवृत्ति ने उन्हें सदैव राष्ट्रीय आन्दोलन की मुख्य धारा से जोड़े रखा।

9.6 बंगाल से इतर क्षेत्रों में क्रान्तिकारी आन्दोलन का दूसरा चरण

रासबिहारी बोस तथा सुधीन्द्रनाथ सान्याल ने पंजाब, दिल्ली तथा संयुक्त प्रान्त तक गुप्त क्रान्तिकारी ठिकाने स्थापित किए। 23 दिसम्बर, 1912 को देश की नई राजधानी दिल्ली में प्रवेश करते हुए, हाथी पर सवार गवर्नर–जनरल लॉर्ड हार्डिंग के जुलूस पर बम फेंका गया। हार्डिंग बच गया, उसे मामूली चोटें आईं पर उसका सहायक मारा गया। दिल्ली षडयंत्र के इस मामले के अंतर्गत 13 लोगों को गिरफ़्तार किया गया। अभियुक्तों में से अमीरचन्द, अवध बिहारी, बालमुकुंद और बसंत बिहारी बोस को फांसी दी गई जबकि रास बिहारी बोस बचकर जापान चले गए।

प्रथम विश्व युद्ध से पूर्व पंजाब में उग्रराष्ट्रवादी विचार धारा के विकास ने क्रान्तिकारी गतिविधियों को बढ़ावा दिया। 20 जुलाई, 1913 को क्रान्तिकारियों द्वारा स्वतन्त्रता पर एक पुस्तिका का वितरण किया गया और प्राप्तकर्ताओं से यह निवेदन किया गया कि इसको दूसरों तक अवश्य पहुंचाएं। इस पुस्तिका की प्रथम पंक्ति थी –

जागो, उठो, और तब तक रुको नहीं जब तक कि लक्ष्य की प्राप्ति न हो जाए।

इस पुस्तिका में भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस की उपादेयता और उसके राष्ट्रीय महत्व को बीते दिनों की बात बताया गया था। शोषक, दमनकारी और फूट डाल कर शासन करने की नीति अपनाने वाली औपनिवेशिक ब्रिटिश सरकार से सुधार की आशा करना या उससे उनकी भीख मांगना अब राष्ट्रवादियों को स्वीकार नहीं था क्योंकि उन्होंने स्वशासन और फिर स्वतन्त्रता को अपना लक्ष्य बना लिया था। इस पुस्तिका में लोकमान्य तिलक, लाला हरदयाल तथा महर्षि अरबिन्दो के साथ अंग्रेज़ी सरकार द्वारा किए गए व्यवहार की निन्दा की गई थी। पुस्तिका में सभी धर्मावलम्बियों से स्वतन्त्रता संग्राम में प्रविष्ट होने की अपील की गई थी। आधुनिक ग्रीस, आयरलैण्ड तथा इटली में गुप्त संगठनों ने जिस प्रकार अपने–अपने देशों में स्वतन्त्रता की अलख जगाई थी , उसी प्रकार भारत में भी इसको प्रज्वलित किया जा सकता था। इस पुस्तिका में यह कहा गया था कि अगर हर भारतीय एक–एक फ़िरंगी को मारने का प्रण कर लेता तो इन एक लाख विदेशियों के उन्मूलन में नाम मात्र का समय लगता। आवश्यकता थी तो बस दृढ़ इच्छा शक्ति, अदम्य साहस तथा मातृभूमि के लिए बलिदान हो जाने की भावना की। इस प्रकार क्रान्तिकारी आन्दोलन के दूसरे चरण में धर्मनिर्पेक्षता के सिद्धान्त ने धार्मिक उन्माद का स्थान ले लिया था।

लाला हरदयाल ने अमेरिका में ग़दर पार्टी का गठन किया था। ग़दर पार्टी की क्रान्तिकारी गतिविधियों की चर्चा तथा राजा महेन्द्र प्रताप सिंह द्वारा काबुल में स्वतन्त्र भारत की पहली अनन्तिम सरकार के गठन तथा हिजज्त आन्दोलन के रेशमी रूमाल षडयन्त्र की चर्चा अन्यत्र की जाएगी। ग़दर पार्टी का पंजाब में व्यापक प्रभाव था। 1914 में कामागाटामारू जहाज त्रासदी से बचकर पंजाब लौटने वाले सिक्खों ने 1914 –1915 के दौरान अनेक क्रान्तिकारी गतिविधियां कीं। अंग्रेज़ सरकार विश्वयुद्ध में व्यस्त थी, उसकी अधिकांश सेना भी भारत से बाहर थी और क्रान्तिकारी इसका लाभ उठाना चाहते थे। इन्होंने डकैतियां डालीं, पुलिस अधिकारियों की हत्याएं कीं तथा पंजाब, कानपुर और मेरठ की सैनिक टुकड़ियों में क्रान्तिकारी साहित्य का प्रचार व उसका वितरण किया। 21 जुलाई, 1915 को सैनिक विद्रोह की तिथि निश्चित की गई किन्तु एक साथी की गद्दारी के कारण सरकार को इसकी खबर हो गई। करतार सिंह सरावा तथा विष्णु पिंगले पकड़े गए किन्तु रासबिहारी बोस बच कर निकल गए। सरकार ने

इनकी गतिविधियों पर नियन्त्रण रखने के लिए 1915 में 'डिफ़ेन्स ऑफ इण्डिया एक्ट' पारित किया जिसमें सरकार को किसी भी व्यक्ति को पूछताछ करने के लिए रोकने का अधिकार प्राप्त हो गया। सरकार द्वारा नियुक्त विशिष्ट न्यायाधिकरण ने बीस लोगों को मृत्युदण्ड, 58 को आजन्म कारावास और 58 को अल्प अवधि की कारावास के दण्ड सुनाए। इस काल में सरकार किसी भी मूल्य पर आतंकवादी गतिविधियों को सहन नहीं कर सकती थी। 1917 में रूस में हुई बोल्शेविक क्रान्ति का प्रभाव भी भारतीय क्रान्तिकारियों पर पड़ने लगा था जिससे क्रान्ति का जनाधार विस्तृत हो सकता था इन आशंकाओं के कारण सरकार का दमनचक्र और भी कठोर हो गया। तमिल कवि सुब्रमनिय भारती ने बोल्शेविक क्रान्ति का स्वागत किया था। प्रथम विश्वयुद्ध के बाद सरकार पहले से अधिक सुदृढ़ एवं सशक्त हो गई जिसके कारण क्रान्तिकारी आतंकवाद के दमन के लिए उसने और भी कठोर उपाय अपनाए। इसकी चर्चा अन्यत्र की जाएगी। हम कह सकते हैं कि क्रान्तिकारी आतंकवाद के दूसरे चरण में क्रान्तिकारियों ने स्वतन्त्र राष्ट्र के निर्माण हेतु कोई ठोस योजना तो नहीं बनाई किन्तु आत्मसम्मान, राष्ट्रप्रेम की भावना और स्वतन्त्रता आन्दोलन को एक नई रणनीति, एक नई दिशा और नई ऊर्जा प्रदान की और ब्रिटिश सरकार के लिए मुसीबतों का पहाड़ खड़ा करने में पर्याप्त सफलता प्राप्त की।

स्व मूल्यांकन हेतु प्रश्न

निम्नलिखित विषयों पर संक्षिप्त टिप्पणी लिखिए:

1. (क) दिसम्बर, 1912 का दिल्ली षडयन्त्र।

(ख) बाघा जतीन का क्रान्तिकारी आन्दोलन में योगदान।

2. नीचे लिखे प्रश्नों के उत्तर दीजिए।

(i) अंग्रेज़ी सरकार ने क्रान्तिकारियों के दमन के लिए डिफ़ेन्स ऑफ़ इण्डिया एक्ट कब पारित किया?

(ii) क्या भारतीय क्रान्तिकारियों ने पाश्चात्य देशों में हुई क्रान्तियों से प्रेरणा प्राप्त की थी?

9.7 सार संक्षेप

भारत में क्रान्तिकारी चरमपंथ का प्रारम्भ हम उन्नीसवीं शताब्दी के अंतिम दशक से मान सकते हैं। वीर सावरकर द्वारा लन्दन में स्थापित अभिनव भारती की भारत में गुप्त शाखाएं स्थापित कीं। 1906 में पुलिनबिहारी दास ने ढाका में अनुशीलन समिति की स्थापना की। *जुगान्तर, बंदे मातरम्,सांध्य* क्रान्तिकारी पत्र थे। हेमचन्द कानूनगो ने मानिकतल्ला में एक बम बनाने की फ़ैक्ट्री लगाई। 30 अप्रैल, 1908 को खुदीराम बोस तथा प्रफुल्ल चाकी ने मुज़फ़्फरपुर के अत्याचारी प्रेसीडेन्सी मैजिस्ट्रेट किंग्सफ़ोर्ड की हत्या का असफल प्रयास किया। खुदीराम बोस को फांसी दी गई। 1911 में बंगाल विभाजन को रद्द किए जाने के फ़ैसले का श्रेय भी आंशिक रूप से क्रान्तिकारियों को दिया जा सकता है।

गणेश सावरकर को देशभक्तिपूर्ण गीतों की रचना करने के अपराध में जज जैक्सन द्वारा अण्डमान द्वीप में निर्वासन की सज़ा सुनाई गई। सरदार अजीत सिंह ने लाहौर में *अन्जुमन–ए– मोहिबान–ए–वतन* की स्थापना की और *भारतमाता* पत्र निकाला। तिरुनवेल्ली में क्रान्तिकारी आतंकवाद के प्रसार से सरकार चिन्तित थी। 23 दिसम्बर, 1912 को देश की नई राजधानी दिल्ली में गवर्नर–जनरल लॉर्ड हार्डिंग के जुलूस पर बम फेंका गया। इस मामले के अंतर्गत चार क्रान्तिकारियों को फांसी दी गई। जुगान्तर दल के बाघा जतीन ने फ़ोर्ट विलियम पर अधिकार करने की योजना बनाई। रॉलट कमेटी के आंकड़ों के अनुसार 1906 से 1917 के बीच बंगाल में हत्या या हत्या के प्रयास की 64 तथा डकैती व लूट की 112 वारदातें हुईं।

ग़दर पार्टी का पंजाब में व्यापक प्रभाव था। अंग्रेज़ सरकार जब प्रथम विश्वयुद्ध में व्यस्त थी तब उसकी अधिकांश सेना भारत से बाहर थी। क्रान्तिकारी इसका लाभ उठाना चाहते थे। 1917 में रूस में हुई बोल्शेविक क्रान्ति का प्रभाव भी भारतीय क्रान्तिकारियों पर पड़ने लगा था। क्रान्तिकारी चरमपंथ के दूसरे चरण में क्रान्तिकारियों ने राष्ट्रीय आन्दोलन को एक नई दिशा और नई ऊर्जा प्रदान की।

9.8 पारिभाषिक शब्दावली

मातृ सम्प्रदाय: मातृभूमि को अपनी माँ के समान महत्व व आदर देने वाला दल।

हिन्दूधर्म रक्षिणी सभाः हिन्दू धर्म की रक्षा करने वाली सभा।
उग्र हिन्दूवादः हिन्दू राष्ट्रवाद की समर्थक विचारधारा।
वितृष्णाः घृणा।
अन्जुमन–ए–मोहिबान–ए–वतनः देशभक्तों की सभा।
फिरंगीः अंग्रेज़।

9.9 .सन्दर्भ ग्रंथ

ताराचन्दः *भारतीय स्वतन्त्रता आन्दोलन का इतिहास* (भाग 3), नई दिल्ली, 1984
एच0 चक्रबर्ती – *पॉलिटिकल प्रोटैस्ट इन बैंगालः बॉयकॉट एण्ड टैरेरिज़्म, 1905–18*, कलकत्ता, 1992
मजूमदार, आर0 सी0 (सम्पादक) – *स्ट्रगल फ़ॉर फ्रीडम*, बम्बई, 1969
बोस, एन0 एस0 – *दि इण्डियन अवेकेनिंग एण्ड बैंगाल*, कलकत्ता, 1976
सरकार, सुमीत – *स्वदेशी मूवमेन्ट इन बैंगाल*, नई दिल्ली, 1973
चन्द्रा, बिपन – *नेशनलिज़्म एण्ड कोलोनियलिज़्म इन मॉडर्न इण्डिया*, नई दिल्ली, 1979

9.10 स्व मूल्यांकित प्रश्नों के उत्तर

1. (क) देखिए 9.3.2 बंगाल विभाजन के विरोध में क्रान्तिकारी गतिविधियां।
(ख) देखिए 9.3.1 बंगाल तथा महाराष्ट्र में प्रारम्भिक क्रान्तिकारी गतिविधियां।
2. (i) चापेकर बन्धु दामोदर व बालकृष्ण।
(ii) वीर सावरकर ने।
(क) देखिए 9.5 बंगाल में क्रान्तिकारी आन्दोलन का दूसरा चरण।
(ख) देखिए 9.5 बंगाल में क्रान्तिकारी आन्दोलन का दूसरा चरण।
2. (i) सन् 1915 में।
(ii) हां की थी।

9.11 अभ्यास प्रश्न

1. *आनन्द मठ* उपन्यास किस प्रकार क्रान्तिकारियों के लिए प्रेरणा स्रोत बना?
2. बंगाल विभाजन के विरोध में अनुशीलन समिति की गतिविधियों का वर्णन कीजिए।
3. बंगाल में क्रान्तिकारी आन्दोलन में *जुगान्तर* पत्र की भूमिका का आकलन कीजिए।
4. क्रान्तिकारी आन्दोलन में सरदार अजीत सिंह के योगदान का मूल्यांकन कीजिए।
5. लाला हरदयाल द्वारा ब्रिटिश भारतीय सरकार का तख्ता पलटने के लिए क्या प्रयास किए गए?

इकाई दस : प्रथम विश्वयुद्ध, रूसी क्रान्ति तथा भारतीय राष्ट्रीय आन्दोलन

10.1 प्रस्तावना

10.2 इकाई के उद्देश्य

10.3 प्रथम विश्वयुद्ध का इतिहास में महत्व

10.3.1 प्रथम विश्वयुद्ध का विश्व–राजनीति पर प्रभाव

10.3.2 प्रथम विश्वयुद्ध का भारतीय राजनीति तथा उसकी अर्थ–व्यवस्था पर प्रभाव

10.3.3 लखनऊ समझौता

10.3.4 मॉन्टेग्यू की घोषणा

10.3.5 चम्पारन तथा खेडा सत्याग्रह

10.3.6 विश्वयुद्ध के दौरान क्रान्तिकारी गतिविधियां

10.4 1917 की बोल्शेविक क्रान्ति का विश्व इतिहास में महत्व

10.4.1 1917 की रूस की क्रान्ति

10.4.2 रूस की क्रान्ति का भारतीय राष्ट्रीय आन्दोलन पर प्रभाव

10.5 सार संक्षेप

10.6 पारिभाषिक शब्दावली

10.7 सन्दर्भ ग्रंथ

10.8 स्व मूल्यांकित प्रश्नों के उत्तर

10.8 अभ्यास प्रश्न

10.1 प्रस्तावना

प्रथम विश्वयुद्ध के प्रारम्भ में मित्र राष्ट्रों ने यह घोषणा की थी कि वो लोकतान्त्रिक मूल्यों की रक्षार्थ युद्ध में भाग ले रहे हैं। इससे भारतीयों के मन में यह आशा जगी कि अंग्रेज़ सरकार उन्हें स्वशासन प्रदान कर देगी। उन्होंने विश्वयुद्ध में तन–मन–धन से सरकार का साथ दिया। इस इकाई में श्रीमती एनीबीसेन्ट तथा लोकमान्य तिलक के होमरूल आन्दोलन, कांग्रेस–मुस्लिम लीग में हुए लखनऊ समझौते तथा मॉन्टेग्यू की घोषणा और ब्रिटिश सरकार की परेशानियों का लाभ उठाकर सरकार का तख्ता पलटने के क्रान्तिकारियों के प्रयासों से भी आपको अवगत कराया जाएगा।

1917 की रूस में हुई बोल्शेविक क्रान्ति का भारतीय राष्ट्रीय आन्दोलन पर भी प्रभाव पड़ा था। समाजवाद, साम्यवाद तथा धर्मनिर्पेक्षता के सिद्धान्तों ने भारतीय राजनीति को एक नई दिशा दी थी। इस इकाई में आपको भारतीय राष्ट्रीय आन्दोलन पर 1917 की रूसी क्रान्ति के प्री जानकारी दी जाएगी।

10.2 इकाई के उद्देश्य

1914 से 1918 तक चले प्रथम विश्वयुद्ध ने समस्त विश्व में एक राजनीतिक परिवर्तन की प्रक्रिया प्रारम्भ कर दी थी। विश्वयुद्ध के प्रारम्भ में ही मित्र राष्ट्रों ने इस बात की घोषणा की थी कि वो लोकतान्त्रिक मूल्यों की रक्षा करने के लिए युद्ध में भाग ले रहे थे। प्रथम विश्वयुद्ध ने समस्त विश्व में राष्ट्रवाद की लहर उत्पन्न कर दी थी। बीसवीं शताब्दी के दूसरे दशक में भारतीय राजनीति को अन्तर्राष्ट्रीय परिस्थितियों ने अत्यधिक प्रभावित किया था। विश्वयुद्ध ने भारत की अर्थ–व्यवस्था तथा उसकी राजनीति पर गहरा प्रभाव छोड़ा तथा अंग्रेज़ शासकों को भी अपने राजनीतिक दमन चक्र को आंशिक विराम देना पड़ा और विश्वयुद्ध में अपने सहयोगी राष्ट्र भारत के निवासियों की राजनीतिक एवं संवैधानिक मांगों पर सहानुभूतिपूर्वक विचार करना पड़ा।

1917 की रूस की बोल्शेविक क्रान्ति ने निरंकुश राजतन्त्र तथा औपनिवेशिक शासनों के औचित्य पर प्रश्नचिह्न लगा दिया था और पूरे विश्व में साम्यवादी व समाजवादी विचारधारा की महत्ता स्थापित कर दी थी। भारत भी इससे अछूता नहीं रहा। इस इकाई में रूसी क्रान्ति की प्रमुख उपलब्धियों की चर्चा की जाएगी और भारतीय राजनीति पर उसके द्वारा पड़ने वाले प्रभाव की भी आपको जानकारी दी जाएगी इस इकाई को पढ़कर आप जानकार प्राप्त करेंगे:

- विश्व राजनीति में प्रथम विश्वयुद्ध के प्रभाव के विषय में।
- भारत में मुसलमानों के राष्ट्रीय आन्दोलन की मुख्य धारा में प्रवेश के विषय में।
- भारतीय क्रान्तिकारियों द्वारा विश्व युद्ध में ब्रिटिश भारतीय सरकार की कठिनाइयों का लाभ उठाकर विदेशी सहायता से उसका तख्ता पलटने के प्रयास के विषय में।
- अन्तर्राष्ट्रीय परिस्थितियों में बदलाव के कारण भारत की औपनिवेशिक सरकार की नीतियों में सुधार की प्रवृत्ति के परिप्रेक्ष्य में मॉन्टेग्यू की घोषणा के विषय में।
- बोल्शेविक क्रान्ति की पृष्ठभूमि, उसके सिद्धान्तों तथा उसके विश्व–व्यापी प्रभाव के विषय में।
- बोल्शेविक क्रान्ति के कारण भारत में साम्यवादी, समाजवादी एवं क्रान्तिकारी विचारधारा के विकास के विषय में।

10.3 प्रथम विश्वयुद्ध का इतिहास में महत्व

10.3.1 प्रथम विश्वयुद्ध का विश्व–राजनीति पर प्रभाव

1914 से 1918 तक चले प्रथम विश्व युद्ध का विश्व इतिहास में अत्यधिक महत्व है। इस युद्ध में मित्र राष्ट्रों की ओर से इंग्लैण्ड, फ्रांस, इटली, रूस, अमेरिका, जापान, पुर्तगाल, ग्रीस आदि देश तथा मध्य यूरोपीय शक्तियों में जर्मनी, ऑस्ट्रिया–हंगरी, तुर्की और बुल्गारिया शामिल थे। इस युद्ध में हुए विनाश और धन के अपव्यय की इससे पहले कल्पना भी नहीं की जा सकती थी। प्रथम विश्वयुद्ध में 2 करोड़ से अधिक लोग मारे गए थे। प्रथम विश्वयुद्ध ने समस्त विश्व में एक राजनीतिक परिवर्तन की प्रक्रिया प्रारम्भ कर दी। जहां इसने निरंकुश राजतन्त्र की सदियों से चली आ रही सर्वमान्य परम्परा को एक गहरा आघात पहुंचाया था वहीं इसने साम्राज्यवाद तथा उपनिवेशवाद के विस्तार की गति को भी धीमा कर दिया था। प्रथम विश्वयुद्ध से पहले जर्मनी, इंग्लैण्ड आदि देशों में अति राष्ट्रवाद के विकास के कारण अन्तर्राष्ट्रीय क्षेत्र में अनावश्यक तनाव बढ़ने लगा था। प्रत्येक जाति में आत्मगौरव की भावना अपनी पराकाष्ठा पर पहुंच गई थी। श्वेत जातियां केवल खुद को सभ्य मानकर बाकी दुनिया को सभ्य बनाने का दायित्व वहन करना चाहती थीं। 'व्हाइट मैन्स बर्डेन' की अवधारणा उनके इसी अहंकार को प्रदर्शित करती थी। जर्मन खुद को आर्य सभ्यता का एकमात्र प्रतिनिधि मानते थे और उसका प्रभुत्व सारी दुनिया में स्थापित करना चाहते थे। फ्रांसीसी स्वयं को सबसे अधिक सुसंस्कृत मानते थे। विश्वयुद्ध ने अतिराष्ट्रवाद और जातीय अहंकार के हानिकारक और विनाशकारी प्रभाव को दर्शाया था। विश्वयुद्ध के प्रारम्भ में ही मित्र राष्ट्रों ने इस बात की घोषणा की थी कि वो लोकतान्त्रिक मूल्यों की रक्षा करने के लिए युद्ध में भाग ले रहे थे। प्रथम विश्वयुद्ध ने समस्त विश्व में राष्ट्रवाद की लहर उत्पन्न कर दी थी। अब अनेक परतन्त्र राष्ट्र स्वतन्त्रता के स्वप्न को साकार करने की स्थिति में

आ गए थे और जो देश अब भी परतन्त्र थे वो भी अब अपने लिए पहले से अधिक अधिकारों की मांग करने लगे थे।

10.3.2 प्रथम विश्वयुद्ध का भारतीय राजनीति तथा उसकी अर्थ–व्यवस्था पर प्रभाव

प्रथम विश्वयुद्ध से पूर्व अंग्रेज़ शासक भारत में क्रान्तिकारी आतंकवाद तथा उग्र राष्ट्रवाद को कुचलने के लिए कटिबद्ध थे। लोकमान्य तिलक, लाला लाजपत राय, बिपिन चन्द्र पाल तथा अरबिन्दो जैसे उग्र राष्ट्रवादियों के साथ उनका कठोर व्यवहार इसका प्रमाण था। लोकमान्य तिलक जैसे वरिष्ठ, सम्माननीय राजनीतिक नेता को दीर्घ काल के लिए माण्डले निर्वासन अत्यन्त निर्मम था। विश्वयुद्ध के दौरान क्रान्तिकारी आतंकवाद के दमन के लिए सरकार और भी तत्पर हो गई किन्तु उग्र राष्ट्रवादियों के प्रति उसके व्यवहार में नरमी आई। लोकमान्य तिलक को उनके निर्वासन की अवधि पूर्ण होने से पहले ही मुक्त कर दिया गया और उन पर भारतीय राजनीति में अग्रिम भूमिका निभाने पर कोई प्रतिबन्ध भी नहीं लगाया गया।

भारतीयों ने तन–मन–धन से विश्वयुद्ध में अंग्रेज़ों का साथ दिया। प्रथम विश्वयुद्ध (1914–18) के दौरान राष्ट्रीय आन्दोलन की प्रकृति में अन्तर आया। पहली बार भारत एक गुलाम देश से शासन करने वाले देश के सहयोगी के रूप में उभर कर आया और इसके कारण भारतवासियों में भी अपनी राजनीतिक, आर्थिक तथा संवैधानिक मांगों को सरकार के सामने उठाते हुए एक नया आत्मविश्वास और एक नया उत्साह दिखाई दिया। याचक की प्रवृत्ति अब लुप्त हो चुकी थी और साथ ही इस काल में भारतीय राजनीति के अनेक शीर्षस्थ नेताओं ने धार्मिक उग्रवाद व संकुचित राष्ट्रवाद को तिलांजलि देकर साम्प्रदायिक सद्भाव तथा राष्ट्रीय एकता को महत्व दिया था। इस काल में भारतीय राजनीति में अन्तर्राष्ट्रीय क्षेत्र में हो रही गतिविधियों के प्रति जागरूकता के दर्शन हुए और साथ ही प्रथम विश्वयुद्ध में अपने सहयोगी देश इंग्लैण्ड से परिस्थितियों का लाभ उठाकर सुधार के लिए अधिक अधिकार के साथ आवाज़ उठाने का साहस भी दिखाई दिया।

विश्वयुद्ध में भारतीय संसाधनों का युद्ध के लिए खुलकर उपयोग हो रहा था। पहली बार निम्न वर्ग के साथ मध्य वर्ग भी आर्थिक संकट के दौर से गुज़र रहा था। युद्ध के लिए अधिक से अधिक भारतीय सैनिकों की भर्ती के लिए जहां एक ओर आर्थिक लाभ, ज़मीन आदि का लालच दिया जा रहा था वहां दूसरी ओर ज़ोर–ज़बर्दस्ती भी की जा रही थी। पंजाब में लेफ़्टिनेन्ट गवर्नर माइकिल ओड वेयर ने लम्बरदारों के माध्यम से ग्रामवासियों पर दबाव डलवाया। अकेले पंजाब से 350000 जवानों की भर्ती की गई। गुर्जरवाला जिले में भर्ती के लिए बल प्रयोग किए जाने से जनाक्रोश में वृद्धि हुई और यह वहां रौलट एक्ट के विरुद्ध आन्दोलन की तीव्रता से स्पष्ट भी हो गया। युद्ध में भारतीय सैनिकों की संख्या 12 लाख तक पहुंच गई थी। दक्षिण भारत में जब अकाल पड़ा हुआ था और भुखमरी फैली थी तब भारत से चारा मैसोपोटामिया भेजा जा रहा था। भारतीय जनता पर करों का बोझ बढ़ता जा रहा था। सैनिक व्यय में तीन गुनी वृद्धि हो चुकी थी। विश्वयुद्ध की समाप्ति तक भारत का युद्ध पर कुल खर्च 1460 लाख पॉन्ड हुआ था। युद्ध के कारण राष्ट्रीय ऋण में 30 प्रतिशत की वृद्धि हुई थी। युद्ध के खर्चे के लिए भारी कर्ज़ा भी लिया जा रहा था। महंगाई बढ़ती जा रही थी। किसानों तथा मज़दूरों में असन्तोष भी बढ़ता जा रहा था। विश्वयुद्ध के दौरान बढ़ती हुई आवश्यकताओं को देखते हुए सरकार ने भी भारतीय उद्योग तथा व्यापार के विकास में बाधा डालने की नीति का परित्याग कर दिया था परन्तु युद्ध के खर्चे को पूरा करने के लिए भारतीय उद्योग एवं व्यापार पर करों का अतिरिक्त बोझ डालना आवश्यक समझा गया। भारतीय उद्योगपति तथा व्यापारी भारत में स्वशासन की स्थापना को अपने लिए लाभकारी मानते थे अतः वो भी स्वराज्य और स्वशासन की मांग को अपना सहयोग देना चाहते थे।

10.3.3 लखनऊ समझौता

1906 में मुस्लिम लीग की स्थापना तथा 1909 के इण्डियन काउंसिल्स एक्ट में मुसलमानों को साम्प्रदायिक प्रतिनिधित्व दिए जाने के बाद देश में साम्प्रदायिक तनाव बढ़ गया था। परन्तु बीसवीं शताब्दी के दूसरे दशक में स्थितियां बदल रही थीं। अन्तर्राष्ट्रीय क्षेत्र में इंग्लैण्ड और तुर्की के सम्बन्धों में दरार पड़ चुकी थी। भारत के अधिकांश मुसलमान तुर्की के सुल्तान को अपना खलीफ़ा मानते थे और उसके साथ भावनात्मक रूप से जुड़े हुए थे।

तुर्की के सुल्तान की राजसत्ता को कमज़ोर करने की कोशिश तथा मुसलमानों के पवित्र तीर्थस्थलों मक्का, मदीना, येरुशलम आदि की सुरक्षा पर मण्डराते खतरे ने भारतीय मुसलमानों की ब्रिटिश स्वामिभक्ति तथा स्वयं को भारतीय राष्ट्रीय आन्दोलन से पृथक रखने की नीति के औचित्य पर प्रश्नचिह्न लगा दिया था। प्रथम विश्वयुद्ध में तुर्की का जर्मनी और ऑस्ट्रिया के पक्ष में युद्ध में शामिल होना भी भारतीय मुसलमानों और ब्रिटिश सरकार के सम्बन्धों के बीच दरार डालने में सहायक हुआ। इसका फ़ायदा उठाकर कांग्रेस और मुस्लिम लीग को एक राजनीतिक मंच पर लाने के प्रयास तेज़ हो गए। माण्डले से लौटने के बाद लोकमान्य तिलक भी भारतीय राष्ट्रीय आन्दोलन में मुसलमानों की सहभागिता के इच्छुक थे।

मुहम्मद अली जिन्ना और वज़ीर हसन जैसे मुसलमान भी कांग्रेस तथा मुस्लिम लीग को एक सूत्र में बांधना चाहते थे। यह समय भेदभाव भुलाकर स्वशासन के लक्ष्य को प्राप्त करने का था। 1916 में लखनऊ में नरमपंथी, गरमदल, होमरूल समर्थक तथा मुस्लिम लीग एकत्र हुए और उन्होंने सर्वसम्मति से एक निर्णय लिया जिसको लखनऊ समझौते के नाम से जाना जाता है। इस समझौते के मुख्य बिन्दु थे –

मुसलमानों को प्रांतीय विधानपरिषदों में विशिष्ट प्रतिनिधित्व प्रदान किया जाएगा।

इम्पीरियल लेजिसलेटिव काउंसिल में निर्वाचित सदस्यों में से एक तिहाई मुसलमान होंगे।

सरकार भारतीयों को स्वशासन प्रदान करे ।

यह समझौता हिन्दू–मुस्लिम एकता का प्रतीक था। दोनों दलों ने समझौते के लिए अपने रुख में कुछ बदलाव किया। मुस्लिम लीग ने चुनाव तथा बहुमत के शासन और कांग्रेस ने मुसलमानों की पृथक प्रतिनिधित्व की मांग मान ली। इतिहासकार इस समझौते की इसलिए आलोचना करते हैं कि कांग्रेस ने एकता के नाम पर मुस्लिम तुष्टीकरण की नीति अपनाते हुए मुस्लिम लीग की पृथक प्रतिनिधित्व की मांग स्वीकार कर ली। आगे चलकर इसके भयंकर परिणाम हुए, इसने अलगाववादी ताकतों और सरकार की बांटो और राज करो की नीति को बल प्रदान किया।

10.3.4 मॉन्टेग्यू की घोषणा

प्रथम विश्वयुद्ध में मेसोपोटामिया में ब्रिटिश सेना की तुर्कों से पराजय से क्षुब्ध मॉन्टेग्यू ने भारतीय सहयोग की युद्ध में उपयोगिता को देखते हुए भारत को स्वशासन प्रदान किया जाना समय की आवश्यकता बताया। 20 जुलाई, 1917 को वह भारत सचिव बना और 20 अगस्त, 1917 को उसने ऐतिहासिक घोषणा की –

हिज़ मैजेस्टी की सरकार तथा भारत की सरकार की यह नीति है कि प्रशासन की हर शाखा में भारतीयों को धीरे–धीरे अधिक से अधिक भागीदारी दी जाए और स्वायत्त शासित संस्थाओं का इस प्रकार क्रमिक विकास किया जाए कि ब्रिटिश साम्राज्य के अभिन्न अंग के रूप में भारत में उत्तरदायी सरकार की स्थापना हो जाए।

होमरूल आन्दोलन की स्वशासन की मांग को सरकार को आंशिक रूप से स्वीकार करना पड़ा। भारतीय संवैधानिक इतिहास में मॉन्टेग्यू की घोषणा को मील का पत्थर माना जाता है। इस घोषणा के बाद सरकार के लिए भारतीयों को स्वशासन प्रदान न करना महंगा पड़ सकता था। पर इस घोषणा में यह स्पष्ट नहीं किया गया था कि भारतीयों को स्वशासन कब, कितना और किस प्रकार प्रदान किया जाएगा। आगे चल कर सुधारों के विषय में यही अस्पष्टता भारतीयों के व्यापक असन्तोष का कारण बनी। गांधीजी द्वारा 1920 के असहयोग आन्दोलन में एक वर्ष के भीतर स्वराज्य प्राप्त करने का लक्ष्य भारतीयों के इसी असन्तोष को प्रतिबिम्बित करता है।

10.3.5 चम्पारन तथा खेडा सत्याग्रह

दक्षिण अफ्रीका से गांधीजी की भारत वापसी जनवरी, 1915 में हुई। भारत में उनका पहला आन्दोलन 1917 में बिहार में नील की खेती करने वाले किसानों के अधिकारों को लेकर किया जाने वाला चम्पारन आन्दोलन था। गांधीजी के प्रयासों से नील के बागानों के मालिकों के किसानों पर किए जाने वाले अत्याचार रोकने के लिए 1917 का चम्पारन एग्रेरियन बिल प्रस्तावित किया गया और दमनकारी तिनकथिया प्रणाली रद्द कर दी गई।

1918 में गुजरात के किसानों के हितों की रक्षार्थ गांधीजी ने खेड़ा आन्दोलन का नेतृत्व किया। एक अपर्याप्त समझौते से इस आन्दोलन की समाप्ति हुई किन्तु यह संकेत मिल गया कि आने वाले समय में भारतीय राजनीतिक मंच पर गांधीजी की भूमिका कितनी महत्वपूर्ण होने वाली है।

10.3.6 विश्वयुद्ध के दौरान क्रान्तिकारी गतिविधियां

बीसवीं शताब्दी के प्रारम्भ में ईसाई क्षेत्रों में स्वतन्त्रता प्राप्त करने के लिए तुर्की के साम्राज्य के विरुद्ध बाल्कन युद्ध हुए। प्रथम विश्वयुद्ध में तुर्की के जर्मनी तथा ऑस्ट्रिया के साथ युद्ध में शामिल होने से अफ़गानिस्तान सहित अनेक मुस्लिम देशों में अंग्रेज़ विरोधी वातावरण विकसित होने लगा था। प्रथम विश्वयुद्ध के दौरान भारतीय सेना के अंग्रेज़ सैनिकों में से अधिकांश लड़ने के लिए बाहर भेज दिए गए थे। एक समय तो ऐसा आया था जब भारत में उनकी संख्या मात्र 15000 रह गई थी। क्रान्तिकारियों को तुर्की और जर्मनी से वित्तीय सहायता मिलने की भी आशा थी। 1915 में बर्लिन में वीरेन्द्रनाथ चट्टोपाध्याय, भूपेन दत्त, लाला हरदयाल आदि ने जर्मन विदेश मन्त्रालय की सहायता से 'इण्डियन इण्डिपेन्डेन्स कमेटी' की स्थापना की। भारत–ईरान सीमा पर कबीलियाइयों के सहयोग से भारत की अंग्रेज़ सरकार को उलटने की योजना बनाई गई। 1915 में देवबन्द के मुल्ला महमूद अल हसन ने भारत से अंग्रेज़ों को निष्कासित करने के लिए अपने शिष्य उबैदुल्ला सिन्धी को काबुल के अमीर का सहयोग प्राप्त करने के लिए काबुल भेजा। राजा महेन्द्र प्रताप तथा बरकतुल्ला भी उसके साथ थे। दिसम्बर, 1915 में राजा महेन्द्र प्रताप ने स्वतन्त्र भारत की अनन्तिम सरकार की काबुल में स्थापना की और उन्होंने सहयोग प्राप्ति के लिए अपने दल तुर्की, रूस तथा जापान भेजे। काबुल में पंजाब से आए सैनिकों से एक क्रान्तिकारी सेना के गठन के प्रयास किए गए। महमूद अल हसन ने मदीना में हिज़्ब अल्लाह दल का गठन किया। इसकी शाखाएं काबुल, तेहरान तथा कुन्सतुनतुनिया में भी स्थापित की गईं। ब्रिटिश सरकार का तख्ता पलटने की योजना रेशमी रूमाल के अन्तर्गत फ़ीरोज़पुर में सेना के हथियारों पर कब्ज़ा करने की रणनीति असफल रही। असावधानी तथा तालमेल की कमी के कारण रेशमी रूमाल योजना असफल रही।

सोहन सिंह भाकना तथा लाला हरदयाल ने 1913 में अमेरिका के सैनफ़्रांसिसको नगर में ग़दर पार्टी की स्थापना की। इस दल में मुख्यतः सिख व्यापारी तथा श्रमिक थे जो कि ब्रिटिश भारतीय सरकार से इस बात के लिए नाराज़ थे कि वह उन्हें अमेरिका में उनके ऊपर किए जा रहे रंगभेदी व नस्लभेदी अत्याचारों से बचाने के लिए कुछ भी नहीं कर रही है। इस दल ने अपना एक पत्र *ग़दर* निकाला जो कि अरबी–फ़ारसी लिपि तथा गुरुमुखी लिपि में प्रकाशित होता था। इस अंक के पहले अंक में ही भारत में क्रान्ति कर अंग्रेज़ी शासन को उखाड़ फेंकने का संकल्प किया गया था। इस दल का मुख्य लक्ष्य भारतीय क्रान्तिकारियों को ब्रिटिश सत्ता उखाड़ फेंकने के लिए आवश्यक हथियार उपलब्ध कराना था। 29 सितम्बर, 1914 के कामागाटामारू काण्ड से बचे हुए अनेक सिखों ने पंजाब में शरण ली थी। अंग्रेज़ सरकार से क्रुद्ध इस वर्ग ने ग़दर पार्टी का अभियान भारत में सफल करने के लिए अपना योगदान दिया। भारत के विभिन्न भागों में जनता में, और सैनिक छावनियों में विद्रोह भड़काने के लिए प्रचारक भेजे गए। ग़दर पार्टी का प्रभाव भारत के बाहर भी ब्रिटिश विरोधी गतिविधियों में परिणत हो रहा था। सिंगापुर में 15 फ़रवरी, 1915 को पंजाबी मुसलमानों की 5 वीं लाइट इनफ़ैन्ट्री तथा 36 वीं सिख बटालियन ने जमादार चिश्ती खान, जमादार अब्दुल ग़नी और सूबेदार दाउद खान के नेतृत्व में विद्रोह कर दिया गया। विद्रोह को कुचल दिया गया और विद्रोहियों में से 37 को मृत्युदण्ड तथा 41 को आजन्म कारावास दिया गया। 1915 के प्रारम्भ में पंजाब में ग़दर पार्टी द्वारा राजनीतिक उद्देश्य से साहूकारों, महाजनों के घरों पर डकैतियां डाली गईं। लूट करने के साथ डकैती करने वालों ने किसानों के शोषकों की बहियां और कर्जे के अनुबन्ध पत्र भी जला डाले। क्रान्तिकारियों द्वारा 21 फ़रवरी, 1915 को पंजाब में सशस्त्र विद्रोह का दिन निश्चित किया गया। फ़िरोज़पुर, लाहौर और रावलपिण्डी में एक साथ सैनिक छावनियों में विद्रोह की योजना बनाई गई पर सतपाल सिंह की गद्दारी से सरकार को इसका पता चल गया, उसने पार्टी के लगभग सभी प्रमुख नेताओं को गिरफ़्तार कर लिया और उनमें से 17 को फांसी पर चढ़ा दिया। इस योजना में बंगाल के रास बिहारी बोस तथा सचिन सान्याल भी शामिल थे। रासबिहारी बोस तो बचकर जापान चले गए किन्तु सचिन सान्याल पकड़े गए और बाद में उन्हें बनारस व दानापुर में सैनिक छावनियों में विद्रोह की योजना बनाने के आरोप में आजन्म कारावास देकर निर्वासित कर दिया गया। अमेरिका में भी ग़दर पार्टी की गतिविधियां जारी रहीं किन्तु 1917 में अमेरिका के विश्वयुद्ध में प्रवेश के बाद उन पर नियन्त्रण कर लिया गया। सरकार की तत्परता, सदस्यों की ग़द्दारी, साधनों की कमी आदि ग़दर पार्टी की असफलता के कारण थे।

विश्वयुद्ध के दौरान क्रान्तिकारी गतिविधियों को कुचलने के लिए सरकार ने कठोर कदम उठाए और उसकी सक्षम गुप्तचर व्यवस्था तथा क्रान्तिकारियों की असावधानियों के कारण उसे पूर्ण सफलता प्राप्त हुई।

स्व मूल्यांकन हेतु प्रश्न

निम्नलिखित विषयों पर संक्षिप्त टिप्पणी लिखिए:

1. (क) लखनऊ समझौता।

(ख) मॉन्टेग्यू की घोषणा।

2. नीचे लिखे प्रश्नों के उत्तर दीजिए।

(i) ग़दर पार्टी की स्थापना कब और कहां हुई थी?

(ii) चम्पारन आन्दोलन किस वर्ष हुआ?

10.4 1917 की बोल्शेविक क्रान्ति का विश्व इतिहास में महत्व

10.4.1 1917 की रूस की क्रान्ति

फ्रांस के चार्ल्स फुरियेर और सेंट साइमन और इंग्लैण्ड के रॉबर्ट ओवेन उन्नीसवीं शताब्दी के प्रथमार्ध में समाजवादी विचारधारा की नींव डाली थी। 1848 में कार्ल मार्क्स तथा फ्रेडरिक एंजेल्स ने कम्युनिस्ट मैनिफ़ेस्टो का प्रकाशन कर द्वन्द्वात्मक भौतिकवादी दृष्टिकोण प्रस्तुत किया और दुनिया को बताया कि शोषण के विरुद्ध अनवरत संघर्ष करना और अपने अधिकारों की प्राप्ति के लिए सर्वहारा वर्ग को हिंसा का आश्रय लेना सर्वथा उचित है। वर्ग संघर्ष के इस साम्यवादी दर्शन ने समस्त विश्व को प्रभावित किया और इसने पूंजीवाद तथा साम्राज्यवाद और राजतन्त्र की कुत्सित शोषक एवं अन्यायी प्रकृति से सबका परिचय कराया। पुश्किन, गोगोल, चेखव आदि साहित्यकारों ने निरंकुश राजतन्त्र के भ्रष्ट वातावरण का चित्रण किया। इवान तुर्गनेव के उपन्यास *फ़ादर एण्ड सन* में शून्यवाद का प्रतिपादन किया गया। दोस्तोव्सकी के उपन्यास *हाउस ऑफ़ दि डेड* में रूसी जेलों में स्वतन्त्र विचार रखने वाले बुद्धिजीवियों पर किए गए अत्याचारों का वर्णन किया गया।

लियो टॉल्सटॉय के उपन्यास *रिज़रेक्शन* में भ्रष्ट न्याय–व्यवस्था तथा आभिजात्य वर्ग द्वारा सामान्य वर्ग के शोषण का चित्रण किया गया तथा मैक्सिम गोर्की के उपन्यास *मदर* में रूस की 1905 की क्रान्ति में आम जनता की भागीदारी का यथार्थवादी चित्रण किया गया। इन रूसी साहित्यकारों ने ज़ारशाही की विभीषिका का यथार्थवादी चित्रण किया तथा रूस में क्रान्ति हेतु अनुकूल वातावरण बनाने में अपना योगदान दिया।

साइबेरिया में पांच वर्ष निर्वासन में व्यतीत करने के बाद लेनिन ने 'सोशल डेमोक्रैटिक पार्टी' के पत्र *इस्क्रा* का सम्पादन किया। 1902 में प्रकाशित उसकी पुस्तक *व्हाट इज़ टू बी डन* में क्रान्ति की योजना प्रस्तुत की गई। 1905 की क्रान्ति के बाद ज़ार को थोड़े–बहुत सुधार करने के लिए विवश होना पड़ा था परन्तु भ्रष्ट ज़ारिना और तथाकथित संत धूर्त रास्पुटिन के प्रभाव से एक बार फिर रूस में शोषण, दमन और अनाचार का साम्राज्य स्थापित हो गया। गरीब भूखी जनता को उसकी मर्ज़ी के विरुद्ध विश्वयुद्ध में झोंकना ज़ार को महंगा पड़ा। इस विनाशकारी युद्ध में जहां लाखों रूसी सैनिक मारे गए वहां रूस में अकाल और भुखमरी के कारण असन्तोष का ज्वालामुखी क्रान्ति के रूप में फट पड़ा। 1917 में अपनी पुस्तक *इम्पीरियलिज़्म* में लेनिन ने साम्राज्यवाद का पोषण करने वाले प्रथम विश्वयुद्ध में रूस की सहभागिता को रूस के लिए हानिकारक माना।

रूस में हुई 1917 की अक्टूबर क्रान्ति को बोल्शेविक क्रान्ति कहा जाता है। रूसी कैलेण्डर के हिसाब से 27 अक्टूबर को बोल्शेविकों ने लेनिन के नेतृत्व में सत्ता हथिया ली और समाजवादी सरकार की स्थापना की। समाजवादी जनवादी मज़दूर पार्टी के नेतृत्व में हुई इस क्रान्ति ने सर्वहारा वर्ग के प्रभुत्व का मार्ग प्रशस्त किया। बोल्शेविक क्रान्ति ने सामाजिक, आर्थिक तथा राजनीतिक दृष्टि से शोषित समाज को उससे छीने हुए अधिकारों को उसे वापस दिलाने का महान कार्य किया। आने वाले समय के सभी मुक्ति आन्दोलनों पर इसका प्रभाव पड़ा। चीन की महान क्रान्ति को बोल्शेविक क्रान्ति का अगला चरण कहा जा सकता है। विश्व में अधिकांश राजतान्त्रिक सत्ताओं के उन्मूलन का श्रेय भी मूलतः बोल्शेविक क्रान्ति के कारण विकसित सर्वहारा वर्ग की चेतना को दिया जा सकता है। आज कोई भी सभ्य सरकार अपने आम नागरिकों के अधिकारों की उपेक्षा नहीं कर सकती।

10.4.2 रूस की क्रान्ति का भारतीय राष्ट्रीय आन्दोलन पर प्रभाव

साम्यवाद के जनक कार्ल मार्क्स ने बहुत पहले ब्रिटिश भारतीय शासन के शोषक एवं दमनकारी स्वरूप पर प्रकाश डाला था। स्वदेशी आन्दोलन के दौरान भारतीयों ने रूस की 1905 की क्रान्ति का स्वागत किया था। भारत में अब श्रमिक चेतना और श्रमिक संगठन को महत्व दिया जाने लगा था। 1912 में लोकमान्य तिलक की माण्डले जेल से रिहाई के लिए मज़दूरों ने हड़ताल की। इस हड़ताल को भारत में श्रमिक वर्ग में राजनीतिक चेतना के विकास का एक प्रमाण माना जा सकता है। बोल्शेविक क्रान्ति के पूर्णतया सफल होने से पूर्व ही औपनिवेशिक ब्रिटिश भारतीय सरकार को अगस्त, 1917 की मॉन्टेग्यू घोषणा में भारतीयों को स्वशासन दिए जाने का आश्वासन देना पड़ा। भारत में सर्वहारा वर्ग की सर्वांगीर्ण जागृति में बोल्शेविक क्रान्ति का महत्वपूर्ण योगदान रहा और भारतीय राष्ट्रीय आन्दोलन में भी समाजवादी विचारधारा को महत्वपूर्ण स्थान दिलाने में इसकी उल्लेखनीय भूमिका रही। महात्मा गांधी के नेतृत्व में 1917 के चम्पारन व खेडा के किसान आन्दोलन यद्यपि साम्यवादी विचारधारा से प्रेरित नहीं थे परन्तु इन आन्दोलनों पर इसका अप्रत्यक्ष प्रभाव भी नहीं पड़ा हो, यह मानना कठिन है। एन0 सी0 रंगा ने गांधीजी तथा राजेन्द्र प्रसाद पर यह आरोप लगाया था कि चम्पारन के किसानों की आधारभूत समस्याओं के निवारण अर्थात ज़मींदारों के शोषण से उन्हें बचाने के लिए उन्होंने कुछ भी ठोस काम नहीं किया। बम्बई के सूती कपड़ों के मिलों में व्यापक हड़ताल हुई और जनवरी, 1919 तक इसमें 125000 मज़दूर शामिल हो गए। 1919 में ही रॉलट एक्ट के दमनकारी स्वरूप के विरुद्ध मज़दूरों ने भी आन्दोलन किया। 1919 तथा 1920 में हुई श्रमिक हड़तालों ने भारत में बढ़ती हुई श्रमिक चेतना का संकेत दे दिया था। बम्बई, कानपुर, कलकत्ता, शोलापुर, जमशेदपुर, मद्रास तथा अहमदाबाद में मज़दूरों ने अपन अधिकारों को लेकर हड़तालें कीं।

गांधीजी के असहयोग आन्दोलन में किसानों की सहभागिता ने अपने अधिकारों के लिए संघर्ष करने के लिए भी प्रोत्साहित किया। ब्रिटिश भारतीय सरकार भारत में साम्यवादी तथा समाजवादी विचारधारा के प्रसार–प्रचार को हर कीमत पर रोकना चाहती थी। मज़दूर नेताओं की गतिविधियों पर नज़र रखने के लिए उसने गुप्तचर नियुक्त कर रखे थे किन्तु वह अपने प्रयासों में सफल नहीं हो सकी। अक्टूबर, 1920 में 'आल इण्डिया ट्रेड यूनियन कांग्रेस' की स्थापना हुई। इसका प्रथम अधिवेशन 31 अक्टूबर, 1920 को बम्बई में हुआ। 1927 में 'फ़ेडरेशन ऑफ इण्डियन चैम्बर्स ऑफ़ कामर्स एण्ड इण्डस्ट्रीज़' की स्थापना हुई। 1933 में 'आल–इण्डिया ऑर्गनाइज़ेशन ऑफ़ इण्डस्ट्रियल एम्प्लौयर्स' का गठन हुआ।

चन्द्रशेखर आज़ाद तथा भगतसिंह जैसे क्रान्तिकारी भारत में धर्म निर्पेक्ष समाजवादी गणतन्त्र की स्थापना करना चाहते थे और राष्ट्रीय आन्दोलन के नेताओं में जवाहरलाल नेहरू, सुभाषचन्द्र बोस, आचार्य नरेन्द्र देव, राममनोहर लोहिया, जयप्रकाश नारायण, स्वामी सहजानन्द आदि दलितों, किसानों व श्रमिकों के हितों की रक्षार्थ सतत संघर्षरत थे। लखनऊ में 1935 में 'आल इण्डिया किसान कांग्रेस' की पहली बैठक हुई। बाद में 'आल इण्डिया किसान सभा' की भी स्थापना हुई। भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस के कार्यक्रमों भी अब किसानों तथा मज़दूरों के हितों पर ध्यान दिया जाने लगा। 1937 के आम चुनाव हेतु अपने मैनिफ़ैस्टो में कांग्रेस ने किसानों की दशा सुधारने के लिए अनेक ठोस आश्वासन दिए थे।

भारत में कम्युनिस्ट पार्टी का गठन हुआ, इसके प्रारम्भिक नेताओं में ए0 के0 गोपालन, एम0 एन0 राय तथा ई0 एम0 एस0 नम्बूदरीपाद प्रमुख थे। वामपंथी आन्दोलन ने भारत में अधिकार प्राप्ति के लिए सर्वहारा वर्ग को संघर्ष करने के लिए प्रोत्साहित किया और साम्राज्यवाद तथा पूंजीवाद के अन्याय का भी प्रतिकार किया। भारत में बीसवीं सदी के तीसरे दशक से किसान तथा मज़दूर आन्दोलनों ने सरकार को आर्थिक सुधार करने के लिए कई बार विवश किया। संयुक्त प्रान्त, बिहार, बंगाल, तथा अन्य क्षेत्रों में किसान सभाओं का गठन हुआ जिन्होंने किसानों के अधिकारों को लेकर संघर्ष किया। जवाहर लाल नेहरू, एन0 सी0 रंगा तथा स्वामी सहजानन्द ने किसान आन्दोलनों का नेतृत्व किया। औद्योगिक प्रतिष्ठानों में मज़दूर चेतना ने मिल मालिकों को अपनी शोषक प्रवृत्ति पर लगाम कसने के लिए मजबूर किया। किसान तथा श्रमिक आन्दोलनों की चर्चा अन्यत्र की जाएगी। औपनिवेशिक शासन की जड़ें कमज़ोर करने में वामपंथी विचारधारा की महत्वपूर्ण भूमिका रही। सुभाषचन्द्र बोस के नेतृत्व में आज़ाद हिन्द फ़ौज के

भारत मुक्ति अभियान पर भी साम्यवादी तथा समाजवादी विचारधारा का प्रभाव पड़ा। बंगाल में शोषक भू–राजस्व व्यवस्था के विरुद्ध तिभागा आन्दोलन तथा तेलंगाना में हुए आन्दोलनों पर भी इसका प्रभाव पड़ा। स्वतन्त्र भारत में ज़मींदारी उन्मूलन निश्चित रूप से समाजवादी विचारधारा की जीत थी। स्वतन्त्र भारत में विकास की योजनाओं में विशेषकर पंचवर्षीय योजनाओं में समाजवादी विचारधारा का प्रभाव स्पष्ट परिलक्षित होता है। एक वर्गहीन, समाजवादी समाज की स्थापना भारत में नहीं हो पाई है परन्तु सामाजिक न्याय की स्थापना के लिए संघर्ष सतत जारी है।

हम कह सकते हैं कि 1917 की रूस की बोल्शेविक क्रान्ति ने भारतीय राष्ट्रीय आन्दोलन में सर्वहारा वर्ग की सहभागिता बढ़ाने में योगदान दिया। यद्यपि गांधीजी की विचारधारा साम्यवादी विचारधारा के विरुद्ध थी परन्तु दलितों तथा शोषितों के प्रति उनकी ममता में कहीं न कहीं साम्यवादी तथा समाजवादी विचारधारा का प्रभाव दिखाई पड़ता है। जवाहरलाल नेहरू तो निश्चित रूप से समाजवादी विचारधारा से प्रभावित थे और प्रधानमन्त्री बनने के बाद उन्होंने राज्य की ओर से समाजवादी मूल्यों की स्थापना की नीति को अपनाया था।

स्वमूल्यांकन हेतु प्रश्न

निम्नलिखित विषयों पर संक्षिप्त टिप्पणी लिखिए:

1. (क) बोल्शेविक क्रान्ति की पृष्ठभूमि तैयार करने में बुद्धिजीवियों की भूमिका।

(ख) भारत के किसान आन्दोलनों पर वामपंथी विचारधारा का प्रभाव।

2. नीचे लिखे प्रश्नों के उत्तर दीजिए।

(i) बोल्शेविक क्रान्ति का सर्वमान्य नेता कौन था?

(ii) क्या गांधीजी साम्यवादी विचारधारा के समर्थक थे?

10.5 सार संक्षेप

प्रथम विश्वयुद्ध में भाग लेने के अपने उद्देश्यों में मित्र–शक्तियों ने लोकतांत्रिक मूल्यों की रक्षा करना भी शामिल किया था। श्रीमती बीसेन्ट तथा लोकमान्य तिलक के होमरूल आन्दोलन 1916 में लखनऊ कांग्रेस तथा मुस्लिम लीग ने अपने संयुक्त अधिवेशन में सरकार के समक्ष स्वशासन की मांग रक्खी। 20 अगस्त, 1917 को अपनी घोषणा में भारत सचिव मॉन्टेग्यू ने भारतीयों की स्वशासन की मांग को आंशिक रूप से स्वीकार कर लिया। 1915 में राजा महेन्द्र प्रताप ने स्वतन्त्र भारत की अनन्तिम सरकार की काबुल में स्थापना की। महमूद अल हसन ने मदीना में हिज़्ब अल्लाह दल का गठन किया। ब्रिटिश सरकार का तख्ता पलटने की योजना रेशमी रूमाल असफल रही।

रूसी साहित्यकारों ने रूस में क्रान्ति हेतु अनुकूल वातावरण बनाने में अपना योगदान दिया। लेनिन ने 'सोशल डेमोक्रैटिक पार्टी' के पत्र *इस्क्रा* का सम्पादन किया। 27 अक्टूबर को बोल्शेविकों ने लेनिन के नेतृत्व में सत्ता हथिया ली और समाजवादी सरकार की स्थापना की। आने वाले समय के सभी मुक्ति आन्दोलनों पर इसका प्रभाव पड़ा। भारत में सर्वहारा वर्ग की सर्वांगीर्ण जागृति में बोल्शेविक क्रान्ति का महत्वपूर्ण योगदान रहा और भारतीय राष्ट्रीय आन्दोलन में भी समाजवादी विचारधारा को महत्वपूर्ण स्थान दिलाने में इसकी उल्लेखनीय भूमिका रही। 1919 तथा 1920 में हुई श्रमिक हड़तालों ने भारत में बढ़ती हुई श्रमिक चेतना का संकेत दे दिया था। चन्द्रशेखर आज़ाद तथा भगतसिंह जैसे क्रान्तिकारी भारत में धर्म निर्पेक्ष समाजवादी गणतन्त्र की स्थापना करना चाहते थे और राष्ट्रीय आन्दोलन के नेताओं में जवाहरलाल नेहरू, सुभाषचन्द्र बोस, राममनोहर लोहिया, जयप्रकाश नारायण आदि दलितों, किसानों व श्रमिकों के हितों की रक्षा करने के लिए प्रयत्नशील थे। भारत में कम्युनिस्ट पार्टी के प्रारम्भिक नेताओं में ए0 के0 गोपालन, एम0 एन0 राय तथा ई0 एम0 एस0 नम्बूदरीपाद प्रमुख थे। संयुक्त प्रान्त, बिहार, बंगाल, तथा अन्य क्षेत्रों में किसान सभाओं का गठन हुआ जिन्होंने किसानों के अधिकारों को लेकर संघर्ष किया। स्वतन्त्र भारत में ज़मींदारी उन्मूलन निश्चित रूप से समाजवादी विचारधारा की जीत थी।

10.6 पारिभाषिक शब्दावली

बोल्शेविक क्रान्तिः बहुमत की क्रान्ति अर्थात् जन–क्रान्ति

लोकतान्त्रिक मूल्यः ऐसे आदर्श जो कि लोकतन्त्र की स्थापना के लिए आवश्यक हों जैसे चुनाव, मताधिकार, जन–प्रतिनिधि सभा, उत्तरदायी सरकार आदि।

तुष्टीकरण की नीतिः किसी को प्रसन्न करने के लिए उसकी गलत मांगों को भी मान लेने की नीति।

हिज़्ब अल्लाहः अल्लाह का दल

मैनिफ़ैस्टोः घोषणापत्र

तिभागाः तीसरा भाग (भू–राजस्व के रूप में कुल उपज का एक तिहाई भाग लेने की व्यवस्था)

10.7 सन्दर्भ ग्रंथ

ताराचन्दः *भारतीय स्वतन्त्रता आन्दोलन का इतिहास* (भाग 3), नई दिल्ली, 1984

मजूमदार, आर0 सी0 (सम्पादक) – *स्ट्रगल फ़ॉर फ्रीडम*, बॉम्बे, 1969

चन्द्रा, बिपन – *नेशनलिज़्म एण्ड कोलोनियलिज़्म इन मॉडर्न इण्डिया*, नई दिल्ली, 1979

धर्मकुमार (सम्पादक) – *कैम्ब्रिज इकॉनॉमिक हिस्ट्री ऑफ इण्डिया* (भाग 2), नई दिल्ली, 1982

सेन, सुकुमाल – *वर्किंग क्लास ऑफ़ इण्डिया*, कलकत्ता, 1977

चन्द्रा, बिपन तथा अन्य – *इण्डियाज़ स्ट्रगल फ़ॉर फ्रीडम*, नई दिल्ली, 1988

दत्त, आर0 पी0 – *इण्डिया टुडे*, कलकत्ता, 1970

सिंह, अयोध्या – *भारत का मुक्ति संग्राम*, दिल्ली, 1977

भट्टाचार्य, सब्यसाची – *आधुनिक भारत का आर्थिक इतिहास*, लिली, 1990

10.8 स्व मूल्यांकित प्रश्नों के उत्तर

1. (क) देखिए 10.3.3 लखनऊ समझौता।

(ख) देखिए 10.3.4 मॉन्टेग्यू की घोषणा।

2. (i) भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस तथा मुस्लिम लीग के बीच में।

(ii) सन् 1917 में।

1. (क) देखिए 10.4.1 1917 की रूस की क्रान्ति।

(ख) देखिए 10.4.2 रूस की क्रान्ति का भारतीय राष्ट्रीय आन्दोलन पर प्रभाव।

2.(i) व्लादिमिर इलयिच लेनिन।

(ii) नहीं।

10.9 अभ्यास प्रश्न

1. भारतीय अर्थ–व्यवस्था पर प्रथम विश्वयुद्ध के प्रभाव की समीक्षा कीजिए।
2. भारतीय राष्ट्रीय आन्दोलन में चम्पारन आन्दोलन तथा खेड़ा आन्दोलन का क्या महत्व है?
3. रूस की बोल्शेविक क्रान्ति की पृष्ठभूमि तैयार करने में साहित्यकारों के योगदान का आकलन कीजिए।
4. वामपंथियों ने भारतीय किसान आन्दोलनों को किस प्रकार प्रभावित किया?
5. भारतीय क्रान्तिकारी आन्दोलन पर साम्यवादी प्रभाव की समीक्षा कीजिए।

11.1. प्रस्तावना

11.2 इकाई के उद्देश्य

11.3 होमरूल लीग

11.3.1 होमरूल आन्दोलन की पृष्ठभूमि

11.3.2 होमरूल लीग के कार्य, उसकी उपलब्धियां तथा उसकी दुर्बलताएं

11.4 खिलाफ़त आन्दोलन

11.4.1 तुर्की के सुल्तान तथा अधिकांश मुसलमानों के खलीफ़ा का अपदस्थ किया जाना

11.4.2 खिलाफ़त आन्दोलन की रणनीति

11.4.3 गांधीजी द्वारा खिलाफ़त आन्दोलन को समर्थन

11.4.4 खिलाफ़त आन्दोलन का शिथिल पड़ना

11.5 असहयोग आन्दोलन

11.5.1 रॉलट एक्ट

11.5.2 जलियांवाला बाग हत्याकाण्ड

11.5.3 असहयोग आन्दोलन का सृजनात्मक स्वरूप

11.5.4 असहयोग आन्दोलन का स्थगन

11.6 सार संक्षेप

11.7 पारिभाषिक शब्दावली

11.8 सन्दर्भ ग्रंथ

11.9 स्व मूल्यांकित प्रश्नों के उत्तर

11.9 अभ्यास प्रश्न

11.1 प्रस्तावना

पिछली इकाई में हम यह चर्चा कर चुके हैं कि मित्र राज्यों ने प्रथम विश्वयुद्ध में लोकतान्त्रिक मूल्यों की रक्षार्थ भाग लेने का दावा किया था। प्रथम विश्वयुद्ध में मित्र राज्यों के सहयोगी के रूप में अपना योगदान देने के कारण भारतीयों की राजनीतिक आकांक्षाओं में वृद्धि श्रीमती एनीबीसेन्ट तथा लोकमान्य तिलक के नेतृत्व में होमरूल की मांग के रूप में दिखाई दी। 1917 की मॉन्टेग्यू की घोषणा के द्वारा सिद्धान्ततः भारतीयो की स्वशासन को स्वीकार कर लिया गया किन्तु विश्वयुद्ध समाप्त होते ही रॉलट एक्ट तथा जलियांवालाबाग हत्याकाण्ड के रूप में ब्रिटिश भारतीय सरकार का राजनीतिक दमन प्रारम्भ हो गया। इस इकाई में हम तुर्की के सुल्तान अर्थात अधिकांश मुसलमानों के खलीफ़ा को पुनर्प्रतिष्ठित किए जाने हेतु खिलाफ़त आन्दोलन तथा उसके समर्थन में तथा स्वराज्य प्राप्ति के उद्देश्य से प्रारम्भ किए गए असहयोग आन्दोलन की चर्चा करेंगे तथा भारतीय तथा विश्व इतिहास में उसकी महत्ता का आकलन करेंगे।

11.2 इकाई के उद्देश्य

लोकमान्य तिलक की माण्डले में कारावास से मुक्त होकर भारत वापसी और श्रीमती एनी बीसेन्ट द्वारा भारतीय राजनीति में प्रवेश से स्वशासन की मांग ज़ोर पकड़ने लगी। अंग्रेज़ शासकों को भी विश्वयुद्ध में अपने सहयोगी राष्ट्र भारत के निवासियों की राजनीतिक एवं संवैधानिक मांगों पर सहानुभूतिपूर्वक विचार करना पड़ा। विश्वयुद्ध की समाप्ति के बाद अंग्रेज़ों ने राजनीतिक दमन प्रक्रिया फिर से आरम्भ कर दी। रॉलट एक्ट तथा जलियांवाला बाग हत्याकाण्ड इसी के परिचायक थे। तुर्की की पराजय के बाद वहां के सुल्तान और मुसलमानों के खलीफ़ा की पुनर्प्रतिष्ठा हेतु भारतीय मुसलमानों द्वारा खिलाफ़त आन्दोलन चलाया गया। महात्मा गांधी ने खिलाफ़त आन्दोलन के समर्थन में, पंजाब में ब्रिटिश दमन के विरोध में तथा स्वराज प्राप्ति के उद्देश्य से असहयोग आन्दोलन प्रारम्भ किया। इस इकाई में इन सभी की आपको जानकारी दी जाएगी। इस इकाई को पढ़कर आप अवगत होंगेः

- होमरूल आन्दोलन तथा मान्टेग्यू की घोषणा से।
- भारतीय मुसलमानों द्वारा खलीफ़ा को पुनर्प्रतिष्ठित करने हेतु खिलाफ़त आन्दोलन से।
- महात्मा गांधी द्वारा प्रारम्भ असहयोग आन्दोलन से।

11.3 होमरूल लीग

11.3.1 होमरूल आन्दोलन की पृष्ठभूमि

1905 के स्वदेशी आन्दोलन के दौरान स्वराज्य अर्थात् स्वशासन को लक्ष्य बनाया गया था किन्तु औपनिवेशिक सरकार ने जवाब में भारतीयों को नाममात्र के सुधार और निर्मम राजनीतिक दमन का उपहार दिया। कांग्रेस की आपसी फूट, लोकमान्य तिलक तथा अन्य उग्रवादी नेताओं की भारतीय राजनीतिक परिदृश्य से अनुपस्थिति, कांग्रेस की राजनीति पर एक बार फिर नरमपंथियों का प्रभुत्व, साम्प्रदायिकता का बढ़ता हुआ ज़हर, एक सीमा तक क्रान्तिकारी आतंकवाद की दिशाहीनता और सरकार की भारत पर मज़बूत पकड़ इसके लिए काफ़ी हद तक ज़िम्मेदार थी।

1908 में लोकमान्य तिलक के माण्डले निर्वासन से समस्त राष्ट्र में असन्तोष की एक लहर दौड़ पड़ी थी। 1909 के इण्डियन काउंसिल्स एक्ट में दिए गए नाममात्र के सुधारों से नरमपंथी भी संतुष्ट नहीं थे। विश्वयुद्ध में भारतीय संसाधनों का युद्ध के लिए खुलकर उपयोग हो रहा था।लोकमान्य तिलक की माण्डले से 1914 में रिहाई तथा भारतीय राजनीतिक क्षेत्र में श्रीमती एनीबीसेन्ट के पदार्पण से होमरूल आन्दोलन के लिए अनुकूल वातावरण विकसित हो रहा था। प्रथम विश्वयुद्ध में भाग लेने के अपने उद्देश्यों में मित्र–शक्तियों ने लोकतांत्रिक मूल्यों की रक्षा करना भी शामिल किया था। इस पृष्ठभूमि में सुधारों की आशा में भारतीयों ने तन–मन–धन से युद्ध में अंग्रेज़ों का साथ दिया। पहली बार भारत एक गुलाम देश से शासन करने वाले देश के सहयोगी के रूप में उभर कर आया और इसके कारण भारतवासियों में भी अपनी राजनीतिक, आर्थिक तथा संवैधानिक मांगों को सरकार के सामने उठाते हुए एक नया आत्मविश्वास और एक नया उत्साह दिखाई दिया।

अनेक शीर्षस्थ नेताओं ने साम्प्रदायिक सद्भाव तथा राष्ट्रीय एकता को महत्व दिया। विश्वयुद्ध के प्रारम्भ में ही मित्र

राष्ट्रों ने इस बात की घोषणा की थी कि वो लोकतान्त्रिक मूल्यों की रक्षा करने के लिए युद्ध में भाग ले रहे थे। इस काल में भारतीय राजनीति में अन्तर्राष्ट्रीय क्षेत्र में हो रही गतिविधियों के प्रति जागरूकता के दर्शन हुए और साथ ही प्रथम विश्वयुद्ध में अपने सहयोगी देश इंग्लैण्ड से परिस्थितियों का लाभ उठाकर सुधार के लिए अधिक अधिकार के साथ आवाज़ उठाने का साहस भी दिखाई दिया।

11.3.2 होमरूल लीग के कार्य, उसकी उपलब्धियां तथा उसकी दुर्बलताएं

फ़िरोज़शाह मेहता तथा गोपालकृष्ण गोखले की मृत्यु के बाद 1915 में कांग्रेस में तिलक को पुनः प्रविष्ट किया गया। दिसम्बर, 1915 में लोकमान्य तिलक ने होमरूल लीग की स्थापना के औचित्य पर विचार–विमर्श करने के लिए एक समिति का गठन किया। इस समिति की सिफ़ारिश पर उन्होंने 28 अप्रैल, 1916 को पूना में होमरूल लीग की स्थापना की। तिलक इस लीग के मार्गदर्शक थे किन्तु इसका अध्यक्ष जोसेफ़ बेपतिस्ता को तथा सचिव एन0 सी0 केलकर को बनाया गया। इस लीग ने स्वराज्य प्राप्ति के उद्देश्य से होमरूल आन्दोलन चलाने का निश्चय किया।

श्रीमती एनी बीसेन्ट भारत में पुनरुत्थानवादी थियोसोफ़िकल सोसायटी की संचालक थीं। ब्रिटिश साम्राज्यवाद की समर्थक होते हुए भी उनके हृदय में भारतीयों के प्रति ममता और उनके अधिकारों के प्रति सहानुभूति थी। 1914 में उन्होंने भारतीय राजनीति में प्रवेश किया और वह इसी वर्ष भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस की सदस्य बनीं। वह एक आइरिश महिला थीं और आयरलैण्ड के होमरूल मूवमेंट से बहुत प्रभावित थीं। इसी से प्रेरित होकर उन्होंने भारत में 3 सितम्बर, 1916 को अद्यार में होमरूल लीग की स्थापना की। श्रीमती बीसेन्ट इसकी अध्यक्ष, जॉर्ज अरुण्डेल, संगठन मन्त्री तथा रामस्वामी अय्यर महासचिव थे। देश में इसकी कुल 200 शाखाएं थीं और 1917 तक इसके सदस्यों की संख्या 27000 तक पहुंच गई थी। इसके सदस्यों में मोतीलाल नेहरू, जवाहरलाल नेहरू, तेज बहादुर सप्रू, सी0 वाई0 चिन्तामणि, मुहम्मद अली जिन्ना, हसन इमाम, सुब्रमनिय अय्यर आदि सम्मिलित थे। श्रीमती बीसेन्ट को पहली बार मध्यवर्गीय महिलाओं को राजनीतिक आन्दोलनों में सम्मिलित करने का श्रेय दिया जाता है।

इस आन्दोलन में स्वशासन अर्थात् होमरूल की स्थापना को लक्ष्य रखा गया और इसके साथ ही राष्ट्रीय शिक्षा के विकास को भी महत्व दिया गया। होमरूल का लक्ष्य ग्राम पंचायतों, जिला परिषदों, प्रांतीय विधान सभाओं और केन्द्रीय विधान सभा के स्तर तक स्वशासन स्थापित करना था। भारत की संवैधानिक स्थिति ब्रिटिश साम्राज्य के अन्य स्वशासित उपनिवेशों जैसे ऑस्ट्रेलिया, कैनाडा आदि के समकक्ष बनाना और इन्हीं स्वशासित उपनिवेशों की भांति भारत के प्रतिनिधियों को ब्रिटिश पार्लियामेन्ट में बड़ी संख्या में प्रवेश दिलाना भी होमरूल का लक्ष्य था। श्रीमती बीसेन्ट भारतीय राष्ट्रीय आन्दोलन का स्वरूप अहिंसक बनाए रखना, और उसे संविधान की सीमाओं के भीतर ही रखकर चलाना चाहती थीं। उन्हें आशंका थी कि यदि सरकार भारतीयों की स्वशासन की मांग को स्वीकार नहीं करेगी तो व्यापक राजनीतिक असंतोष का लाभ उठाकर क्रान्तिकारी राष्ट्रीय आन्दोलन की कमान सम्भाल लेंगे। सर ए0 ओ0 ह्यूम की भांति सेफ़्टी वॉल्व के रूप में सरकार द्वारा सुधारों की खुराक दिया जाना भारत में राजनीतिक आन्दोलन को अधिक उग्र और हिंसक होने से बचाने के लिए आवश्यक था। उनके आन्दोलन का एक लक्ष्य क्रान्तिकारियों के प्रभाव को कम करना भी था।

जून, 1916 में लन्दन में भी एक भारतीय होमरूल लीग की स्थापना की गई। इसके महासचिव डी0 ग्राहम पोल थे। लाला लाजपत राय ने अमेरिका में भी होमरूल लीग की स्थापना की। श्रीमती एनीबीसेन्ट के पत्रों *कॉमन वील, यंग इण्डिया, न्यू इण्डिया* और तिलक के पत्रो *मराठा* व *केसरी* में होमरूल आन्दोलन की नीतियों और उसके लक्ष्यों का प्रचार हुआ। बाज़ारों तथा धर्मस्थलों में जन–सभाओं का आयोजन कर स्वशासन की अपनी मांग के साथ सरकार की रंगभेदी, शोषक व दमनकारी नीतियों की कटु आलोचना की गई और राष्ट्रीय शिक्षा के विकास हेतु योजना प्रस्तुत की गई।

चूंकि तिलक और श्रीमती बीसेन्ट दोनों के आन्दोलनों के उद्देश्य एक समान थे अतः दोनों का आपस में विलय हो गया। 1916 में लखनऊ में कांग्रेस–मुस्लिम लीग के संयुक्त अधिवेशन में होमरूल का प्रस्ताव रक्खा गया। 1916 के होमरूल आन्दोलन ने देशव्यापी राजनीतिक चेतना जागृत की और यह सरकार पर राजनीतिक

सुधार के लिए दबाव डालने में काफ़ी हद तक सफल रहा। ब्रिटिश भारतीय सरकार को नरमपंथियों के घटते राजनीतिक महत्व का भान हो चुका था, उग्र राष्ट्रवादियों की स्वशासन की मांग को पूरी तरह से अस्वीकार करना अब उनके लिए सम्भव नहीं रह गया था। 20 अगस्त, 1917 में सरकार द्वारा मॉन्टेग्यू घोषणा की गई जिसमें होमरूल आन्दोलन की भारत में स्वशासन स्थापित किए जाने की मांग को सैद्धान्तिक रूप में मान लिया गया। मॉन्टेग्यू की घोषणा के बाद श्रीमती बीसेन्ट अगले कांग्रेस अधिवेशन की अध्यक्ष बनाई गईं किन्तु स्वशासन की स्थापना की मांग को लेकर किए जाने वाले सत्याग्रह के स्थगन के उनके निर्णय का बड़ा विरोध हुआ। फिर भी 1919 के गवर्नमेंट ऑफ़ इण्डिया एक्ट में प्रांतीय स्तर पर आंशिक रूप से उत्तरदायी सरकार स्थापित कर दी गई। होमरूल आन्दोलन पर ब्राह्मणवादी होने का आरोप लगा और गैर–ब्राह्मण वर्ग ने इसका विरोध किया। 1920 के असहयोग आन्दोलन में भी स्वराज का लक्ष्य रक्खा गया और होमरूल आन्दोलन को इस आन्दोलन के लिए अनुकूल राजनीतिक वातावरण तैयार करने का श्रेय जाता है।

स्व मूल्यांकन हेतु प्रश्न

निम्नलिखित विषयों पर संक्षिप्त टिप्पणी लिखिए:

1. (क) लोकमान्य तिलक की होमरूल लीग।

(ख) श्रीमती एनी बीसेन्ट के होमरूल आन्दोलन की सीमाएं तथा दुर्बलताएं।

2. नीचे लिखे प्रश्नों के उत्तर दीजिए।

(i) लोकमान्य तिलक का भारतीय राजनीति मं पुनर्पदार्पण कब हुआ?

(ii) मोती लाल नेहरू तथा जवाहर लाल नेहरू किस की होमरूल लीग के सदस्य बने?

11.4 खिलाफ़त आन्दोलन

11.4.1 तुर्की के सुल्तान तथा अधिकांश मुसलमानों के खलीफ़ा का अपदस्थ किया जाना

प्रथम विश्वयुद्ध में तुर्की की पराजय के बाद से ही यह निश्चित हो गया था कि उसके सुल्तान को अपदस्थ कर दिया जाएगा। 1919 के प्रारम्भ से ही उसको अपदस्थ किए जाने की अफ़वाह उड़ने लगी थी। तुर्की के सुल्तान को भारत सहित अनेक देशों के मुस्लिम सम्प्रदाय अपना खलीफा या धार्मिक गुरु मानते थे। उसे अपदस्थ किया जाना भारतीय मुसलमानों ने अपनी धार्मिक भावनाओं पर चोट माना। खिलाफ़त का प्रश्न मुसलमानों के लिए एक भावनात्मक मुद्दा था। भारतीय मुसलमान आमतौर पर अंग्रेज़ों के प्रति सहयोग की नीति अपना रहे थे। उन्हें विश्वास था कि उनकी भावनाओं का सम्मान करते हुए ब्रिटिश भारतीय सरकार तथा इंग्लैण्ड की गृह सरकार मित्र राष्ट्रों पर तुर्की के सुल्तान अर्थात् मुसलमानों के खलीफ़ा को अपदस्थ न किए जाने के लिए दबाव डालेंगी। परन्तु मई, 1920 में सेव्र की सन्धि से तुर्की के सुल्तान और मुसलमानों के खलीफ़ा को अपदस्थ कर दिया गया।

11.4.2 खिलाफ़त आन्दोलन की रणनीति

31 अक्टूबर, 1918 में तुर्की की पराजय के बाद खिलाफ़त के विषय में मुस्लिम लीग तथा कांग्रेस की बैठक हुई। मुस्लिम लीग के अध्यक्ष डॉक्टर अन्सारी ने तथा कांग्रेस के हकीम अजमल खान ने जज़ीरत–उल–अरब (अरब, सीरिया, ईराक, फ़िलिस्तीन) पर मुस्लिम अधिकार ही रखे जाने की मांग की। 1919–20 में खिलाफ़त आन्दोलन ज़ोर पकड़ने लगा। लखनऊ के फ़िरंगी महल के उलेमा अब्दुल बारी (जो कि अली बन्धुओं के गुरु थे) इससे पहले ही रॉलट एक्ट के विरुद्ध आन्दोलन में गांधीजी के साथ आ चुके थे। भारत में अली बन्धु, मुहम्मद एवं शौकत अली ने खिलाफ़त कमेटी का गठन कर पूरे भारत में आन्दोलन प्रारम्भ किया। 1916 के लखनऊ समझौते के फलस्वरूप विकसित हिन्दू–मुस्लिम एकता को और बल देते हुए खिलाफ़त आन्दोलन ने मुसलमानों को राष्ट्रीय आन्दोलन में भाग लेने के लिए प्रेरित किया। यह आन्दोलन पूर्णरूपेण अहिंसक था। दिल्ली में आयोजित 'ऑल इण्डिया खिलाफ़त कॉन्फ़्रेन्स' की 22–23 नवम्बर, 1919 की बैठक में पहली बार सरकार के साथ असहयोग की नीति अपनाने पर ज़ोर दिया गया था। हसरत मोहानी ने ब्रिटिश सामान के बहिष्कार का प्रस्ताव रखा था परन्तु ब्रिटिश सामान का आयात करने वाले बम्बई के मुस्लिम व्यापारियों ने इसका विरोध किया। खिलाफ़त आन्दोलनकारी जानते थे कि अपने लक्ष्य को प्राप्त करने के लिए उन्हें हिन्दुओं का समर्थन प्राप्त करना होगा। दिसम्बर, 1919 को मुस्लिम लीग ने यह

प्रस्ताव पारित किया कि आगामी बकरीद पर गो–हत्या नहीं की जाएगी।

खिलाफ़त आन्दोलन को चौटानी जैसे धनाढ्य व्यापारी, मध्य वर्गीय पत्रकार तथा उलेमा अपना समर्थन दे रहे थे। जनवरी, 1920 में भारत के वाइसराय में यह स्पष्ट कर दिया कि तुर्की के साथ वैसा ही व्यवहार किया जाएगा जैसा कि अन्य पराजित शक्तियों के साथ किया गया है। फ़रवरी, 1920 को मौलाना अबुल कलाम आज़ाद की अध्यक्षता में हुई खिलाफ़त कॉन्फ्रेन्स ने असहयोग आन्दोलन का प्रस्ताव रखा। मार्च, 1920 में एक शिष्टमण्डल ब्रिटिश सरकार से बातचीत करने के लिए लन्दन भेजा गया। हाल ही में नज़रबन्दी से मुक्त हुए अली बन्धुओं ने मार्च, 1920 में देश–व्यापी हड़ताल का आवाहन किया। ऑल इण्डिया खिलाफ़त कान्फ्रेन्स ने सरकार द्वारा उसकी मांगें न माने जाने की स्थिति में सरकार के साथ सहयोग करने की नीति वापस लेने का निश्चय किया । मार्च, 1920 में पेरिस में कूटनीतिज्ञों के समक्ष खिलाफ़त आन्दोलन के नेता मुहम्मद अली ने तीन मांगे रखी थीं –

तुर्की के सुल्तान अर्थात् मुसलमानों के ख़लीफ़ा का मुसलमानों के पवित्र धार्मिक स्थलों पर अधिकार बना रहे।

सुल्तान के अधिकार में इतना पर्याप्त क्षेत्र अवश्य छोड़ा जाए कि वह इस्लाम के रक्षक की भूमिका का निर्वाह कर सके।

जज़ीरत–उल–अरब (अरब, सीरिया, ईराक, फ़िलिस्तीन) एक मुस्लिम शासक के ही आधीन रखे जाएं।

11.4.3 गांधीजी द्वारा खिलाफ़त आन्दोलन को समर्थन

14 मई, 1920 को सेव्र की सन्धि द्वारा तुर्की के सुल्तान को अपदस्थ कर दिया गया। 1 से 3 जून, 1920 को 'सेन्ट्रल खिलाफ़त कमेटी' ने असहयोग की नीति अपनाने का निश्चय किया। इसमें उपाधियों, प्रशासनिक, पुलिस तथा सैनिक सेवाओं का परित्याग और करों का भुगतान न करना शामिल थे। गांधीजी ने अपने पत्र *यंग इण्डिया* में अपने मुसलमान भाइयों की संकट की घड़ी में उनके साथ सहने और उनके अहिंसक आन्दोलन में पूर्ण सहयोग करने का वचन दिया। जुलाई सिंध में आयोजित खिलाफ़त कॉन्फ्रेन्स में गांधीजी ने भी भाग लिया। 20 अगस्त, 1920 को खिलाफ़त आन्दोलन के समर्थन में गांधीजी ने असहयोग आन्दोलन प्रारम्भ किया। गांधीजी, शौकत अली तथा मुहम्मद अली ने हिन्दू–मुस्लिम एकता की स्थापना के उद्देश्य से भारत का दौरा किया। 4 से 8 सितम्बर को नागपुर में आयोजित कांग्रेस के विशेष अधिवेशन में खिलाफ़त के समर्थन में एक प्रस्ताव पारित हुआ और विदेशी सामान, सरकारी कार्यालयों, अदालतों, शिक्षा संस्थानों आदि के बहिष्कार करने का निर्णय लिया गया।

गांधीजी तथा खिलाफ़त आन्दोलन के नेताओं ने यह घोषित किया कि वेः

1. पंजाब में सरकार की दमनकारी नीतियों के विरोध में।
2. खलीफ़ा के साथ किए गए अन्याय के विरोध में।
3. स्वराज प्राप्ति के उद्देश्य से।

अपना अहिंसक आन्दोलन कर रहे हैं।

8 जुलाई, 1921 को कराची में हुई 'ऑल इण्डिया खिलाफ़त कॉन्फ्रेन्स' में ब्रिटिश भारतीय सेना के मुस्लिम सैनिकों से अपील की गई कि वो धर्म के नाम पर अपनी नौकरियां छोड़ दें। इसके परिणामस्वरूप मुहम्मद अली को गिरफ़्तार कर लिया गया पर कांग्रेस ने उनका पूर्ण समर्थन किया।

11.4.4 खिलाफ़त आन्दोलन का शिथिल पड़ना

मलाबार तट पर मोपला में हिन्दू–मुस्लिम दंगों के बाद भी कांग्रेस और खिलाफ़त आन्दोलन का गठबन्धन बना रहा। प्रिंस ऑफ़ वेल्स के भारत आगमन पर दोनों ही दलों ने उसका बहिष्कार किया। 5 फ़रवरी, 1922 में चौरा चौरी की घटना के बाद असहयोग आन्दोलन के स्थगन से परिस्थितियों में बदलाव आया। तत्कालीन गवर्नर जनरल लॉर्ड रीडिंग ने तुर्की को कुछ अधिकार प्रदान किए जाने के लिए भारत सचिव मॉन्टेग्यू से सिफ़ारिश की परन्तु इसका कोई लाभ नहीं हुआ। धीरे–धीरे हिन्दू मुस्लिम एकता का स्वर मन्द पड़ने लगा और खिलाफ़त आन्दोलन के समर्थक कांग्रेस से अलग होते चले गए। अक्टूबर, 1923 में मुस्तफ़ा कमाल पाशा के नेतृत्व में हुई क्रान्ति ने तुर्की में गणतन्त्र की स्थापना कर दी जिससे खलीफ़ा की सत्ता की पुनर्स्थापना के लिए भारत में आन्दोलन किए जाने का औचित्य ही समाप्त हो गया। फिर भी खिलाफ़त आन्दोलन का भारतीय इतिहास में अत्यन्त महत्व है। पहली बार

भारतीय मुसलमानों को इतनी संख्या में ब्रिटिश सत्ता के विरुद्ध आन्दोलन में उतारने का श्रेय ख्लिाफ़त आन्दोलन को जाता है। हिन्दू–मुस्लिम एकता को महत्व देने में भी इस आन्दोलन का योगदान रहा है। कांग्रेस को मौलाना अबुल कलाम आज़ाद जैसा महान नेता खिलाफ़त आन्देलन के माध्यम से ही प्राप्त हुआ था।

स्व मूल्यांकन हेतु प्रश्न

निम्नलिखित विषयों पर संक्षिप्त टिप्पणी लिखिए:

1. (क) खिलाफ़त आन्दोलन की मुख्य मांगे।

(ख) खिलाफ़त आन्दोलन के समर्थन में गांधीजी की रणनीति।

2. नीचे लिखे प्रश्नों के उत्तर दीजिए।

(i) विश्व के अधिकांश मुसलमान किसको अपना खलीफ़ा मानते थे?

(ii) खिलाफ़त आन्दोलन के दो प्रमुख नेता कौन थे?

11.5 असहयोग आन्दोलन

11.5.1 रॉलट एक्ट

प्रथम विश्व युद्ध की समाप्ति के बाद स्वशासन न दिए जाने से निराश जनता सरकार के विरुद्ध आन्दोलन करने को तत्पर थी। मॉन्टेग्यू की घोषणा के बीस दिन बाद 10 सितम्बर, 1917 को आतंकवाद के दमन के लिए जस्टिस रॉलट की अध्यक्षता में सेडिशन कमेटी गठित की गई। 1918 में सेडिशन कमेटी की सिफ़ारिशों को प्रकाशित किया गया। भारतीय प्रेस ने इस दमनकारी व्यवस्था को लागू न करने की मांग की परन्तु इन सिफ़ारिशों को 1919 में इम्पीरियल लेजिसलेटिव काउंसिल में रखा गया। इसके गैर सरकारी भारतीय सदस्यों ने एकमत से इन सिफ़ारिशों के आधार पर एक्ट बनाए जाने का विरोध किया। विश्वयुद्ध के दौरान बनाए गए विशेष सुरक्षा कानूनों को उसकी समाप्ति के बाद भी लागू रखना उनकी दृष्टि में भारतीयों के नागरिक अधिकारों का हनन था। रॉलट एक्ट के अंतर्गत सरकार विरोधी गतिविधियों के शक के आधार पर बिना मुकदमा चलाए किसी को भी गिरफ़्तार किया जा सकता था और उसे दो वर्ष तक के लिए बन्दी बनाया जा सकता था। किसी के पास यदि सरकार विरोधी साहित्य मिले तो उसे गिरफ़्तार किया जा सकता था। पुलिस को शक की बिना पर तलाशी, गिरफ्तारी तथा ज़मानत मांगने के असीमित अधिकार मिल गए। इस दमनकारी कानून के पारित किए जाने के पीछे उन अंग्रेज़ अधिकारियों का हाथ था जो मॉन्टेग्यू की 1917 की घोषणा में भारतीयों को स्वशासन दिए जाने के आश्वासन से तथा 1919 के एक्ट में प्रान्तों में आंशिक रूप से उत्तरदायी शासन स्थापित किए जाने की व्यवस्था से नाराज़ थे। इस एक्ट का घोर विरोध हुआ क्योंकि इससे पुलिस के हाथों जनता को परेशान करने की खुली छूट मिल रही थी।

गांधी जी ने रौलट एक्ट के विरुद्ध फ़रवरी, 1919 में सत्याग्रह सभा का गठन कर देशव्यापी आन्दोलन का आवाहन किया। गांधीजी ने होमरूल लीग तथा मुस्लिम विश्व बंधुत्व की अवधारणा में विश्वास करने वाले (पैन इस्लामिक) दल को अपनी सत्याग्रह सभा के साथ शामिल किया। उन्होंने लखनऊ के फ़िरंगी महल के उलेमा अब्दुल बारी का सहयोग प्राप्त किया। 23 मार्च, 1919 को गांधीजी ने देश–व्यापी हड़ताल का आवाहन किया।

11.5.2 जलियांवाला बाग हत्याकाण्ड

पंजाब का लेफ़्टिनेन्ट गवर्नर माइकिल ओडवेयर तथा अन्य अंग्रेज़ अधिकारी हिन्दू–मुस्लिम–सिख एकता से परेशान थे। पंजाब के अमृतसर, लाहौर, गुर्जनवाला, गुजरात तथा लायलपुर में रॉलट एक्ट विरोधी आन्दोलन हो रहे थे। 9 अप्रैल को रॉलट एक्ट के विरोध में जुलूस का नेत्त्व कर रहे डॉ. सत्य पाल तथा सैफुद्दीन को गिरफ्तार कर निर्वासित कर दिया गया। 10 अप्रैल को अपना विरोध जताने के लिए डिप्टी कमिश्नर के घर जा रही भीड़ पर पुलिस ने गोली चला दी। 11 अप्रैल, 1913 को माइकिल ओडवेयर ने पंजाब में मार्शल लॉ लगा दिया था परन्तु इसके बाद भी रॉलट एक्ट के विरुद्ध आन्दोलन जारी रहा। डॉ. सत्य पाल तथा सैफुद्दीन किचलू को रौलट एक्ट का विरोध करने के कारण गिरफ़्तार किए जाने के विरोध में हुई बैसाखी के दिन 13 अप्रैल, 1919 को अमृतसर के जलियांवाला बाग में जनसभा में उपस्थित निहत्थे आन्दोलनकारियों पर बिना चेतावनी दिए जनरल डायर ने गोलीबारी की जिससे सैकड़ों लोग मारे गए और घायल हो गए। जनरल डायर के सिपाही तब तक भागती भीड़ पर

गोलियां बरसाते रहे जब तक कि उनकी गोलियां खत्म नहीं हुईं। बाग की तंग गलियों में भारी फ़ौजी गाड़ी ले जाना कठिन था नही ंतो जनरल डायर भीड़ को इन भारी गाड़ियों से कुचलना भी चाहता था। जनरल डायर भारतीयों को इस हत्याकाण्ड से सबक देना चाहता था। इस हत्याकांड के बाद भी पुलिस की ज़्यादतियों का दौर चलता रहा। कूचा कूचियानवाला में एक अंग्रेज़ महिला का अपमान करने की सज़ा के तौर पर लोगों को पेट के बल रेंग कर चलने के लिए मजबूर किया गया। भारतीयों को यह पता चल गया कि अंग्रेज़ शासक भारतीयों की राजनीतिक मांगों को कुचलना चाहते हैं। 30 मई, 1913 को जलियांवाला बाग हत्याकाण्ड के विरोध में रबीन्द्रनाथ टैगोर ने नाइटहुड की उपाधि का परित्याग किया क्योंकि उनके कथनानुसार अब ऐसी उपाधियां और सम्मान धारण करते हुए अपने देशवासियों के सामने खड़े होने में उन्हें शर्म आ रही थी। जलियांवाला बाग हत्याकाण्ड की जांच के लिए बैठी हंटर कमेटी ने इस काण्ड के हत्यारों को बेदाग छोड़ दिया था।

11.5.3 असहयोग आन्दोलन का सृजनात्मक स्वरूप

असहयोग आन्दोलन ने भारतीय जन–जीवन को हर क्षेत्र में प्रभावित किया। स्वराज्य, होमरूल, डोमिनियन स्टेटस और स्वशासन के स्वप्न को साकार करने के लिए अब सरकार से याचना करने के स्थान पर भारतीयों ने गांधीजी के नेतृत्व में रणक्षेत्र में कूदने का निश्चय किया । 20 अगस्त, 1920 को गांधीजी ने असहयोग आन्दोलन प्रारम्भ किया। इस आन्दोलन को खिलाफ़त आन्दोलन के समर्थन में, पंजाब में पुलिस की ज़्यादतियों के विरोध में तथा स्वराज प्राप्ति के उद्देश्य से शुरू किया गया था। इसमें हिन्दू–मुस्लिम सदभाव पर जोर दिया गया था। गांधी जी ने स्वदेशी, अस्पृश्यता निवारण, मद्य–निषेध, नारी–उत्थान, ग्राम स्वराज्य तथा साम्प्रदायिक सद्भाव की स्थापना को राष्ट्रीय आन्दोलन का अभिन्न अंग बनाया था। गांधी जी को भारतीय जनता अवतार मानती थी । उनके कहने पर स्त्री–पुरुष अपना तन–मन–धन देश के लिए अर्पित करने को तत्पर हो जाते थे। उनके आदेश पर करोड़ों भारतीयों ने चर्खे और खादी को अपनाया था। उन्होंने कांग्रेस के मध्यवर्गीय आन्दोलन को इतना अधिक व्यापक बनाया कि वह विश्व इतिहास के सबसे बड़े जन–आन्दोलनों में गिना जाता है। असहयोग आन्दोलन में स्वदेशी आन्दोलन की रणनीति को और अधिक व्यापक रूप प्रदान किया गया। गांधीजी ने स्वदेशी के तीन आयामों– आर्थिक, राजनीतिक एवं धार्मिक पहलू पर ज़ोर दिया। आर्थिक क्षेत्र में स्वदेशी का तात्पर्य था, अपने देश की बनी हुई वस्तुओं का प्रयोग और स्वदेशी वस्तुओं के उत्पादन में वृद्धि। इसके द्वारा उन्होंने देश में निर्धनता और बेरोजगारी को दूर करने का प्रयास किया था। चर्खे को उन्होंने आर्थिक आत्मनिर्भरता के प्रतीक के रूप में प्रतिष्ठित किया। लंकाशायर और मानचेस्टर के कपड़ा मिलों के भारतीय कपड़ा बाज़ार पर एकाधिकार को तोड़ने के लिए चर्खा किसी ब्रह्मास्त्र से कम सिद्ध नहीं हुआ। राजनीतिक स्वदेशी में उन्होंने सरकार पर दबाव डालने के लिए बहिष्कार अर्थात बॉयकाट का प्रयोग किया था और एक वर्ष के भीतर स्वराज्य प्राप्त करने का लक्ष्य रखा था। बहिष्कार के अन्तर्गत उन्होंने खिलाफ़त आन्दोलन के कार्यक्रम को अपना लिया था। अर्थात् सरकारी उपाधियों के परित्याग, विदेशी सामान, सरकारी कार्यालयों, अदालतों, शिक्षा संस्थानों आदि के बहिष्कार करने का निर्णय लिया गया। उन्होंने धार्मिक स्वदेशी के अंतर्गत स्वदेशी को हर भारतवासी के लिए उसके धार्मिक कर्तव्य के रूप में स्थापित किया था। स्वदेशी के शैक्षिक पक्ष के अन्तर्गत राष्ट्रीय शिक्षा का विकास उनका लक्ष्य था, अर्थात् ऐसी शिक्षा जिसमें विद्यार्थी को आरम्भ से ही स्वावलम्बी बनने का प्रशिक्षण दिया जाता हो तथा उसमें नैतिक उत्थान, देश भक्ति, मानवीयता, सत्य, अहिंसा और भ्रातृत्व के संस्कार दिए जाते हों। गांधीजी के आवाहन पर सभी धर्मावलम्बी स्वराज्य प्राप्ति के लक्ष्य को प्राप्त करने के लिए एकजुट हुए थे और पहली बार इतनी संख्या में किसान, मज़दूर, स्त्रियां और दलित राष्ट्रीय आन्दोलन में सम्मिलित हुए थे।

गांधीजी ने असहयोग आन्दोलन में रचनात्मक कार्यक्रमों पर बहुत ज़ोर दिया। ग्राम पंचायतों का पुनरुत्थान, राष्ट्रीय पाठशालाओं तथा विद्यालयों की स्थापना, कुटीर उद्योग का गांव–गांव में पुनर्विकास स्वदेशी मेलों का आयोजन, मद्य–निषेध कार्यक्रम आदि को व्यापक स्तर पर प्रारम्भ किया गया। खादी को तो गांधीजी ने स्वदेशी और स्वराज का अभिन्न अंग बना लिया था। हिन्दी के राष्ट्रवादी कवि सोहनलाल द्विवेदी की कविता *भैरवी* में खादी को राष्ट्र के पुनरोत्थान तथा स्वाभिमान के प्रतीक के रूप में देखा गया था –

खादी के धागे–धागे में अपनेपन का अभिमान भरा ।
माता का इसमें मान भरा, अन्यायी का अपमान भरा ।
खादी ही भर–भर देशप्रेम का प्याला मधुर पिलाएगी ।
खादी ही दे दे संजीवन, मुर्दों को पुनः जिलाएगी ।।

हिन्दी के कवि गयाप्रसाद शुक्ल सनेही 'त्रिशूल' उपनाम से उर्दू शायरी करते थे। अपने एक शेर में उन्होंने असहयोग आन्दोलन के युग में स्त्रियों के आभूषण प्रेम पर कटाक्ष करते हुए कहा था–

निहायत बेहया हैं, अब भी जो ज़ेवर पहनते हैं।
जिन्हें है मुल्क का कुछ दर्द, वो खद्दर पहनते हैं।

गांधीजी को विश्वास था कि इन सृजनात्मक कार्यों को व्यापक बहिष्कार के साथ मिलाकर वो देशवासियों को साल भर में स्वराज दिला सकते थे।

असहयोग आन्दोलन ने भारतीय राजनीतिक परिदृश्य में आमूल परिवर्तन कर दिया। गांधीजी के आह्वान पर 11000 से अधिक विद्यार्थी सरकारी विद्यालयों को छोड़कर राष्ट्रीय आन्दोलन में कूद पड़े। ज़ाकिर हुसेन ने पहले अलीगढ़ में और फिर दिल्ली में जामिया मिलिया इस्लामिया की स्थापना की। काशी विद्यापीठ और गुजरात विद्यापीठ भी राष्ट्रीय शिक्षा के केन्द्र बने।

असहयोग आन्दोलन ने किसान आन्दोलनों और मज़दूर आन्दोलनों को नया बल प्रदान किया। जवाहर लाल नेहरू ने अवध में किसान आन्दोलन का नेतृत्व किया और गांधीजी ने अहमदाबाद के कपड़ा मिल कर्मचारियों की हड़ताल में उनका साथ दिया। अहमदाबाद मिल के कर्मचारी पैंतीस प्रतिशत वेतन वृद्धि की मांग कर रहे थे। गांधी जी ने उनकी मांगों के सर्मथन में आमरण अनशन किया। मिल मालिकों को कर्मचारियों की मांगें स्वीकार करनी पड़ीं। परन्तु मूल रूप से असहयोग आन्दोलन में मिल मालिकों और ज़मींदारों को यथा सम्भव प्रसन्न रखने का प्रयास किया गया। आयातित विदेशी सामान के बहिष्कार से आधुनिक स्वदेशी उद्योग को बढ़ावा मिला पर इसका लाभ मिल मालिकों को मिला मज़दूरों को नहीं।

11.5.4 असहयोग आन्दोलन का स्थगन

5 फ़रवरी, 1922 को गोरखपुर के गांव चौरीचौरा में 3 हजार किसानों के जुलूस पर पुलिस ने गोली बारी की। क्रोधित भीड़ ने थाने को आग लगाकर 22 सिपाहियों को मार डाला। इस हत्याकांड की नैतिक ज़िम्मेदारी लेते हुए गांधी जी ने असहयोग आन्दोलन स्थगित कर दिया। वह साध्य प्राप्ति के लिए साधन की पवित्रता में विश्वास करते थे। अंत भला तो सब भला के सिद्धान्त में उनका विश्वास नहीं था। वह साध्य और साधन के बीच में पौधें और बीज का सम्बन्ध मानते थे। उनकी दृष्टि में हिंसा से प्राप्त किया जाने वाला कोई भी परिणाम दीर्घजीवी नहीं हो सकता था। कांग्रेस समिति के 1922 के बारदोली प्रस्ताव द्वारा असहयोग आन्दोलन को स्थगित कर दिया गया और कांग्रेसियों को यह निर्देश दिया गया कि वह राष्ट्रीय पाठशाला, अस्पृश्यता निवारण तथा हिन्दू–मुस्लिम एकता के कार्यों में अपना समय लगाएं।

इस निर्णय से आन्दोलनकारियों को भारी धक्का लगा। छुटपुट हिंसा की घटनाओं के कारण देश–व्यापी आन्दोलन के स्थगन का निर्णय उन्होंने कभी भी अपने दिल से स्वीकार नहीं किया। सुभाषचन्द्र बोस ने इस निर्णय की खुलकर आलोचना की। इस निर्णय का विरोध होने पर भी गांधीजी ने इसे वापस नहीं लिया क्योंकि उनके लिए स्वराज से भी अधिक महत्व अहिंसा का था। बाद में भविष्य की रणनीति को लेकर कांग्रेस की नेताओं में मतभेद उभरे और चितरंजन दास व मोतीलाल नेहरू ने कांग्रेस के अन्तर्गत ही स्वराज दल का गठन किया।

असहयोग आन्दोलन अपने किसी भी लक्ष्य को प्राप्त करने में सफल नहीं रहा किन्तु इसने समस्त राष्ट्र को अनुशासन तथा अहिंसा का पाठ पढ़ाया। लगभग डेढ़ वर्ष तक चले इतने बड़े आन्दोलन में छुटपुट हिंसा तथा लूटमार की घटना होना कोई आश्चर्य की बात नहीं थी। इतिहास में इस आन्दोलन का अत्यन्त महत्व है। यह भारतीय इतिहास का पहला राजनीतिक जन आन्दोलन था और विश्व इतिहास का पहला अहिंसक राजनीतिक जन–आन्दोलन। इसमें धर्म, जाति, क्षेत्र और वर्ग का भेद किए बिना राष्ट्र को एकसूत्र में बांधा गया था। यह

आन्दोलन आगे चल कर भारत ही नहीं अपितु समस्त विश्व के दलित, परतन्त्र समाजों तथा जातियों के अपने अधिकारों के संघर्ष के लिए प्रेरणा स्रोत बना।

स्व मूल्यांकन हेतु प्रश्न

निम्नलिखित विषयों पर संक्षिप्त टिप्पणी लिखिए:

1. (क) जलियांवाला बाग हत्याकाण्ड।

(ख) असहयोग आन्दोलन के प्रमुख लक्ष्य ।

2. नीचे लिखे प्रश्नों के उत्तर दीजिए।

(i) जामिया मिलिया इस्लामिया की स्थापना किसने की?

(ii) चौरीचौरा काण्ड कब हुआ?

11.6 सार संक्षेप

प्रथम विश्वयुद्ध में पहली बार भारत इंग्लैण्ड के सहयोगी के रूप में उभर कर आया। श्रीमती एनीबीसेन्ट तथा लोकमान्य तिलक के 1916 के होमरूल आन्दोलन का लक्ष्य ग्राम पंचायतों, जिला परिषदों, प्रांतीय विधान सभाओं और केन्द्रीय विधान सभा के स्तर तक स्वशासन स्थापित करना था। 1916 में लखनऊ में कांग्रेस–मुस्लिम लीग के संयुक्त अधिवेशन में होमरूल का प्रस्ताव रक्खा गया।

प्रथम विश्वयुद्ध में तुर्की की पराजय के बाद से ही यह निश्चित हो गया था कि उसके सुल्तान को अपदस्थ कर दिया जाएगा। तुर्की के सुल्तान को भारत सहित अनेक देशों के मुस्लिम सम्प्रदाय अपना खलीफा या धार्मिक गुरु मानते थे। भारत में अली बन्धु, मुहम्मद एवं शौकत अली ने खिलाफ़त कमेटी का गठन कर पूरे भारत में अपना अहिंसक आन्दोलन प्रारम्भ किया।

अगस्त, 1920 में खिलाफ़त आन्दोलन के समर्थन में गांधीजी ने असहयोग आन्दोलन प्रारम्भ किया। फ़रवरी, 1922 में चौरीचौरा की घटना के बाद असहयोग आन्दोलन के स्थगन से परिस्थितियों में बदलाव आया। अक्टूबर, 1923 में मुस्तफ़ा कमाल पाशा के नेतृत्व में हुई क्रान्ति ने तुर्की में गणतन्त्र की स्थापना कर दी जिससे खलीफ़ा की सत्ता की पुनर्स्थापना के लिए भारत में आन्दोलन किए जाने का औचित्य ही समाप्त हो गया।

सुरक्षा कानूनों को स्थायित्व देने वाले रौलट एक्ट के विरोध में 13 अप्रैल, 1919 को अमृतसर के जलियांवाला बाग में जनसभा पर बिना चेतावनी दिए जनरल डायर ने गोलीबारी की जिससे सैकड़ों लोग मारे गए। 20 अगस्त, 1920 को गांधीजी ने असहयोग आन्दोलन प्रारम्भ किया। इस आन्दोलन को खिलाफ़त आन्दोलन के समर्थन में, पंजाब में पुलिस की ज़्यादतियों के विरोध में तथा स्वराज प्राप्ति के उद्देश्य से शुरू किया गया था। गांधी जी ने स्वदेशी, अस्पृश्यता निवारण, मद्य–निषेध, नारी–उत्थान, ग्राम स्वराज्य, राष्ट्रीय शिक्षा का विकास तथा साम्प्रदायिक सद्भाव की स्थापना को राष्ट्रीय आन्दोलन का अभिन्न अंग बनाया था। गांधीजी को विश्वास था कि सृजनात्मक कार्यों को व्यापक बहिष्कार के साथ मिलाकर वो देशवासियों को साल भर में स्वराज दिला सकते थे। असहयोग आन्दोलन ने किसान आन्दोलनों और मज़दूर आन्दोलनों को नया बल प्रदान किया।

5 फ़रवरी 1922 को गोरखपुर के गांव चौरीचौरा में क्रोधित भीड़ ने थाने को आग लगाकर 22 सिपाहियों को मार डाला। इस हत्याकांड की नैतिक ज़िम्मेदारी लेते हुए गांधी जी ने असहयोग आन्दोलन स्थगित कर दिया।

11.7 पारिभाषिक शब्दावली

मित्र शक्तियां: (प्रथम विश्वयुद्ध के दौरान) इंग्लैण्ड, फ़्रांस, रूस, इटली, जापान, संयुक्त राज्य अमेरिका आदि।

सेडिशन: राजद्रोह।

पैन–इस्लामिक: मुस्लिम विश्व बन्धुत्व की भावना के अन्तर्गत विश्व के मुसलमानों को एकसूत्र में बांधने के लिए आन्दोलन।

नाइटहुड: ग्रेट ब्रिटेन की सरकार द्वारा 'सर' की उपाधि।

डोमिनियन स्टेटस: स्वशासित स्थिति (उपनिवेशों के सन्दर्भ में स्वशासित उपनिवेश)

ब्रह्मास्त्र: अचूक हथियार

मद्य–निषेधः नशाबन्दी

संजीवनः पुनर्जीवित करने वाली औषधि

बेहयाः निर्लज्ज

11.8 .सन्दर्भ ग्रंथ

ताराचन्दः *भारतीय स्वतन्त्रता आन्दोलन का इतिहास*, भाग 3, नई दिल्ली, 1984

मजूमदार, आर0 सी0 (सम्पादक) – *स्ट्रगल फ़ॉर फ्रीडम*, बम्बई, 1969

चन्द्रा, बिपन – *नेशनलिज़्म एण्ड कोलोनियलिज़्म इन मॉडर्न इण्डिया*, नई दिल्ली, 1979

चन्द्रा, बिपन तथा अन्य – *इण्डियाज़ स्ट्रगल फ़ॉर फ्रीडम*, नई दिल्ली, 1988

सिंह, अयोध्या – *भारत का मुक्ति संग्राम*, दिल्ली, 1977

आज़ाद, अबुल कलाम – *इण्डिया विन्स फ्रीडम*, बम्बई, 1959

हसन, मुशीरुल – *नेशनलिज़्म एण्ड कम्युनल पॉलिटिक्स इन इण्डिया*, दिल्ली, 1979

तेन्दुलकर, जी0 डी0 – *महात्मा*, भाग 1 तथा 2, बम्बई, 1960

11.9 स्व मूल्यांकित प्रश्नों के उत्तर

1. (क) देखिए 11.3.2 होमरूल लीग के कार्य, उसकी उपलब्धियां तथा उसकी दुर्बलताएं।

(ख) देखिए 11.3.2 होमरूल लीग के कार्य, उसकी उपलब्धियां तथा उसकी दुर्बलताएं।

2. (i) सन् 1914 में।

(ii) श्रीमती एनी बीसेन्ट द्वारा स्थापित होमरूल लीग के।

1. (क) देखिए 11.4.2 खिलाफ़त आन्दोलन की रणनीति।

(ख) देखिए 11.4.3 गांधीजी द्वारा खिलाफ़त आन्दोलन को समर्थन।

2. (i) विश्व के अधिकांश मुसलमान तुर्की के सुल्तान को अपना खलीफ़ा मानते थे।

(ii) अली बंधु – मुहम्मद अली तथा शौकत अली।

1. (क) देखिए 11.5.2 जलियांवाला बाग हत्याकाण्ड।

(ख) देखिए 11.5.3 असहयोग आन्दोलन का सृजनात्मक स्वरूप ।

2. नीचे लिखे प्रश्नों के उत्तर दीजिए।

(i) डॉक्टर ज़ाकिर हुसेन ने।

(ii) 5 फ़रवरी, 1922 को।

11.10 अभ्यास प्रश्न

1. होमरूल आन्दोलन की पृष्ठभूमि पर प्रकाश डालिए।
2. खिलाफ़त आन्दोलन के दौरान हिन्दू–मुस्लिम सद्भाव के विकास का आकलन कीजिए।
3. खिलाफ़त आन्दोलन क्यों असफल हुआ?
4. रॉलट एक्ट का आलोचनात्मक परीक्षण कीजिए।
5. चौरीचौरा काण्ड की प्रतिक्रिया में असहयोग आन्दोलन का स्थगन क्या उचित था?

इकाई बारह : क्रान्तिकारी आन्दोलन – संवृद्धि, विचारधारा एवं उपलब्धियां

12.1 प्रस्तावना

12.2 इकाई के उद्देश्य

12.3 क्रान्तिकारी आन्दोलन का दूसरा चरण

12.3.1 क्रान्तिकारियों द्वारा हिंसात्मक गतिविधियों का असहयोग आन्दोलन के दौरान स्थगन

12.3.2 बीसवीं शताब्दी के तीसरे दशक में क्रान्तिकारियों की गतिविधियां

12.3.3 हिन्दुस्तान रिपब्लिकन एसोसियेशन' तथा नौजवान सभा

12.3.4 हिन्दुस्तान सोशलिस्ट रिपब्लिकन आर्मी

12.4 बीसवीं शताब्दी के चौथे दशक में क्रान्तिकारी आन्दोलन

12.4.1 भगत सिंह, उनके साथियों तथा चन्द्रशेखर आज़ाद की शहादत

12.4.2 हिन्दुस्तान रिपब्लिकन आर्मी

12.5 अन्य क्षेत्रों में क्रान्तिकारी गतिविधियां

12.6 क्रान्तिकारी आन्दोलन की दुर्बलताएं

12.7 क्रान्तिकारी आन्दोलन के दूसरे चरण की उपलब्धियां

12.8 सार संक्षेप

12.9 पारिभाषिक शब्दावली

12.10 सन्दर्भ ग्रंथ

12.11 स्व मूल्यांकित प्रश्नों के उत्तर

12.12 अभ्यास प्रश्न

12.1 प्रस्तावना

असहयोग आन्दोलन के स्थगन के बाद बंगाल, संयुक्त प्रान्त तथा पंजाब में क्रान्तिकारी सक्रिय हो गए। पिछली इकाइयों में हम क्रान्तिकारी चरमपंथ के विकास के चर्चा कर चुके हैं इस इकाई में हम भारत में क्रान्तिकारी आन्दोलन के दूसरे चरण की गतिविधियों की चर्चा करेंगे। रूस की बोल्शेविक क्रान्ति के बाद भारतीयों पर भी, विशेषकर क्रान्तिकारियों पर समाजवादी तथा साम्यवादी विचारधारा का प्रभाव पड़ा था। रामप्रसाद बिस्मिल, चन्द्रशेखर आज़ाद, भगत सिंह तथा मास्टर सूर्य सेन क्रान्तिकारी आन्दोलन के दूसरे चरण के प्रमुख स्तम्भ थे। क्रान्तिकारी आन्दोलन के दूसरे चरण में क्रान्तिकारियों को जननायक के रूप में देखा गया और समकालीन साहित्य व पत्रकारिता में उन्हें महत्व दिया गया। इस इकाई में भारतीय राष्ट्रीय आन्दोलन में क्रान्तिकारियों के योगदान से आपको परिचित कराया जाएगा।

12.2 इकाई के उद्देश्य

प्रथम विश्वयुद्ध के बाद भारत में क्रान्तिकारी आन्दोलन को एक नई दिशा प्राप्त हुई। क्रान्तिकारी आन्दोलन के दूसरे चरण में अधिक अनुशासन, अधिक योजनाबद्ध तरीके से क्रान्तिकारी गतिविधियां की गईं और इन पर रूस की बोल्शेविक क्रान्ति का उल्लेखनीय प्रभाव पड़ा। इस दौर में क्रान्तिकारी आन्दोलन का विस्तार हुआ। इस इकाई में बंगाल, पंजाब, संयुक्त प्रान्त तथा अन्य क्षेत्रों में हुई क्रान्तिकारी गतिविधियों की विस्तृत जानकारी दी जाएगी और साथ ही उनके क्रान्तिकारियों के उद्देश्य, उनकी योजनाओं तथा उनकी रणनीतियों से भी आपको परिचित कराया जाएगा। इस इकाई को पढ़ने के बाद आप जानेंगेः

- बंगाल में क्रान्तिकारी आन्दोलन के पुनरुत्थान के विषय में।
- भारतीय क्रान्तिकारियों पर साम्यवादी तथा समाजवादी विचारधारा के प्रभाव के विषय में।
- चन्द्रशेखर आज़ाद, भगत सिंह तथा उनके साथियों की रणनीति तथा उनके सिद्धान्तों के विषय में।
- भारतीय क्रान्तिकारियों की उपलब्धियों तथा उनकी सीमाओं के विषय में।

12.3 क्रान्तिकारी आन्दोलन का दूसरा चरण

12.3.1 क्रान्तिकारियों द्वारा हिंसात्मक गतिविधियों का असहयोग आन्दोलन के दौरान स्थगन

असहयोग आन्दोलन में क्रान्तिकारी विचारधारा के अनेक युवकों जैसे योगेश चन्द्र चटर्जी, सुखदेव, भगवती चरण वोहरा, रामप्रसाद बिस्मिल, मास्टर सूर्य सेन आदि ने भाग लिया था। उन्हें विश्वास हो गया था कि गांधीजी के नेतृत्व में भारतीय स्वराज प्राप्त कर लेंगे। उन्होंने गांधीजी द्वारा चलाए गए स्वदेशी अभियान में अपना पूर्ण सहयोग दिया। प्रसिद्ध क्रान्तिकारी शायर रामप्रसाद बिस्मिल ने स्वदेशी के हर पक्ष को अपनाने के लिए भारतीयों से अनुरोध किया था –

उमड़े दिलों में फिर से, गंगा बहे स्वदेशी,
माता व भगनियों का, श्रृंगार हो स्वदेशी ।
अरमान हो स्वदेशी, ईमान हो स्वदेशी,
व्यापार हो स्वदेशी, सरकार हो स्वदेशी ।
कोरी चटक–मटक पर बिस्मिल न धन लुटाएं,
फूले–फले ये भारत, गुलज़ार हो स्वदेशी ।।

12.3.2 बीसवीं शताब्दी के तीसरे दशक में क्रान्तिकारियों की गतिविधियां

महात्मा गांधी द्वारा चौरीचौरा काण्ड के बाद असहयोग आन्दोलन को स्थगित किए जाने के बाद भारत में क्रान्तिकारी विचारधारा के विकास के लिए बंगाल, पंजाब तथा संयुक्त प्रान्त के नवयुवकों के मध्य पुनः अनुकूल वातावरण बन गया। पुरानी क्रान्तिकारी संस्थाएं जुगान्तर और अनुशीलन समिति फिर सक्रिय हो गईं। हेमचन्द्र घोष तथा लीला नाग ने 'बैंगाल वालन्टीयर्स' का और अनिल राय ने 'श्री संघ' का गठन किया। बंगाली पत्रिकाएं *आत्मशक्ति, सारथी* तथा *बिजौली* क्रान्तिकारी शहीदों की गाथाएं प्रकाशित कर रही थीं। सचिन्द्रनाथ सान्याल की

पुस्तक *बन्दी जीवन* युवा पीढ़ी पर अपनी अमिट छाप छोड़ने में सफल रही थी। इसके हिन्दी तथा पंजाबी अनुवादों की प्रतियां भी नवयुवकों में वितरित की गई थीं। अक्टूबर, 1922 में बंगला के विद्रोही कवि काज़ी नज़रुल इस्लाम का काव्य संग्रह *अग्निवीणा* प्रकाशित हुआ। यह पुस्तक महान क्रान्तिकारी बारीन्द्रनाथ घोष को समर्पित की गई थी। काज़ी नज़रुल इस्लाम ने *धूमकेतु* साप्ताहिक का प्रकाशन किया जिसमें विद्रोह का संदेश दिया गया। महान बंगला उपन्यासकार शरत् चन्द्र चट्टोपाध्याय के क्रान्तिकारियों के जीवन पर आधारित उपन्यास *पाथेर दाबी* को सरकार द्वारा प्रतिबन्धित किए जाने से वह और भी अधिक लोकप्रिय हो गया।

गोपीनाथ साहा ने जनवरी 1924 में कलकत्ते के पुलिस कमिश्नर टेगार्ट की हत्या के प्रयास में डे नामक एक अंग्रेज़ की हत्या कर दी। इसके परिणामस्वरूप बड़े पैमाने पर गिरफ़्तारियां हुईं और अक्टूबर, 1924 के बंगाल ऑर्डिनेन्स ने बंगाल में क्रान्तिकारी गतिविधियों पर नियन्त्रण लगाने में सफलता प्राप्त की।

बीसवीं शताब्दी के तीसरे दशक में क्रान्तिकारियों ने समाजवादी तथा साम्यवादी मूल्यों पर आधारित सरकार की स्थापना का स्वप्न देखा। उन्हें गांधीजी द्वारा पूंजीवादी समर्थक लोकतान्त्रिक सरकार की स्थापना का प्रयास भारत के लिए कल्याणकारी नहीं लगता था। अब क्रान्तिकारी आतंकवाद द्वारा सरकार का तख्ता पलटने की अव्यावहारिकता का क्रान्तिकारियों को भी भान हो चुका था किन्तु अभी भी सरकार को भयभीत करने के लिए और जनता को आन्दोलित करने के लिए इसका आश्रय लेना उनकी मजबूरी थी। परन्तु अब क्रान्तिकारी आम जनता की भागीदारी को अधिक महत्व दे रहे थे और जन–आन्दोलनों के द्वारा सरकार की बुनियाद कमज़ोर करना चाहते थे। अब धार्मिक राष्ट्रवाद को क्रान्तिकारी महत्व नहीं दे रहे थे। उनकी विचारधारा समाजवाद तथा साम्यवाद की ओर उन्मुख हो गई थी। अब स्वतन्त्रता, समानता के सिद्धान्तों पर आधारित शोषण मुक्त समाज की स्थापना उनका लक्ष्य था।

12.3.3 'हिन्दुस्तान रिपब्लिकन एसोसियेशन' तथा नौजवान सभा

सचिन्द्रनाथ सान्याल, जतिन्द्रनाथ सान्याल, जोगेश चन्द्र चटर्जी, रामप्रसाद बिस्मिल तथा चन्द्रशेखर आज़ाद ने अक्टूबर, 1924 में कानपुर में 'हिन्दुस्तान रिपब्लिकन एसोसियेशन' की स्थापना की और इसके कुशल संचालन के लिए राजनीतिक डकैती डालने की योजना बनाई। सचिन सान्याल ने 1924 के अन्तिम महीनों में इसका संविधान तैयार किया जिसमें एसोसियेशन का उद्देश्य भारत में एक संघीय गणतन्त्र की स्थापना रखा गया। इसमें सभी वयस्कों को मताधिकार देने तथा व्यवस्था की सभी शोषक प्रवृत्तियों के उन्मूलन का संकल्प किया गया था। क्लबों, पुस्तकालयों तथा सेवा समितियों के माध्यम से संघ के कार्यक्षेत्र का विस्तार किया जाना था और श्रमिक तथा मज़दूर संघों की स्थापना भी की जानी थी। रेलवेज़, कोयले की खानों आदि के मज़दूरों को क्रान्ति की उपयोगिता के विषय में अवगत कराना तथा जनता में क्रान्तिकारी साहित्य का वितरण करना भी इस संघ के कार्यक्रम में सम्मिलित था।

9 अगस्त, 1925 को 'हिन्दुस्तान रिपब्लिकन एसोसियेशन' के लगभग 10 क्रान्तिकारियों ने लखनऊ के निकट काकोरी में लखनऊ से सहारनपुर जा रही 8 डाउन रेलगाड़ी में ले जा रहे सरकारी खजाने को लूट लिया। इस रेल डकैती के बाद 'हिन्दुस्तान रिपब्लिकन एसोसियेशन' के 29 सदस्य पकड़े गए। काकोरी डकैती काण्ड में रामप्रसाद बिस्मिल, अशफ़ाकउल्ला, राजेन्द्र लाहिड़ी तथा रौशनलाल सिंह को फांसी दे दी गई तथा 4 को आजन्म कारावास तथा 17 को इससे कम अवधि का कारावास दिया गया।

रामप्रसाद बिस्मिल की शायरी क्रान्तिकारी साहित्य की अमूल्य निधि है। उनकी नज़्म *सरफ़रोशी की तमन्ना* सुनकर आज भी भारतवासियों में देशभक्ति की भावना का संचार होता है। अपनी नज़्म *उम्मीदे सुखन* में बिस्मिल ने स्वतन्त्र भारत का स्वप्न देखा था और यह बताया था कि भारतमाता को स्वतन्त्र कराने के प्रयास में अपने प्राणों की आहुति देने वाले वीरों को कृतज्ञ राष्ट्र सदैव अपने श्रद्धा सुमन अर्पित करेगा –

कभी तो कामयाबी पर मेरा हिंदोस्ताँ होगा।
रिहा सय्याद के हाथों से अपना आशियाँ होगा।
शहीदों की चिताओं पर लगेगें हर बरस मेले,

वतन पर मरने वालों का यही बाक़ी निशाँ होगा।।

देश के लिए हंसते–हंसते सूली पर चढ़ने वाले अशफ़ाकउल्ला खान ने भी रामप्रसाद बिस्मिल की तरह सरफ़रोशी की तमन्ना का इज़हार किया था –

गरदन अब हाथ से अपने ही कटानी है हमें,
मादरे हिन्द पे ये भेंट चढ़ानी है हमें ।
किस तरह मरते हैं, असरारे वतन भारत पर,
सारे आलम को यही बात दिखानी है हमें ।।

1926 में भगत सिंह, छबील दास यशपाल आदि नवयुवकों ने 'नौजवान सभा' की स्थापना की। इस संगठन के उद्देश्य थे –

1. भारत में सर्वहारा वर्ग की सरकार की स्थापना।
2. देश के युवकों में राष्ट्रीय एकीकरण की भावना का संचार करना।
3. धर्मनिर्पेक्षता पर आधारित आर्थिक तथा सामाजिक आन्दोलनों को सहयोग प्रदान करना।
4. सर्वहारा वर्ग को संगठित करना।

नौजवान सभा पर साम्यवादी तथा समाजवादी विचारों का स्पष्ट प्रभाव था। केदारनाथ सहगल, शार्दूल सिंह कवीश्वर, आनन्द किशोर महता, पिण्डी दास सोढी आदि इसके सदस्य थे। विश्व–व्यापी आर्थिक मन्दी से पंजाब में शिक्षित बेरोज़गारों की संख्या बढ़ रही थी। छोटे किसान, ज़मींदारों तथा भू स्वामी समृद्ध किसानों के शोषण से त्रस्त होकर साम्यवादी विचारधारा की पोषक 'किरती किसान पार्टी' की ओर झुकने लगे थे।

नौजवान सभा एक ओर बोल्शेविक क्रान्ति के विचारों से बहुत अधिक प्रभावित थी तो दूसरी ओर यह आयरलैण्ड के क्रान्तिकारी आन्दोलन, मिस्र की क्रान्ति, मुस्तफ़ा कमाल पाशा के नेतृत्व में तुर्की की क्रान्ति तथा चीन में सन् यात् सेन की क्रान्ति से भी प्रभावित थी। नौजवान सभा रूस के साथ मैत्रीपूर्ण सम्बन्ध स्थापित करने के लिए प्रयत्नशील थी।

12.3.4 हिन्दुस्तान सोशलिस्ट रिपब्लिकन आर्मी

'हिन्दुस्तान रिपब्लिकन एसोसियेशन' के बाकी बचे हुए क्रान्तिकारियों ने चन्द्रशेखर आज़ाद के नेतृत्व में अजोय घोष, फणीन्द्रनाथ घोष और 'नौजवान सभा' के भगत सिंह, जैसे नवयुवकों को अपने दल में शामिल किया और फिर दिल्ली के फ़िरोज़शाह कोटला के खण्डहरों में 9–10 सितम्बर, 1928 को 'हिन्दुस्तान सोशलिस्ट रिपब्लिकन आर्मी' की स्थापना की। इस लोकतान्त्रिक संगठन का उद्देश्य भारत में समाजवादी गणतन्त्रतात्मक राज्य की स्थापना करना था। 'हिन्दुस्तान सोशलिस्ट रिपब्लिकन आर्मी' का धर्मनिर्पेक्षता में विश्वास था। भगतसिंह तो खुद को नास्तिक कहलाने में गर्व का अनुभव करते थे। बीसवीं शताब्दी के तीसरे दशक में क्रान्तिकारी गतिविधियों में प्रथम विश्वयुद्ध के दौरान वाली तेज़ी नहीं थी लेकिन इस काल में क्रान्ति के विभन्न पहलुओं पर चिन्तन कर उसे एक निश्चित विचारधारा और एक सुदृढ़ आधार देने का महत्वपूर्ण कार्य किया गया। 17 दिसम्बर, 1928 को लाहौर में 'हिन्दुस्तान सोशलिस्ट रिपब्लिकन आर्मी' ने लाला लाजपत राय पर प्रहार करने वाले स्कॉट की हत्या करने की योजना बनाई किन्तु उनके इस अभियान में सार्जेन्ट सॉन्डर्स की मृत्यु हो गई। सॉन्डर्स की हत्या के बाद 'हिन्दुस्तान सोशलिस्ट रिपब्लिकन आर्मी' ने पोस्टर्स के माध्यम से देश के महान नेता की निर्मम हत्या के लिए ज़िम्मेदार लोगों में से एक अधिकारी की हत्या को सर्वथा उचित ठहराया।

8 अप्रैल, 1929 को भगतसिंह और बटुकेश्वर दत्त ने केन्द्रीय विधान सभा में बहरी अंग्रेज़ सरकार को धमका कर जगाने के लिए स्मोक बम फेंका, क्रान्ति का संदेश देने वाले इश्तहार फेंके और खुद को गिरफ़्तार करा दिया। यह बम तब फेंका गया जब कि 'एन्टी–लेबर ट्रेड डिस्प्यूट्स बिल' तथा 'पब्लिक सेफ़्टी बिल' पर बहस होनी थी। क्रान्तिकारी संवैधानिक प्रक्रिया में विश्वास नहीं करते थे और वो जनता तक इस बम के धमाके से यही संदेश पहुंचाना चाहते थे। पण्डित जवाहर लाल नेहरू ने अपनी पुत्री इन्दिरा के नाम लिखे पत्रों (*ग्लिम्पसेज़ ऑफ वर्ल्ड हिस्ट्री*) में इस बात का उल्लेख किया है कि सेन्ट्रल लेजिसलेटिव एसेम्बली में हुए बम के धमाके ने सबका ध्यान

अपनी ओर आकर्षित करने में सफलता पाई थी। भगत सिंह और उनके साथियों ने अदालत की कार्यवाही का अपने प्रचार के लिए उपयोग किया। उनका लगाया 'इंकलाब ज़िन्दाबाद' का नारा हर देशभक्त की जुबान पर चढ़ गया। अपने ऊपर मुकदमा चलाए जाते समय भगत सिंह ने यह स्पष्ट किया कि वह एकाद हिंसा की घटना को व्यवहार रूप देने वाले बम अथवा पिस्तौल के धर्म में विश्वास नहीं करते हैं बल्कि वो विदेशी तथा भारतीय पूंजीवादी व्यवस्था को उखाड़ फेंक कर समाज में आमूल परिवर्तन लाकर सर्वहारा वर्ग की तानाशाही लाना चाहते हैं। क्रान्ति सभी का अपरिवर्तनीय अधिकार है और स्वतन्त्रता सभी का जन्म सिद्ध अधिकार है। इस महान लक्ष्य की प्राप्ति के लिए कोई भी कुर्बानी कम है। भगतसिंह ने अदालत में यह भी बतलाया कि एसेम्बली में बम फेंक कर वह किसी को मारना नहीं चाहते थे बल्कि उनका उद्देश्य जनता के कल्याण के प्रति सर्वथा उदासीन तानाशाह ब्रिटिश भारतीय सरकार को चेताना था। भगत सिंह ने बताया कि फ्रांसीसी क्रान्ति में बास्तील की जेल का दमन क्रान्तिकारियों की आवाज़ कुचलने में नाकाम रहा और रूस में साइबेरिया के निर्वासित क्रान्तिकारियों की आवाज़ को निर्मम अत्याचारों के बाद भी दबाया नहीं जा सका। भगत सिंह ने इन क्रान्तियों का हवाला देते हुए यह प्रश्न उठाया कि ब्रिटिश सरकार सुरक्षा अधिनियमों और एन्टी टैरेरिस्ट एक्ट्स बनाकर भारत में आने वाले विप्लव को कैसे रोक सकती है।

'हिन्दुस्तान सोशलिस्ट रिपब्लिकन आर्मी' की लोकप्रियता में अभूतपूर्व वृद्धि हुई। 13 सितम्बर, 1929 को जतिननाथ दास ने जेल में कैदियों को बेहतर सुविधा के लिए आन्दोलन के अन्तर्गत 64 दिन के अनशन के बाद अपने प्राण त्याग दिए। लाहौर से उनके शव को कलकत्ता ले जाया गया। हर स्टेशन पर श्रद्धालुओं ने उनके शव पर फूल चढ़ाए। उनके अंतिम संस्कार में शामिल लोगों का जुलूस दो मील लम्बा था।

स्व मूल्यांकन हेतु प्रश्न

निम्नलिखित विषयों पर संक्षिप्त टिप्पणी लिखिए:

1. (क) रामप्रसाद बिस्मिल का बलिदान और उनकी शायरी।

(ख) भगत सिंह की क्रान्तिकारी विचारधारा।

2. नीचे लिखे प्रश्नों के उत्तर दीजिए।

(i) लाला लाजपत राय की मौत का बदला किस की हत्या कर के लिया गया?

(ii) 'हिन्दुस्तान सोशलिस्ट रिपब्लिकन आर्मी' की स्थापना कब हुई?

12.4 बीसवीं शताब्दी के चौथे दशक में क्रान्तिकारी आन्दोलन

12.4.1 भगत सिंह, उनके साथियों तथा चन्द्रशेखर आज़ाद की शहादत

लाहौर षडयन्त्र के अन्तर्गत स्पेशल ट्रिब्यूनल द्वारा अक्टूबर, 1930 को भगतसिंह, सुखदेव तथा राजगुरु को फांसी की सज़ा सुनाई गई। अनेक क्रान्तिकारियों को कालापानी भेज दिया गया। नौजवान सभा द्वारा ब्रिटिश सम्राट से भगत सिंह तथा उनके साथियों के लिए दया की अपील को ठुकरा दिया गया। फांसी दिए जाने से लगभग 50 दिन पहले अपने साथियों को लिखे एक पत्र में भगतसिंह ने आतंकवाद को क्षणिक आवेश की उपज बताते हुए खुद को आतंकवादी न मानकर क्रान्तिकारी कहा था और यह बताया था कि उनके अपने आदर्श हैं और देश के सर्वांगीर्ण विकास के लिए उनके पास दूरगामी योजनाएं हैं। उन्होंने यह भी स्पष्ट किया कि वह बम और पिस्तौल की मदद से आतंक फैलाने में विश्वास नहीं करते हैं पर कभी–कभी ऐसी परिस्थितियां आ जाती हैं कि उनका प्रयोग अनिवार्य हो जाता है।

भगतसिंह को फांसी दिए जाने से पहले ही वह देश के नायक बन गए। फ़रवरी, 1931 में सुभाषचन्द्र बोस ने भगतसिंह को इंकलाब का पर्याय बताया। 23 मार्च, 1931 को जब लाहौर की जेल में भगत सिह, सुखदेव तथा राजगुरु को फांसी दी गई तो सारे देश में शोक की लहर दौड़ पड़ी। जनता ने गांधीजी पर यह आरोप लगाया कि उन्होंने गवर्नर जनरल लॉर्ड इरविन से समझौता करते समय क्रान्तिकारी नवयुवकों की फांसी की सज़ा को आजन्म कारावास में बदलने के लिए सरकार पर किसी प्रकार का दबाव नहीं डाला। जवाहरलाल नेहरू ने अपनी आत्मकथा में भगत सिंह की अप्रत्याशित लोकप्रियता के विषय में लिखा है। राष्ट्रीय आन्दोलन के महानायक गांधीजी को पहली बार जनता के आक्रोश का सामना करना पड़ा। भगतसिंह तथा उनके साथियों को फांसी दिए जाने के बाद गांधीजी

के विरोध में काले झण्डे दिखाए गए। 'इण्टेलीजेन्स ब्यूरो' के वृतान्त '*टैरेरिज़्म इन इण्डिया (1917–1936)* में यह बताया गया है कि कुछ समय के लिए भगत सिंह लोकप्रियता में गांधीजी से भी आगे निकल गए थे।

चन्द्रशेखर आज़ाद अपने अन्य साथियों के साथ क्रान्तिकारी गतिविधियों में संलग्न रहे। उन्होंने भगत सिंह तथा अपने और साथियों को जेल तोड़ कर छुड़ाने की असफल योजना भी बनाई। 27 फ़रवरी, 1931 को पुलिस को आज़ाद के छिपने की जगह के विषय में एक खबरी से सूचना प्राप्त हो गई और वो इलाहाबाद के एल्फ्रेड पार्क में पुलिस से मुठभेड़ करते समय घायल हो गए। पुलिस द्वारा पकड़े जाने से पहले उन्होंने खुद को गोली मारकर पुलिस के हाथों ज़िन्दा न पकड़े जाने के अपने प्रण को पूरा किया।

भगत सिंह की विचारधारा मार्क्सवाद से अत्यन्त प्रभावित थी। इस नवयुवक ने धर्म के बन्धनों से मुक्त होकर खुद को नास्तिक कहा क्योंकि उसकी दृष्टि में किसी भी धर्म में आस्था रखने वाला दूसरे धर्मों में आस्था रखने वालों के प्रति स्वाभाविक रूप से संकुचित दृष्टिकोण रखता है।

12.4.2 हिन्दुस्तान रिपब्लिकन आर्मी

बंगाल में जुगान्तर तथा अनुशीलन दल अब 'कार्मी सभा' के माध्यम से कांग्रेस की गतिविधियों में अधिक संलग्न हो गए थे जिसके कारण चिटगांव के विद्रोही दल के मास्टर सूर्य सेन आदि उनसे अप्रसन्न थे। सूर्य सेन ने असहयोग आन्दोलन में सक्रिय रूप से भाग लिया था। वह राष्ट्रीय स्कूल में अध्यापक थे इसी लिए वह मास्टर दा या मास्टर सूर्य सेन के नाम से प्रसिद्ध थे। सूर्यसेन चिटगांव जिला कांग्रेस कमेटी के सचिव थे। धीरे–धीरे सूर्य सेन क्रान्तिकारी विचारधारा के पोषक बन गए। उनके दल में अनन्त सिंह, अम्बिका चक्रवर्ती, गणेश घोष आदि नवयुवक सम्मिलित हो गए। इस काल में क्रान्तिकारियों पर साम्यवादी प्रभाव स्पष्ट रूप से परिलक्षित होने लगा था। साम्यवादी आतंकवाद के अतिरिक्त अभी भी पुरानी परम्परा का आतंकवाद कायम था जिसमें कि व्यक्तिगत शौर्य, साहस और बलिदान के द्वारा छुटपुट हिंसा की घटना कर फांसी पर चढ़ जाने अथवा पुलिस की गोलियों का शिकार होकर शहीद हो जाने की लालसा होती थी। पुराने क्रान्तिकारियों में हेमचन्द्र कानूनगो तथा भूपेन्द्रनाथ दत्त अभी भी यह दलील दे रहे थे कि क्रान्ति के लिए अराजकता आवश्यक है क्योंकि जैसे अराजकता के बिना अन्तरिक्ष में कोई नया सितारा जन्म नहीं ले सकता उसी तरह से राजनीतिक अराजकता के बिना आमूल परिवर्तन असम्भव है। इस विचारधारा में शोषक व्यवस्था के हर अंग पर तब तक चोट करते रहना आवश्यक बताया गया था जब तक कि उसका समूल विनाश न हो जाए और इसके लिए किसान तथा श्रमिक संगठनों को गठित किया जाना ज़रूरी समझा गया था। विश्व–व्यापी आर्थिक मन्दी का दुष्प्रभाव भारत पर भी पड़ रहा था। शिक्षित बेरोज़गार क्रान्तिकारी आन्दोलन की ओर उन्मुख हो रहे थे। 1929 में सूर्य सेन ने सशस्त्र विद्रोह की गतिविधियों के क्रियान्वयन के लिए 'हिन्दुस्तान रिपब्लिकन आर्मी' की स्थापना की। इसके कार्यक्रमों में –

अंग्रेज़ों के आमोद–प्रमोद के ठिकानों (क्लब, होटल, सिनेमाघर आदि) पर धावा बोलकर अंग्रेज़ों की हत्याएं करना।
दमदम हवाई अड्डे को जलाने का प्रयास करना।कलकत्ते की बिजली तथा पेट्रोल की आपूर्ति में बाधा पहुंचाना।
बिजली के तार काटकर ट्राम सेवा ठप्प करना।रेलवे लाइनों तथा रेलवे पुलों को बारूद से उड़ा कर रेल यातायात में बाधा पहुंचाना।टेलीग्राफ़ के तारों को काटकर संचार व्यवस्था को भंग करना शामिल था।

अप्रैल, 1930 में उन्होंने अंग्रेज़ों के विरुद्ध युद्ध की घोषणा कर दी। 18 अप्रैल, 1930 को सूर्य सेन के नेतृत्व में चिटगांव के शस्त्रागार पर कब्ज़ा कर लिया गया और 'हिन्दुस्तान रिपब्लिकन आर्मी' द्वारा स्वतन्त्रता की घोषणा भी की गई। उल्लेखनीय बात यह है कि शस्त्रागार पर कब्ज़ा करते समय क्रान्तिकारियों ने गांधी राज की स्थापना की घोषणा की थी परन्तु शस्त्रागार से भागते समय जल्दबाज़ी में कारतूसों की पेटियां वहीं छूट गई। शस्त्रागार पर हमले के तुरन्त बाद मास्टर सूर्य सेन ने स्वतन्त्र भारत की एक अस्थायी सरकार का गठन किया जिसके वह स्वयं राष्ट्रपति बने। परन्तु पुलिस को उनके ठिकानों की खबर मिल चुकी थी। 22 अप्रैल को जलालाबाद की पहाड़ियों पर पुलिस के साथ मुठभेड़ में 12 क्रान्तिकारी शहीद हुए परन्तु उन्होंने इस मुठभेड़ में अनेक सिपाहियों को मार गिराया। कल्पना दत्त सहित 'चिटगांव आर्मरी रेड' में पकड़े गए अनेक क्रान्तिकारियों को आजन्म कारावास देकर

कालापानी भेजा गया। मास्टर सूर्य सेन अभी भी पुलिस की पकड़ में नहीं आए और उन्होंने छापामार युद्धनीति अपनाकर अंग्रेज़ सरकार के लिए नई मुसीबतें खड़ी कीं।

अकेले बंगाल प्रान्त में 1930 में क्रान्तिकारी आतंकवाद की कुल 56 वारदातें हुईं। कलकत्ते में प्रदेश सरकार के मुख्य केन्द्र 'राइटर्स बिल्डिंग' पर 8 दिसम्बर को छापा मारा गया। दो युवकों ने बंगाल के जेल महानिरीक्षक को उसके कार्यालय में गोली मार कर उसकी हत्या कर दी। दिसम्बर 1931 में शान्ति घोष तथा सुनीति चौधरी नामक दो युवतियों ने कोमिला के जिलादण्डाधिकारी को गोली मार कर उसकी हत्या कर दी। फ़रवरी, 1932 में बीना दास नामक नवयुवती ने कलकत्ता विश्वविद्यालय के दीक्षान्त समारोह में उपाधि वितरण के समय बंगाल के गवर्नर की हत्या कर दी। सितम्बर, 1932 में प्रीति लता वाडेकर ने चटगांव में पहाड़तली रेलवे इन्सटीट्यूट पर हमला बोल दिया किन्तु वह इसमें स्वयं गम्भीर रूप से घायल हो गई। पकड़े जाने से पहले उसने आत्महत्या कर ली।

मास्टर सूर्य सेन की क्रान्तिकारी गतिविधियां जारी रहीं किन्तु फ़रवरी 1933 में उनके एक विश्वासघाती साथी ने उन्हें गिरफ़्तार करा दिया। जनवरी, 1934 में उन्हें फांसी दे दी गई। सूर्यसेन के अवसान के बाद क्रान्तिकारी आन्दोलन शिथिल पड़ गया। अनेक क्रान्तिकारी जेलों से मुक्त होने के बाद क्रान्ति का मार्ग छोड़कर या तो साम्यवादी बन गए या फिर समाजवाद की ओर उन्मुख हुए।

'हिन्दुस्तान रिपब्लिकन आर्मी' पंजाब में भी बहुत सक्रिय हो गई। 1930 में पंजाब में क्रान्तिकारी आतंकवाद के 26 मामले दर्ज किए गए। 1930 से 1933 तक भी बंगाल में क्रान्तिकारी गतिविधियां जारी रहीं। हत्या, हत्या के प्रयास, डकैती, बम विस्फोट और छापामार हमलों में 40 से अधिक सरकारी कर्मचारी और गैर सरकारी कर्मचारी मारे गए तथा 33 क्रान्तिकारी मारे गए। 1933 तक सरकार ने क्रांतिकारियों का लगभग पूरी तरह सफ़ाया कर दिया। 1933 में मास्टर सूर्य सेन को फांसी दे दी गई ओर अनेक क्रांतिकारियों को कड़ी सजाएं दी गईं। सूर्यसेन को फांसी दिए जाने के बाद बंगाल में क्रान्तिकारी आन्दोलन शिथिल पड़ गया।

12.5 अन्य क्षेत्रों में क्रान्तिकारी गतिविधियां

जुलाई, 1933 में बम्बई प्रान्त के कार्यवाहक गवर्नर एवस्ट होस्टन को पूना में मारने का असफल प्रयास किया गया। पेशावर, आसाम बर्मा में आतंकवादियों द्वारा बम विस्फोट किए जाने के समाचार मिले।

12.6 क्रान्तिकारी आन्दोलन की दुर्बलताएं

गांधीजी ने क्रांतिकारियों के हिंसात्मक मार्ग की निंदा की। आम जनता ने भी क्रांतिकारियों का विशेष साथ नहीं दिया। धनाभाव, शस्त्रों की कमी, अपने साथियों द्वारा विश्वासघात, पुलिस की सतर्कता, गुप्तचर विभाग की कर्मठता और क्रान्तिकारी संगठन की दुर्बलताओं के कारण क्रांतिकारी अपने लक्ष्य में असफल रहे।

12.7 क्रान्तिकारी आन्दोलन के दूसरे चरण की उपलब्धियां

क्रान्तिकारी आन्दोलन के दूसरे चरण में पहले चरण की अपेक्षा अधिक संगठित तथा अधिक अनुशासित एवं योजनाबद्ध गतिविधियां हुईं। भगत सिंह की परिपक्व विचारधारा ने उसके विरोधियों को भी प्रभावित किया। क्रान्ति के दूसरे चरण में जनता की भागीदारी बढ़ी और क्रान्ति के क्षेत्र का विस्तार हुआ। मास्टर सूर्य सेन की योजनाओं और उनकी गोपनीयता ने अंग्रेज़ सरकार तक को चकित कर दिया। चटगांव शस्त्रागार पर धावा बोलने के बाद वह लगभग तीन साल तक पुलिस के हाथ नहीं आए। क्रान्तिकारियों ने पहले चरण की तुलना में आपस में अधिक तालमेल दिखाया। बंगाल, पंजाब और संयुक्त प्रान्त में क्रान्तिकारियों ने मिलकर कार्य किए। क्रान्तिकारियों की मज़दूरों तथा किसानों के हितों के लिए प्रतिबद्धता ने उनके आन्दोलन को जन–आन्दोलन बनने की ओर अग्रसर किया परन्तु चन्द्रशेखर आज़ाद तथा मास्टर सूर्य सेन जैसे संगठनकर्ताओं के अवसान के बाद कुशल नेतृत्व के अभाव में क्रान्तिकारी आन्दोलन धीरे–धीरे शिथिल पड़ गया। परन्तु अपने एक लक्ष्य में यह अवश्य सफल रहा। भारतीय नवयुवकों में इसने अंग्रेज़ सरकार के प्रति विद्रोह की भावना जागृत करने में पर्याप्त सफलता प्राप्त की। क्रान्तिकारियों ने अहिंसात्मक आन्दोलन में सक्रिय नेताओं का संरक्षण भी प्राप्त किया। गणेश शंकर विद्यार्थी ने अनेक क्रान्तिकारियों को संरक्षण प्रदान किया। सुभाष चन्द्र बोस ने खुलेआम भगत सिंह के बलिदान की प्रशंसा की और आगे चलकर वह स्वयं क्रान्तिकारी बन गए। क्रान्तिकारी आन्दोलन ने समकालीन साहित्य और पत्रकारिता को

अत्यन्त प्रभावित किया। रबीन्द्रनाथ टैगोर, शरत् चन्द्र चट्टोपाध्याय, यशपाल, मन्मथनाथ गुप्त, भगवतीचरण वर्मा आदि ने क्रान्तिकारियों के जीवन पर उपन्यास लिखे। इलाहाबाद से प्रकाशित पत्र *चाँद* ने फांसी अंक निकाला। माखनलाल चतुर्वेदी के पत्र *प्रभा* में क्रान्तिकारियों के बलिदान को नमन किया गया। माखनलाल चतुर्वेदी की कविता *फूल की अभिलाषा* में एक फूल मातृभूमि पर शीश चढ़ाने वालों की चरण धूलि में स्वयं को समर्पित करना चाहता है। कुल मिलाकर क्रान्तिकारी आन्दोलन असफल नहीं कहा जा सकता। अब इसे सम्मान की दृष्टि से देखा जाने लगा और इसे देशभक्ति की पराकाष्ठा के रूप में स्वीकार किया जाने लगा।

स्व मूल्यांकन हेतु प्रश्न

निम्नलिखित विषयों पर संक्षिप्त टिप्पणी लिखिए:

1. (क) मास्टर सूर्य सेन की क्रान्तिकारी गतिविधियां।

(ख) क्रान्तिकारी आन्दोलन का समकालीन साहित्य पर प्रभाव।

2. नीचे लिखे प्रश्नों के उत्तर दीजिए।

(i) कल्पना दत्त किस क्रान्तिकारी दल से सम्बद्ध थीं?

(ii) चन्द्रशेखर आज़ाद कहां शहीद हुए?

12.8 सार संक्षेप

असहयोग आन्दोलन को स्थगित किए जाने के बाद क्रान्तिकारियों ने समाजवादी तथा साम्यवादी मूल्यों पर आधारित सरकार की स्थापना का स्वप्न देखा। सचिन्द्रनाथ सान्याल, जतिन्द्रनाथ सान्याल, रामप्रसाद बिस्मिल तथा चन्द्रशेखर आज़ाद ने अक्टूबर, 1924 में 'हिन्दुस्तान रिपब्लिकन एसोसियेशन' की स्थापना की। 9 अगस्त, 1925 को 'हिन्दुस्तान रिपब्लिकन एसोसियेशन' के क्रान्तिकारियों ने काकोरी में रेलगाड़ी में ले जा रहे सरकारी खजाने को लूट लिया। काकोरी डकैती काण्ड में रामप्रसाद बिस्मिल, अशफ़ाकउल्ला, राजेन्द्र लाहिड़ी तथा रौशनलाल सिंह को फांसी दे दी गई। 1926 में भगत सिंह, छबील दास यशपाल आदि नवयुवकों ने 'नौजवान सभा' की स्थापना की। चन्द्रशेखर आज़ाद के नेतृत्व में अजोय घोष, फणीन्द्रनाथ घोष और भगत सिंह ने 'हिन्दुस्तान सोशलिस्ट रिपब्लिकन आर्मी' की स्थापना की। दिसम्बर, 1928 में लाहौर में 'हिन्दुस्तान सोशलिस्ट रिपब्लिकन आर्मी' ने लाला लाजपत राय पर प्रहार करने वाले एक अंग्रेज़ अधिकारी सॉन्डर्स की हत्या कर दी। अप्रैल, 1929 में भगतसिंह और बटुकेश्वर दत्त ने केन्द्रीय विधान सभा में बहरी अंग्रेज़ सरकार को धमका कर जगाने के लिए स्मोक बम फेंका और खुद को गिरफ़्तार करा दिया। लाहौर षडयन्त्र के अन्तर्गत 23 मार्च, 1931 को लाहौर की जेल में भगत सिह, सुखदेव तथा राजगुरु को फांसी दी गई। चन्द्रशेखर आज़ाद 27 फ़रवरी, 1931 को इलाहाबाद के एल्फ्रेड पार्क में पुलिस से मुठभेड़ में शहीद हुए।

सूर्य सेन ने 'हिन्दुस्तान रिपब्लिकन आर्मी' की स्थापना की। 18 अप्रैल, 1930 को सूर्य सेन के नेतृत्व में चिटगांव के शस्त्रागार पर कब्ज़ा कर लिया गया। अकेले बंगाल प्रान्त में 1930 में क्रान्तिकारी आतंकवाद की कुल 56 वारदातें हुईं। फ़रवरी 1933 में मास्टर सूर्य सेन के एक विश्वासघाती साथी ने उन्हें गिरफ़्तार करा दिया। इसी वर्ष उन्हें फांसी दे दी गई। 1930 में पंजाब में क्रान्तिकारी आतंकवाद के 26 मामले दर्ज किए गए। 1933 तक सरकार ने क्रांतिकारियों का लगभग पूरी तरह सफ़ाया कर दिया। धनाभाव, शस्त्रों की कमी, अपने साथियों द्वारा विश्वासघात तथा पुलिस की सतर्कता के कारण क्रांतिकारी अपने लक्ष्य में असफल रहे। भारतीय नवयुवकों में इसने अंग्रेज़ सरकार के प्रति विद्रोह की भावना जागृत करने में पर्याप्त सफलता प्राप्त की। क्रान्तिकारी आन्दोलन ने समकालीन साहित्य और पत्रकारिता को अत्यन्त प्रभावित किया। अब इसे सम्मान की दृष्टि से देखा जाने लगा।

12.9 पारिभाषिक शब्दावली

पाथेर दाबी: पथ के दावेदार

गुलज़ार: उद्यान

सरफ़रोशी: सर कटाना

सय्यादः बहेलिया, चिड़िया पकड़ने वाला

सर्वहाराः श्रमजीवी वर्ग

एन्टी टैरेरिस्टः आतंकवाद विरोधी

आर्मरीः शस्त्रागार

12.10 सन्दर्भ ग्रंथ

ताराचन्दः *भारतीय स्वतन्त्रता आन्दोलन का इतिहास*, भाग 3, नई दिल्ली, 1984

मजूमदार, आर0 सी0 (सम्पादक) – *स्ट्रगल फ़ॉर फ्रीडम*, बम्बई, 1969

चन्द्रा, बिपन – *नेशनलिज़्म एण्ड कोलोनियलिज़्म इन मॉडर्न इण्डिया*, नई दिल्ली, 1979

चन्द्रा, बिपन तथा अन्य – *इण्डियाज़ स्ट्रगल फ़ॉर फ्रीडम*, नई दिल्ली, 1988

सिंह, अयोध्या – *भारत का मुक्ति संग्राम*, दिल्ली, 1977

इण्टेलीजेन्स ब्यूरो रिपोर्ट – *टेरेरिज़्म इन इण्डिया (1917–1936)*, नई दिल्ली, 1970

भगत सिंह – *व्हाई आई एम एन एथीइस्ट*, दिल्ली, पुनर्मुद्रित 1979

12.11 स्व मूल्यांकित प्रश्नों के उत्तर

1. (क) देखिए 12.3.3 'हिन्दुस्तान रिपब्लिकन एसोसियेशन' तथा नौजवान सभा।

(ख) देखिए 12.3.4 हिन्दुस्तान सोशलिस्ट रिपब्लिकन आर्मी।

2. (i) सार्जेन्ट सॉन्डर्स की हत्या करके।

(ii) 9–10 सितम्बर, 1928 को।

1. (क) देखिए 12.4.2 हिन्दुस्तान रिपब्लिकन आर्मी।

12.1.3 (ख) देखिए 12.7 क्रान्तिकारी आन्दोलन के दूसरे चरण की उपलब्धियां

2. (i) हिन्दुस्तान रिपब्लिकन आर्मी से।

(ii) इलाहाबाद के एल्फ्रेड पार्क में।

12.12 अभ्यास प्रश्न

1. काकोरी ट्रेन डकैती का वर्णन कीजिए।
2. हिन्दुस्तान सोशलिस्ट रिपब्लिकन पार्टी की गतिविधियों पर प्रकाश डालिए।
3. क्रान्तिकारी आन्दोलन में महिलाओं की भूमिका का आकलन कीजिए।
4. भारतीय क्रान्तिकारी आन्दोलन ने समकालीन साहित्य को कहां तक प्रभावित किया?
5. भारत में क्रान्तिकारी आन्दोलन क्यों असफल हुआ?

इकाई तेरह : स्वराज्य पार्टी एवं साइमन कमीशन

13.1 प्रस्तावना

13.2 इकाई के उद्देश्य

13.3 असहयोग आन्दोलन के स्थगन के बाद स्वराज दल का गठन तथा उसकी कार्य–प्रणाली

13.3.1. कांग्रेस का अन्तर्कलह तथा स्वराज दल का गठन

13.3.2. स्वराज दल की कार्य–प्रणाली

13.3.3 स्वराज दल की उपलब्धियां तथा सीमाएं

13.3.4 अपरिवर्तनवादियों (नोचेन्जर्स) की गतिविधियां और उनका महत्व

13.4 साइमन कमीशन के गठन से लेकर पूर्ण स्वराज्य की मांग तक की गतिविधियां

13.4.1 साइमन कमीशन का गठन तथा उसका भारत में विरोध

13.4.2 नेहरू रिपोर्ट

13.4.3. साइमन कमीशन की कार्य–प्रणाली, उसकी संस्तुतियां तथा भारतीयों द्वारा पूर्ण स्वराज्य प्राप्ति के लक्ष्य की घोषणा

13.5 सार संक्षेप

13.6 पारिभाषिक शब्दावली

13.7 सन्दर्भ ग्रंथ

13.8 स्व मूल्यांकित प्रश्नों के उत्तर

13.9 अभ्यास प्रश्न

13.1 प्रस्तावना

चौराचौरी काण्ड के बाद असहयोग आन्दोलन के स्थगन की चर्चा हम पिछली इकाई में कर चुके हैं। गांधीजी द्वारा चुनावों के बहिष्कार के निर्णय का आमतौर पर स्वागत नहीं किया गया था। इस इकाई में स्वराज्य दल के गठन, जन–प्रतिनिधि सभाओं में उसके सदस्यों द्वारा सरकार की अनुदार नीतियों के खुलासे, कांग्रेस के अपरिवर्तनवादियों द्वारा किए गए सृजनात्मक कार्यों, सात श्वेत ब्रिटिश सांसदो से गठित स्टेट्यूटरी कमीशन (साइमन कमीशन) का सभी भारतीय राजनीतिक दलों द्वारा बहिष्कार, सभी भारतीय राजनीतिक दलों के सहयोग से तैयार की गई नेहरू रिपोर्ट तथा साइमन कमीशन की सिफ़ारिशों की चर्चा की जाएगी।

भारतीयों की मांग अब स्वराज्य से बढ़कर डोमिनियन स्टेटस तथा पूर्ण स्वराज्य तक पहुंच गई थी। चौरीचौरा काण्ड के बाद 1922 के बारदोली प्रस्ताव द्वारा असहयोग आन्दोलन को स्थगित कर दिया गया था। राजनीतिक निष्क्रियता के कारण कांग्रेस का जनाधार कमज़ोर पड़ने लगा। कांग्रेस ने 1919 के एक्ट की व्यवस्था के अंतर्गत होने वाले 1920 के चुनाव का बहिष्कार किया था और गांधीजी 1923 के चुनाव का भी बहिष्कार करना चाहते थे जब कि सी0 आर0 दास, मोतीलाल नेहरू, विठ्ठल भाई पटेल तथा हकीम अजमल खान चुनावों में भाग लेकर जन–प्रतिनिधियों के द्वारा विधान सभाओं तथा परिषद में सरकार की गलत नीतियों का खुलासा करने के पक्ष में थे। कांग्रेस के अन्तर्गत स्वराज दल ने चुनावों में भाग लेने का निश्चय किया और उसमें उल्लेखनीय सफलता प्राप्त की। स्वराजियों ने जन–प्रतिनिधि सभाओं में सरकार की दमनकारी नीतियों का पर्दाफ़ाश तथा प्रान्तों में स्थापित द्वैध शासन की दुर्बलताओं को उजागर करने में सफलता प्राप्त की।

1919 के गवर्नमेंट ऑफ़ इण्डिया एक्ट के एक प्रावधान के अनुसार अधिनियम के पारित होने के 10 साल बाद अर्थात् 1929 तक एक स्टेटच्यूटरी कमीशन की नियुक्ति की जानी थी। इस कमीशन को 1919 के गवर्नमेंट ऑफ़ इण्डिया एक्ट की कार्य प्रणाली की जांच कर उसका आकलन करना था और भविष्य के लिए आवश्यक सुधारों की संस्तुति भी करनी थी। 1924 में स्थापित मडीमैन कमेटी ने प्रान्तों में द्वैध शासन की व्यवस्था की अक्षमता पर प्रकाश डाला था। 8 नवम्बर, 1927 को सर जॉन साइमन के नेतृत्व में ब्रिटिश सांसदों का एक स्टेट्यूटरी कमीशन 1919 के एक्ट के प्रावधानों की समीक्षा और भविष्य में संवैधानिक सुधारों की योजना बनाने के लिए गठित कर दिया गया। सात सदस्यीय इस कमीशन में किसी भी भारतीय को सम्मिलित न किए जाने का सभी भारतीय राजनीतिक दलों द्वारा व्यापक विरोध हुआ।

साइमन कमीशन के विरोध तथा बहिष्कार ने 5 साल की राजनीतिक निष्क्रियता को दूर कर दिया। साइमन कमीशन के विरोध ने एक बार फिर सरकार और भारतीयों के मध्य राजनीतिक टकराव की स्थिति उत्पन्न कर दी थी। सरकार ने अपनी राजनीतिक दमन की नीति का फिर से प्रदर्शन किया। भारतीय राजनीतिक दलों के सर्वदलीय सम्मेलन ने नेहरू रिपोर्ट के माध्यम से भारत में संवैधानिक सुधार हेतु अपनी योजना प्रस्तुत की जिसको कि सरकार ने ठुकरा दिया। मुस्लिम लीग, खिलाफ़त कमेटी तथा आल इण्डिया सिक्ख लीग ने नेहरू रिपोर्ट की सिफ़ारिशों को क्रमशः मुसलमानों और सिक्खों के हितों की रक्षार्थ अपर्याप्त माना। सरकार द्वारा नेहरू रिपोर्ट की संस्तुतियों की पूर्ण उपेक्षा किए जाने से नाराज़ कांग्रेस द्वारा 1929 में पूर्ण स्वराज के लक्ष्य की घोषणा की गई और सरकार को एक समयबद्ध सीमा में इसको पूरा करने के लिए कहा गया। सरकार द्वारा कांग्रेस की मांगों पर फिर कोई ध्यान न दिए जाने के फलस्वरूप 26 जनवरी, 1930 को कांग्रेस ने अपना स्वतन्त्रता दिवस मनाया और मार्च, 1930 में डान्डी मार्च प्रारम्भ कर गांधीजी ने पूर्ण स्वराज की प्राप्ति के लक्ष्य को लेकर अपना सविनय अवज्ञा आन्दोलन प्रारम्भ किया। इस इकाई में 1922 से 1930 के मध्य में हुए भारतीय राजनीतिक एवं संवैधानिक विकास से आपको परिचित किया जाएगा।

13.2 इकाई के उद्देश्य

1922 में चौरीचौरा काण्ड के बाद असहयोग आन्दोलन आन्दोलन के स्थगन से भारत में राजनीतिक शिथिलता आ गई थी। स्वराज दल के गठन ने इस राजनीतिक गतिरोध को समाप्त किया और निरंकुश ब्रिटिश भारतीय सरकार

के लिए परेशानियां खड़ी कीं। 1927 में सर जॉन साइमन के नेतृत्व में सर्व–श्वेत ब्रिटिश सांसदों से गठित स्टेट्यूटरी कमीशन का भारत में विरोध होना स्वाभाविक था। इसके विरोध से बाद भारत में पुनः राजनीतिक सरगर्मी आ गई और भारतीयों ने डोमिनियन स्टेटस के स्थान पर अब पूर्ण स्वराज्य की मांग की। इस इकाई को पढ़कर आप जानेंगेः

- आप स्वराज दल के गठन तथा उसकी विधान सभाओं में रणनीति के विषय में।
- कांग्रेस में अपरिवर्तनवादियों की कार्यप्रणाली के विषय में।
- साइमन कमीशन के गठन, उसके मन्तव्य तथा भारतीयों द्वारा उसके विरोध के विषय में।
- नेहरू रिपोर्ट की संस्तुतियों के विषय में।
- साइमन कमीशन की संस्तुतियों तथा भारतीयों द्वारा पूर्ण स्वराज्य की मांग के विषय में।

13.3 असहयोग आन्दोलन के स्थगन के बाद स्वराज दल का गठन तथा उसकी कार्य–प्रणाली

13.3.1. कांग्रेस का अन्तर्कलह तथा स्वराज दल का गठन

1922 के बारदोली प्रस्ताव द्वारा असहयोग आन्दोलन को स्थगित कर दिया गया था और कांग्रेसियों को यह निर्देश दिया गया कि वह राष्ट्रीय पाठशाला, अस्पृश्यता निवारण तथा हिन्दू–मुस्लिम एकता के कार्यों में अपना समय लगाएं। गांधी जी के असहयोग आन्दोलन स्थगित किये जाने के कारण राष्ट्रवादियों का मनोबल टूट गया। 1922 से 1927 तक के काल में कांग्रेस का जनाधार कमज़ोर पड़ने लगा। 16 प्रान्तों में मार्च, 1923 तक कांग्रेस के सदस्यों की संख्या घटकर मात्र 1 लाख 6 हज़ार तक सिमट गई जब कि 1921 में अकेले संयुक्त प्रान्त में इसके सदस्यों की संख्या इससे तीन गुनी थी। अपरिवर्तनवादियों तथा स्वराजियों के आपसी मतभेदों के कारण राष्ट्रीय आन्दोलन में गतिरोध का संकट उठ खड़ा हुआ था। राजनीतिज्ञ फिर से याचना के युग में पहुंच गए थे और 1919 से 1922 तक स्थापित हिन्दू–मुस्लिम एकता का स्थान व्यापक साम्प्रदायिक दंगों ने ले लिया था। इस निर्णय के बाद भविष्य की रणनीति को लेकर कांग्रेस की नेताओं में मदभेद उभरे। गांधी जी
1919 के एक्ट की व्यवस्था के अंतर्गत होने वाले 1923 के चुनाव का बहिष्कार करना चाहते थे जब कि सी0 आर0 दास, मोतीलाल नेहरू, विठ्ठल भाई पटेल तथा हकीम अजमल खान चुनावों में भाग लेकर जन–प्रतिनिधियों के द्वारा विधान सभाओं तथा परिषद में सरकार की गलत नीतियों का खुलासा करने के पक्ष में थे जबकि डॉक्टर अंसारी, राजगोपालाचारी, कस्तूरी रंगा आयंगार गांधीजी के सृजनात्मक कार्यों पर अपना ध्यान केन्द्रित करना चाहते थे। 1922 से 1927 तक के काल में कांग्रेस का जनाधार कमज़ोर पड़ने लगा। 16 प्रान्तों में मार्च, 1923 तक कांग्रेस के सदस्यों की संख्या घटकर मात्र 1 लाख 6 हज़ार तक सिमट गई जब कि 1921 में अकेले संयुक्त प्रान्त में इसके सदस्यों की संख्या इससे तीन गुनी थी। अपरिवर्तनवादियों तथा स्वराजियों के आपसी मतभेदों के कारण राष्ट्रीय आन्दोलन में गतिरोध का संकट उठ खड़ा हुआ था। राजनीतिज्ञ फिर से याचना के युग में पहुंच गए थे और 1919 से 1922 तक स्थापित हिन्दू–मुस्लिम एकता का स्थान व्यापक साम्प्रदायिक दंगों ने ले लिया था। दिसम्बर, 1922 के कांग्रेस के गया अधिवेशन की अध्यक्षता करते हुए सी0 आर0 दास ने कांउसिलों में कांग्रेस के प्रवेश को आवश्यक बताया। 1920 के काउंसिल के चुनावों के बहिष्कार से अवांछनीय तत्वों का काउंसिलों में प्रवेश हो गया था जिसके कारण देश के विकास में बाधा पड़ रही थी। श्री दास की यही दलील थी कि हम चुनाव में खड़े होकर, उसमें जीत कर कांउसिलों में प्रवेश पाकर सरकार के साथ असहयोग की नीति अपनाकर उसके कार्यों में बाधा पहुंचा सकते हैं और उसे सुधार देने के लिए विवश कर सकते हैं। श्री दास का प्रस्ताव 890 के मुकाबले 1740 वोटों से नामन्जूर हो गया। इस पर भी सी0 आर0 दास तथा मोतीलाल नेहरू ने कांग्रेस के अंतर्गत ही मार्च, 1923 में स्वराज दल का गठन किया जिसने कि चुनावों में भाग लेने का निश्चय किया। स्वराज दल गांधीजी के सृजनात्मक कार्यक्रम का विरोधी नहीं था किन्तु उसके विचार से मात्र खादी प्रचार से स्वराज प्राप्ति के लक्ष्य तक नहीं पहुंचा जा सकता था। 1923 में कांग्रेस का अन्तर्कलह उभर कर सामने आया। सितम्बर, 1923 में दिल्ली में मौलाना अबुल कलाम आज़ाद की अध्यक्षता में कांग्रेस के विशेष अधिवेशन और ककिनाड में मौलाना मुहम्मद अली की अध्यक्षता में दिसम्बर, 1923 के कांग्रेस अधिवेशन में हुए समझौते के अन्तर्गत यह तय हुआ कि जो लोग काउंसिल चुनावों में भाग लेना चाहते हैं

उन्हें इसकी अनुमति दी जाती है पर उन्हें गांधीजी के सृजनात्मक कार्यों में अपनी आस्था व्यक्त करनी होगी। 1924 में गांधीजी की अध्यक्षता में कांग्रेस के बेलगांव अधिवेशन में स्वराज दल को एक स्वायत्त निकाय के रूप में कार्य करने की अनुमति प्रदान की गई और उसका एक अलग सचिवालय स्थापित किया गया।

13.3.2. स्वराज दल की कार्य–प्रणाली

1923 के चुनाव में केंद्रीय विधान सभा ने स्वराजदल को कुल 101 में से 42 स्थान मिले। 1925 में विठ्ठल भाई पटेल केंद्रीय विधान परिषद के अध्यक्ष बने। लोकमान्य तिलक के अनुयायी एन0 सी0 केलकर के नेतृत्व में चुनाव प्रचार कर स्वराजियों को मध्य प्रान्त में पूर्ण बहुमत मिला। बंगाल में भी इसका प्रदर्शन सराहनीय रहा। बिधानचन्द्र राय ने सुरेन्द्रनाथ बनर्जी जैसे दिग्गज को पराजित किया और वहां की कुल 85 सामान्य हिन्दू–मुस्लिम सीटों में 47 स्वराजियों को प्राप्त हुईं। बंगाल में स्वराजियों की सफलता का श्रेय सी0 आर0 दास को जाता है। जून 1925 में अपनी मृत्यु पर्यन्त श्री दास कलकत्ते के राजनीतिज्ञों, बीरेन्द्रनाथ ससमल सदृश क्षेत्रीय नेताओं, भूतपूर्व क्रान्तिकारियों और मुस्लिम नेताओं को एकजुट करने में सफल रहे। श्री दास ने दिसम्बर, 1923 में मुसलमानों के साथ 'बंगाल पैक्ट' किया जिसके अन्तर्गत स्वराज स्थापित होने की दशा में प्रशासनिक पदों पर 55 प्रतिशत स्थान मुसलमानों को दिए जाने और मस्जिदों के सामने संगीत न बजाने तथा बकरीद पर गो–वध पर हस्तक्षेप न करने का वचन दिया गया। परन्तु ककिनाड में दिसम्बर, 1923 के कांग्रेस अधिवेशन में मुसलमानों को खुश करने वाले इस अति समझौतेवादी प्रस्ताव को नामन्जूर कर दिया गया। इससे कांग्रेस पर हिन्दू साम्प्रदायिक तत्वों की मज़बूत पकड़ स्पष्टतया दिखाई पड़ गई पर मई, 1924 में कांग्रेस के अन्तर्गत बंगाल की प्रान्तीय सभा ने बैंगाल पैक्ट को फिर अपना लिया।

स्वराजियों ने जन–प्रतिनिधि सभाओं में सरकार की दमनकारी नीतियों का पर्दाफ़ाश किया। उन्होंने संयुक्त प्रान्त तथा बंगाल में द्वैध शासन के अन्तर्गत मन्त्रियों के वेतन के भुगतान में बाधा पहुंचाई और उन्हें त्यागपत्र देने के लिए विवश किया। मध्य प्रान्त तथा बंगाल की प्रतिनिधि सभाओं में अपने कार्यकाल में स्वराजियों ने सरकार के हर प्रस्ताव में हस्तक्षेप किया और कई बार सरकार को वोटिंग में हराया विशेषकर राजनीतिक बन्दियों की रिहाई के प्रश्न आदि पर सरकार को कई बार हार का सामना करना पड़ा जिसके कारण गवर्नरों को कई
बार कार्य को आगे बढ़ाने के लिए अपनी 'सर्टिफ़िकेट पॉवर' का प्रयोग करना पड़ा। स्वराज पार्टी ने द्वैध शासन की दुर्बलताओं को उजागर करने में सफलता प्राप्त की। केन्द्रीय विधान परिषद में स्वराज दल के सदस्यों की पहल पर फ़रवरी, 1924 में उत्तरदायी सरकार की स्थापना पर विचार करने के लिए एक गोल मेज़ सभा के आयोजन हेतु एक प्रस्ताव पारित किया गया। मोतीलाल नेहरू तथा विठ्ठल भाई पटेल ने सांसदों के रूप में अपनी प्रतिभा तथा कौशल का परिचय दिया। इस काल में स्वराजियों तथा भारतीय उद्योगपतियों के मध्य तालमेल के दर्शन हुए। स्वराजियों की प्रयास से सरकार को 1924 में टाटा इस्पात उद्योग को संरक्षण प्रदान करना पड़ा। स्वराज दल ने देश की अनेक नगर पालिकाओं तथा महानगर पालिकाओं में अपना वर्चस्व स्थापित किया। कलकत्ता नगर महापालिका में सी0 आर0 दास तथा सुभाष चन्द्र बोस, इलाहाबाद में जवाहरलाल नेहरू तथा अहमदाबाद में सरदार वल्लभ भाई पटेल ने इस के माध्यम से अनेक जन–कल्याकारी कार्य किए। स्वराजदल की सरकारी
कामकाज में बाधा पहुंचाने की सीमाएं थीं क्योंकि वाइसराय तथा गवर्नरों के पास असीमित अधिकार थे और विधायिका के निर्णयों मनचाहे ढंग से प्रभावित और संचालित कर सकते थे। सरकार ने स्वराज दल के विधान परिषद के कुछ सदस्यों को उच्च पदों पर नियुक्त कर उनका सहयोग प्राप्त किया। मध्य प्रांत में एस0 बी0 ताम्बे ने अक्टूबर, 1925 में मन्त्रिपद स्वीकार किया जिसका मोतीलाल नेहरू ने विरोध किया किन्तु एन0 सी0 केलकर, एम0 आर0 जयकर आदि ने समर्थन किया। जून, 1925 में सी0 आर0 दास की मृत्यु के बाद उनके उत्तराधिकारी के प्रश्न पर जे0 एम0 सेनगुप्ता तथा बीरेन्द्रनाथ ससमल के मध्य विवाद उठ खड़ा हुआ। 1926 में मोतीलाल नेहरू के प्रतिद्वन्दी मदनमोहन मालवीय ने 1926 के चुनाव से पूर्व लाला लाजपत राय तथा हिन्दू साम्प्रदायिक तत्वों के साथ मिलकर एक स्वतन्त्र कांग्रेस दल का गठन किया। स्वराज दल के अन्तर्कलह ने उसके पतन का मार्ग प्रशस्त कर दिया।

मध्य प्रान्त की विधान सभा में स्वराजियों ने असहयोग आन्दोलन और सविनय अवज्ञा आन्दोलन के बीच के काल में राजनीतिक गतिविधियों को जारी रख जनता में जागृति और उत्साह बनाए रक्खा और सविनय अवज्ञा आन्दोलन के लिए अनुकूल वातावरण तैयार किया। नवम्बर, 1927 में संवैधानिक सुधार के सर्वेक्षण हेतु जैसे ही सरकार ने समस्त श्वेत ब्रिटिश सांसदों का साइमन कमीशन नियुक्त किया तो उसका देशव्यापी विरोध हुआ। दिसम्बर, 1929 के लाहौर अधिवेशन के पूर्ण स्वराज्य के प्रस्ताव और 1930 के सविनय अवज्ञा आन्दोलन के आरम्भ होने पर स्वराजियों ने प्रतिनिधि सभाओं का परित्याग कर दिया।

13.3.3 स्वराज दल की उपलब्धियां तथा सीमाएं

भारतीयों को उच्च सेवाओं में अधिक प्रतिनिधित्व दिए जाने की स्वराज दल की मांग का सरकार पर कोई असर नहीं पड़ा। इण्डियन सिविल सर्विस को संरक्षण प्रदान करने की नीति से सरकार ने द्वैध शासन के अन्तर्गत मन्त्रियों की शक्ति पर नियन्त्रण स्थापित कर रखा था। भारतीय प्रारम्भ से ही प्रशासनिक, पुलिस तथा सैनिक सेवाओं में भारतीयों का प्रतिशत बढ़ाने की मांग कर रहे थे। 1924 के रॉयल कमीशन तथा 1926 की सैण्डहर्स्ट कमेटी ने यह स्पष्ट कर दिया कि भारतीयों को उच्च प्रशासनिक, पुलिस तथा सैनिक सेवाओं में आधी हिस्सेदारी मिलने में भी अभी क्रमशः 15 और 25–25 साल लगेंगे। गृह सरकार ने यह स्पष्ट कर दिया कि उसकी दृष्टि में भारत का अपना कोई स्वतन्त्र अस्तित्व नहीं है और जिस दिन अंग्रेज़ों ने भारत से अपना हाथ खींच लिया उसी दिन मुसलमानों और हिन्दुओं में सत्ता प्राप्ति के लिए संघर्ष छिड़ जाएगा। स्वराज दल के प्रयास से 1924 में टाटा के इस्पात उद्योग को संरक्षण दिया गया था किन्तु अब सरकार ने ब्रिटिश औद्योगिक प्रतिष्ठानों के दबाव में भारतीय उद्योग को संरक्षण देने की नीति का भी परित्याग कर दिया। कपड़ा, जूट तथा समुद्री यातायात के विषय में भारतीयों की तुलना में ब्रिटिश प्रतिष्ठानों को रियायतें देने में सरकार ने कोई संकोच नहीं किया। स्वराज दल का जीवन कुछ वर्ष रहा किन्तु इस अल्प अवधि में इस दल ने राजनीतिक हलचल का एक नया दौर प्रारम्भ किया। स्वराज दल ने 'डोमिनियन स्टेटस' अर्थात् पूर्ण स्वराज्य को अपना तात्कालिक लक्ष्य बनाया। उसकी दृष्टि में भारत अभी पूर्ण स्वतन्त्रता के लिए तैयार नहीं था परन्तु साइमन कमीशन का विरोध करते समय स्वराजियों ने अपनी विचारधारा में परिवर्तन किया और अब वह पूर्ण स्वराज्य प्राप्ति के लक्ष्य की ओर उन्मुख हो गए।

13.3.4 अपरिवर्तनवादियों (नोचेन्जर्स) की गतिविधियां और उनका महत्व

सरदार वल्लभ भाई पटेल डा. अन्सारी, राजेन्द्र प्रसाद आदि नोचेन्जर्स (अपरिवर्तनीय) कहलाते थे क्योंकि गांधी जी से सहमति रखते हुए वह काउंसिलों में प्रवेश के विरोधी थे। उन्होंने चर्खा कातने, दलितोद्धार ग्राम्यविकास आदि सृजनात्मक कार्यों पर ज़ोर दिया।

अपने सृजनात्मक कार्यों के कार्यान्वयन के लिए देश के सैकडों स्थानों पर आश्रम स्थापित किए गए और युवा स्त्री–पुरुषों ने तथाकथित नीची जातियों और आदिवासियों में चर्खे के द्वारा सूत कातने और उससे कपड़े बनाने के कार्यक्रम को लोकप्रिय बनाने के लिए अभियान छेड़ा। अपरिवर्तनवादियों ने 1922 में बंगाल तथा 1927 में गुजरात में बाढ़ राहत के लिए प्रशंसनीय कार्य किया। आश्रमों की श्रृंखला स्थापित की गई। गुजरात में खेडा के बरइय्या तथा बारदोली के कालीपराज समुदायों में ग्रामसेवकों ने समाजसेवा का उल्लेखनीय कार्य किया। बरइय्या समुदाय ने लूटमार करने का अपना पेशा छोड़कर सम्मानीय व्यवसायों को अपनाने की ओर अपना रुख किया। मद्य–निषेध प्रचार तथा अस्पृश्यता निवारण के लिए अनथक प्रयास किए गए। दलितोद्धार के लिए दलितों में व्याप्त सामाजिक कुरीतियों के उन्मूलन और उनकी आर्थिक उन्नति के लिए सृजनात्मक कार्य किए गए। 'अछूतोद्धार' को अब 'हरिजन कल्याण' का नाम दिया गया। सैकड़ों राष्ट्रीय पाठशालाओं और कॉलेजों की स्थापना हुई जहां कि विद्यार्थियों को राष्ट्रीयता की भावना से युक्त शिक्षा प्रदान की गई। 1922 से 1927 के काल के दौरान दो महत्वपूर्ण सत्याग्रह आन्दोलन हुए। इनमें पहला आन्दोलन सरदार वल्लभ भाई पटेल के नेतृत्व में 1923–24 में खेदा जिले के बोरसाद में हुआ था। सितम्बर, 1923 में बोरसाद के निवासियों पर उनकी डाकुओं से सुरक्षा करने के नाम पर प्रति वयस्क 2 रुपये 7 आने का पोल–टैक्स लगाया गया। इस क्षेत्र के निवासियों का यह कहना था कि उन्हें केवल इसलिए दण्डित किया जा रहा है कि वो कांग्रेस के समर्थक हैं। दिसम्बर, 1923 में इस क्षेत्र के सभी 104 ग्रामों के निवासियों

ने इस अन्यायपूर्ण कर को न देने का निश्चय किया और जनवरी, 1924 में इस टैक्स के प्रस्ताव को सरकार को रद्द करना पड़ा। दूसरा सत्याग्रह 1924–25 में ट्रावनकोर राज्य के वाइकोम में तथाकथित निम्नजाति के एज़ावसों के मन्दिर प्रवेश तथा उनके द्वारा मन्दिर के बगल की सड़क के प्रयोग की अनुमति को लेकर हुआ था। इस सत्याग्रह का नेतृत्व कांग्रेस के टी0 माधवन ने किया। गांधीजी ने मार्च, 1925 में वाइकोम का दौरा किया। 20 महीने तक चले सत्याग्रह के बाद अस्पृश्यों के लिए एक अलग सड़क बनाने पर यह आन्दोलन थम गया।

प्रोफ़ेसर ज्ञान पाण्डे तथा डेविड हार्डीमैन के अनुसार संयुक्त प्रान्त तथा गुजरात में अपरिवर्तनवादियों के सृजनात्मक कार्यों से राजनीतिक चेतना को व्यापक जन–आधार मिला और दलितों में कांग्रेस की व्यापक पैठ स्थापित हो गई । लाला लाजपत राय के 'लोकसेवक मण्डल' ने पंजाब तथा संयुक्त प्रान्त में तथा बंगाल के सोदीपुर में सतीशदास गुप्त के 'खादी प्रतिष्ठान' और कोमिला में सुरेश बनर्जी के 'खादी आश्रम' ने प्रशंसनीय कार्य किए। हुगली के आरामबाग के पिछड़े क्षेत्र में 1922 से लेकर 1929 तक अपरिवर्तनवादियों ने सृजनात्मक कार्यों से सविनय अविज्ञा आन्दोलन के लिए पृष्ठभूमि तैयार करने और आन्दोलनकारियों की संख्या में वृद्धि करने का महत्वपूर्ण कार्य किया।

स्व मूल्यांकन हेतु प्रश्न

निम्नलिखित विषयों पर संक्षिप्त टिप्पणी लिखिए:

1. (क) अपरिवर्तनवादियों की उपलब्धियां।

(ख) स्वराज दल की विधान सभाओं में कार्य–प्रणालीं ।

2. नीचे लिखे प्रश्नों के उत्तर दीजिए।

(i) स्वराज दल के दो प्रमुख नेता कौन थे?

(ii) स्वराजियों ने विधान सभाओं का कब परित्याग किया?

13.4 साइमन कमीशन के गठन से लेकर पूर्ण स्वराज्य की मांग तक की गतिविधियां

13.4.1 साइमन कमीशन का गठन तथा उसका भारत में विरोध

1919 के गवर्नमेंट ऑफ़ इण्डिया एक्ट के एक प्रावधान के अनुसार अधिनियम के पारित होने के 10 साल बाद अर्थात् 1929 तक एक स्टेट्यूटरी कमीशन की नियुक्ति की जानी थी। इस कमीशन को 1919 के गवर्नमेंट ऑफ़ इण्डिया एक्ट की कार्य प्रणाली की जांच कर उसका आकलन करना था और भविष्य के लिए आवश्यक सुधारों की संस्तुति भी करनी थी। ब्रिटेन की अनुदारवादी सरकार ने अपने देश में होने वाले चुनावों में अपनी हार की आशंका से और आगामी उदारवादी सरकार द्वारा भारतीयों को अधिक संवैधानिक सुधार दिए जाने की सम्भावना को रोकने के लिए इस अवधि से दो साल पहले ही 8 नवम्बर, 1927 को सर जॉन साइमन के नेतृत्व में ब्रिटिश सांसदों का एक कमीशन 1919 के एक्ट के प्रावधानों की समीक्षा और भविष्य में संवैधानिक सुधारों की योजना बनाने के लिए गठित कर दिया। इस कमीशन के सदस्य थे –

1. सर जॉन साइमन 2. क्लीमेन्ट एटली 3.हैरी लेवी–लॉसन 4. एडवर्ड कैडोगन 5. वैरनॉन हार्टशोर्न
6. जॉर्जलेन फ़ॉक्स 7. डोनाल्ड हावर्ड

'ऑल इण्डिया काउंसिल ऑफ़ इण्डिया' द्वारा साइमन कमीशन के कार्य में सहयोग देने के लिए 'ऑल इण्डिया कमेटी स्थापित की गई। इसके लिए सदस्यों का चुनाव वाइसराय लॉर्ड इर्विन ने किया। इस कमेटी के अध्यक्ष सर सी0 शंकरन नायर थे और इसके अन्य सदस्य थे – सर आर्थर फ्रूम, राजा नवाब अली खान, सरदार शिवदेव सिंह ओबेराय, नवाब ज़ुल्फ़िकार अली खान, सर हरी सिंह गौड़, सर अब्दुल्ला अल–मामून सुहरावर्दी, कीकाभाई प्रेमचन्द तथा राव बहादुर एम0 सी0 राजा। सर्व–श्वेत सात सदस्यों के इस कमीशन में कोई भी भारतीय सदस्य नहीं था। लाला लाजपत राय ने इस कमीशन की सदाशयता पर प्रश्न चिह्न लगाया। एम0 आर0 जयकर ने सर्व–श्वेत सदस्य गठित इस कमीशन को असंवैधानिक बताया। मोहम्मद अली जिन्ना ने इस कमीशन में भारतीय सदस्यों को शामिल किया जाना आवश्यक बताया। मदनमोहन मालवीय ने इस कमीशन के साथ सहयोग करना राष्ट्र का अपमान माना। केन्द्रीय विधान सभा के अध्यक्ष विठ्ठल भाई पटेल ने अपने इंग्लैण्ड दौरे में भारत सचिव को आगाह

कर दिया था कि भारतीय इस सर्व–श्वेत कमीशन का बहिष्कार करेंगे। केन्द्रीय विधान सभा में साइमन कमीशन के पक्ष में 62 तथा उसके विरोध में 68 मत पड़े। स्टेट्यूटरी कमीशन में भारतीयों को शामिल करने की मांग पर भारत सचिव बर्कनहेड ने व्यंग्य कसा कि भारतीय किसी भी व्यावहारिक राजनीतिक ढांचे के अन्तर्गत सहमत होकर काम करने में अक्षम हैं। उन्होंने भारतीयों को एक सर्वसम्मत संविधान बनाने की चुनौती भी दे डाली क्योंकि उन्हें पूर्ण विश्वास था कि मुसलमान किसी भी सर्वसम्मत संविधान के निर्माण की प्रक्रिया से खुद को दूर रखेंगे। शासन द्वारा अपनी मांग ठुकराए जाने तथा भारत सचिव की इस अपमानजनक टिप्पणी से सरकार के मन्तव्य प्रकट हो जाने पर भारतीयों ने इस कमीशन का बहिष्कार किया। नवम्बर, 1927 में कांग्रेस अध्यक्ष श्रीनिवास आयंगार ने साइमन कमीशन का विरोध तथा उसका बहिष्कार करने की घोषणा की। 16 नवम्बर, 1927 को मोहम्मद अली जिन्ना ने मुस्लिम लीग की ओर से साइमन कमीशन के साथ असहयोग करने की घोषणा की। 'आल–इण्डिया लिबरल फेडरेशन', 'फ़ेडरेशन ऑफ इण्डियन चैम्बर ऑफ़ कॉमर्स' 'मिल ओनर्स ऐसोसियेशन' तथा 'हिन्दू महासभा' ने भी इसका विरोध किया।

साइमन कमीशन का देश में हर स्थान पर काले झण्डे दिखाकर विरोध हुआ। 'साइमन कमीशन गो बैक' के नारों से पूरा देश गूंज उठा। साइमन कमीशन विरोधी आन्दोलन के दमन के लिए ब्रिटिश सरकार ने आन्दोलनकारियों पर लाठियां बरसाई और उन्हें जेल में डाल दिया। कांग्रेस के प्रमुख नेता, लाहौर में 30 अक्टूबर, 1928 को लाला लाजपत राय पुलिस की लाठियों से घायल हुए। बाद में लाला जी की इसी कारण मृत्यु हो गई। 30 नवम्बर, 1928 को पंडित जवाहर लाल नेहरू तथा गोविन्द बल्लभ पंत लखनऊ में पुलिस की लाठियों से घायल हुए। केवल मद्रास और कलकत्ते में साइमन कमीशन के वहां पहुंचने पर दंगे हुए बाकी स्थानों पर जनता ने इस दमन चक्र का शान्तिपूर्वक सामना किया। सरकार ने बहिष्कार आन्दोलन को बलपूर्वक कुचलने और इस आन्दोलन से मुसलमानों को अलग रखने के प्रयास तेज़ कर दिए।

13.4.2 नेहरू रिपोर्ट

साइमन कमीशन के देशव्यापी विरोध के वातावरण में भारत सचिव बर्केनहेड की चुनौती को स्वीकार करते हुए भारतीय राजनीतिक दलों ने एक सर्वमान्य संवैधानिक योजना बनाने का निश्चय किया। उदारवादी सर तेज बहादुर सप्रू तथा मुस्लिम नेता मोहम्मद अली जिन्ना ने कांग्रेस के साथ मिलकर 'स्वशासित राज्य' के संविधान के निर्माण की योजना बनाई। 1927 के अन्त में मद्रास की जस्टिस पार्टी तथा पंजाब यूनियनिस्ट्स के अतिरिक्त सभी प्रतिष्ठित राजनीतिक दलों ने साइमन कमीशन का बहिष्कार करने तथा संविधान निर्माण के लिए सभी राजनीतिक दलों की एक सभा के आयोजन की तैयारी की। मुस्लिम लीग के दिसम्बर, 1927 के अधिवेशन में मोहम्मद अली जिन्ना ने साइमन कमीशन के बहिष्कार करने का आह्वान किया। एम0 ए0 अंसारी की अध्यक्षता में दिसम्बर, 1927 के कांग्रेस के मद्रास अधिवेशन में सभी राजनीतिक दलों की सहमति से स्वतन्त्र भारत के संविधान का मसौदा बनाने का निश्चय किया गया। इस उद्देश्य से राजनीतिक दलों के फ़रवरी तथा मई, 1928 में अखिल भारतीय सम्मेलन में मोतीलाल नेहरू की अध्यक्षता में एक समिति का गठन किया गया। इस समिति को प्रस्तावित संविधान का मसौदा तैयार करना था। इसके सदस्यों में तेज बहादुर सप्रू, अली इमाम, शुएब कुरैशी, एन0 एम0 जोशी, एम0 आर0 जयकर, सुभाषचन्द्र बोस आदि सम्मिलित थे। बाद में जयकर इससे हट गए। अगस्त, 1928 में इस समिति ने अपनी रिपोर्ट प्रस्तुत की जिसे इसके अध्यक्ष मोतीलाल नेहरू के नाम पर नेहरू रिपोर्ट कहा जाता है। नेहरू रिपोर्ट को लखनऊ में आयोजित सर्वदलीय सम्मेलन में स्वीकृत कर लिया गया परन्तु मुस्लिम लीग के नेता मोहम्मद अली जिन्ना ने केन्द्रीय तथा प्रान्तीय विधान परिषदों में मुसलमानों को उनकी मांगों के अनुरूप स्थान की व्यवस्था न किए जाने पर इसका विरोध किया। नेहरू रिपोर्ट की मुख्य सिफ़ारिशें इस प्रकार थीं –

1. भारत को ब्रिटिश साम्राज्य के अन्तर्गत अधिराज्य पद (डोमिनियन स्टेटस) प्रदान किया जाए।
2. भारत में संघीय शासन स्थापित किया जाए और केन्द्र में द्वि–सदनीय विधान परिषद का गठन किया जाए। मन्त्रिमण्डल केन्द्रीय विधान परिषद के प्रति उत्तरदायी हो।
3. गवर्नर–जनरल की शक्तियां एक संवैधानिक राजतन्त्र के प्रमुख की भांति सीमित हों।
4. किसी भी समुदाय को पृथक निर्वाचक मण्डल प्रदान न किया जाए।

5. पंजाब तथा बंगाल में मुसलमानों को सुरक्षित स्थान न दिए जाएं।
6. भारत के नागरिकों के मूल अधिकारों को लेखबद्ध किया जाए।
7. वयस्क मताधिकार को भारत में लागू किया जाए।
8. महिलाओं को भी वयस्क मताधिकार दिया जाए।

कलकत्ते में मोतीलाल नेहरू की अध्यक्षता में दिसम्बर, 1928 के कांग्रेस अधिवेशन में नेहरू रिपोर्ट को बहुमत से अनुमोदित कर दिया गया तथा इसको सरकार के समक्ष इस अल्टीमेटम के साथ प्रस्तुत किया गया कि 31 दिसम्बर 1929 तक सरकार इस रिपोर्ट की सिफ़ारिशों को स्वीकार कर ले नहीं तो कांग्रेस अपना जन–आन्दोलन प्रारम्भ कर देगी।

मुस्लिम लीग के नेता मुहम्मद अली जिन्ना द्वारा नेहरू कमेटी रिपोर्ट को इसलिए खारिज किया क्योंकि इसमें उनकी पृथकतावादी मांगों को शामिल नहीं किया गया था। वो केंद्रीय व गैर–मुस्लिम बहुमत के प्रान्तों की विधानसभाओं में मुसलमानों के लिए एक तिहाई स्थान, और बंगाल, पंजाब तथा तीन नए मुस्लिम–बहुल राज्यों सिंध, बलूचिस्तान और उत्तर–पश्चिम सीमा प्रान्त में मुस्लिम आबादी के कुल प्रतिशत के अनुरूप मुस्लिम सीटें चाहते थे।

कांग्रेस के युवा सदस्यों ने इस रिपोर्ट की सिफ़ारिशों को अपर्याप्त माना था। नेहरू रिपोर्ट में डोमिनियन स्टेटस की मांग की गई थी जबकि सुभाष चन्द्र बोस पूर्ण स्वतंत्रता की मांग के पक्ष में थे। 1928 के कांग्रेस अधिवेशन में उनका पूर्ण स्वतंत्रता की मांग का प्रस्ताव बहुत थोड़े अंतर से पराजित हो गया।

नेहरू रिपोर्ट अपनी कमियों के बावजूद भारतीयों की राजनीतिक आकांक्षाओं का प्रतिनिधित्व करने में सफल रही। इसकी अधिकांश सिफ़ारिशों को गवर्नर जनरल लॉर्ड इर्विन तथा पूर्व प्रशासक मैल्कम हैली ने न्याय संगत माना। 1935 के गवर्नमेन्ट ऑफ इण्डिया एक्ट में सरकार को इसकी अनेक सिफ़ारिशों को अमल में लाना पड़ा।

13.4.3. साइमन कमीशन की कार्य–प्रणाली, उसकी संस्तुतियां तथा भारतीयों द्वारा पूर्ण स्वराज्य प्राप्ति के लक्ष्य की घोषणा

3 फ़रवरी, 1928 को बम्बई में साइमन कमीशन भारत पहुंचा और वह भारत में 31 मार्च, 1928 तक रहा। इस अवधि में कमीशन ने सरकारी दस्तावेज़ों का परीक्षण किया। दूसरी बार यह 11 अक्टूबर, 1928 से 13 अप्रैल, 1929 तक भारत में रहा और इसने मद्रास, लाहौर, कराची, पेशावर, दिल्ली, लखनऊ, पटना, कलकत्ता, आदि नगरों का दौरा किया। सभी जगहों पर इसने शासन की कार्य–प्रणाली का अध्ययन किया और लोगों से विचार–विमर्श किया। साइमन और उसके सहयोगियों को अपने भारत पहुंचने पर इतने प्रबल विरोध की स्वप्न में भी आशा नहीं थी। भारत के सभी प्रमुख राजनीतिक दलों ने साइमन कमीशन का सामाजिक तथा राजनीतिक बहिष्कार किया। काले झण्डे से हर स्थान पर अपना स्वागत देखकर साइमन का विचार बना कि वह अपने कार्य को बीच में ही छोड़कर स्वदेश लौट जाए। अप्रैल, 1928 में उसके प्रथम भारत प्रवास के बाद इंग्लैण्ड लौटने पर भारत सचिव बर्केनहेड की उससे भेंट हुई। साइमन ने उससे भारतीय राजनीतिज्ञों, विशेषकर स्वराज पार्टी के सदस्यों के प्रति अपनी कटु भावनाओं को व्यक्त किया और बर्केनहेड ने भी इस विषय में अपनी सहमति जताई। अप्रैल, 1928 तथा अक्टूबर, 1928 को बर्केनहेड द्वारा भारत के गवर्नर जनरल इरविन को लिखे पत्रों से यह स्पष्ट हो गया कि भारत सचिव (बर्केनहेड) तथा स्टेट्यूटरी कमीशन के अध्यक्ष (जॉन साइमन) दोनों ही भारतीयों की राजनीतिक आंकाक्षाओं को पूरा करने की कोई इच्छा नहीं रखते हैं। भारत के गवर्नर जनरल इरविन के लिए भारत में स्थिति बहुत कठिन होने वाली थी। साइमन कमीशन की भारत विरोधी संस्तुतियां भारत में राजनीतिक असन्तोष का विस्फोट कर सकती थीं। इरविन को यह ज्ञात हो गया कि सर्व–श्वेत सदस्य के स्टेट्यूटरी कमीशन का गठन और भारतीयों की राजनीतिक आकांक्षाओं की इतनी अधिक उपेक्षा एक बड़ी भूल थी। कांग्रेस के 1928 के कलकत्ता अधिवेशन के सरकार को अल्टीमेटम दिए जाने वाले प्रस्ताव से वह और भी अध्कि चिन्तित हो गया था। 1929 में केन्द्रीय विधान सभा में 'पब्लिक सेफ्टी बिल', 'ट्रेड डिस्प्यूट बिल' तथा कार्यकारी परिषद के बजट अनुदान के नामन्जूर होने और मोतीलाल नेहरू द्वारा सदन में पुनः राष्ट्र की राजनीतिक मांगों को दोहराए जाने से स्थिति और भी संकटपूर्ण हो गई थी। इर्विन इस का समाधान भारतीयों तथा उनकी आकांक्षाओं के साथ गृह सरकार द्वारा पहले से बेहतर बर्ताव को मानता था और वह

संशोधनात्मक कार्यवाही की संस्तुति कर रहा था परन्तु इंग्लैण्ड में रैमेज़े मैक्डोनाल्ड के नेतृत्व में लेबर पार्टी की सरकार बन जाने के बाद भी भारतीयों को सुधार दिए जाने की दिशा में कोई विशेष प्रगति नहीं हुई। 27 मई, 1930 को साइमन कमीशन ने अपनी रिपोर्ट तथा अपनी संस्तुतियां प्रस्तुत कीं जिनका कि प्रकाशन जून, 1930 में हुआ। इस कमीशन की दुर्भावना के विषय में भारतीयों की आशंकाए सही साबित हुईं। इस कमीशन ने अपनी रिपोर्ट में यह बताया कि भारत में जाति, धर्म और क्षेत्र के आधार पर लोग बटे हुए हैं और इन कारणों से भारतीयों को स्वशासन प्रदान किए जाने से अशान्ति फैलने का खतरा है। इस कमीशन ने साम्प्रदायिक प्रतिनिधित्व की व्यवस्था को पूर्ववत लागू रखे जाने की सिफ़ारिश की थी। गवर्नर जनरल लॉर्ड इर्विन तथा भारत में दीर्घकाल तक उच्च प्रशासनिक पद पर कार्यरत मैल्कम हेली ने इस रिपोर्ट की संस्तुतियों को भारत विरोधी माना और तुरन्त भारतीयों की सहमति से सुधार योजना तैयार किए जाने की सिफ़ारिश की। सरकार ने नेहरू रिपोर्ट की सिफ़ारिशों पर कोई अमल नहीं किया। कांग्रेस द्वारा दिए गए 31 दिसम्बर, 1929 तक के अल्टीमेटम की सरकार ने पूर्ण उपेक्षा की। अपनी पूर्व घोषणा के अनुसार 31 दिसम्बर, 1929 तक सरकार द्वारा कोई सार्थक कार्यवाही न किए जाने पर 1929 के भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस के लाहौर अधिवेशन में अध्यक्ष पंडित नेहरू ने 31 दिसम्बर, 1929 पूर्ण स्वराज को कांग्रेस का लक्ष्य घोषित किया व 26 जनवरी, 1930 को स्वतंत्रता दिवस के रूप में मनाने की भी घोषणा की। 26 जनवरी, 1930 को कांग्रेस ने अपना स्वतन्त्रता दिवस मनाया तथा मार्च, 1930 में पूर्ण स्वराज प्राप्ति के लिए गांधीजी के नेतृत्व में सविनय अवज्ञा आन्दोलन आरंभ किया गया।

स्वमूल्यांकन हेतु प्रश्न

निम्नलिखित विषयों पर संक्षिप्त टिप्पणी लिखिए:

1. (क) साइमन कमीशन के संगठनात्मक दोष।

(ख) नेहरू रिपोर्ट की प्रमुख संस्तुतियां ।

2. नीचे लिखे प्रश्नों के उत्तर दीजिए।

(i) साइमन कमीशन का विरोध करते समय किस राष्ट्रनेता पर पुलिस ने प्राणघातक प्रहार किए थे?

(ii) कांग्रेस के पूर्ण स्वराज्य के लक्ष्य की घोषणा किसने की थी?

13.5 सार संक्षेप

गांधी जी के असहयोग आन्दोलन स्थगित किये जाने के कारण राष्ट्रवादियों का मनोबल टूट गया। गांधीजी 1923 में होने वाले चुनाव का बहिष्कार करना चाहते थे। सी0 आर0 दास तथा मोतीलाल नेहरू ने कांग्रेस के अंतर्गत ही मार्च, 1923 में स्वराज दल का गठन किया जिसने कि चुनावों में भाग लेने का निश्चय किया। 1923 के चुनाव में स्वराजियों को बड़ी सफलता मिली। स्वराजियों ने जन–प्रतिनिधि सभाओं में सरकार की दमनकारी नीतियों का पर्दाफ़ाश किया। सरदार वल्लभ भाई पटेल डा. अन्सारी, राजेन्द्र प्रसाद आदि नोचेन्जर्स (अपरिवर्तवादियों) ने चर्खा कातने, दलितोद्धार ग्राम्यविकास आदि सृजनात्मक कार्यों पर ज़ोर दिया। सैकड़ों राष्ट्रीय पाठशालाओं और कॉलेजों की स्थापना हुई।

नवम्बर, 1927 में जॉन साइमन के नेतृत्व में ब्रिटिश सांसदों का एक कमीशन भविष्य में संवैधानिक सुधारों की योजना बनाने के लिए गठित कर दिया। सर्व–श्वेत सात सदस्यों के इस कमीशन में कोई भी भारतीय सदस्य नहीं था। साइमन कमीशन का देश में हर स्थान पर काले झण्डे दिखाकर विरोध हुआ। कांग्रेस के प्रमुख नेता, लाला लाजपत राय पुलिस की लाठियों से घायल हुए। बाद में लाला जी की इसी कारण मृत्यु हो गई।

भारतीय राजनीतिक दलों ने एक सर्वमान्य संवैधानिक योजना बनाने का निश्चय किया और मोतीलाल नेहरू की अध्यक्षता में एक समिति का गठन किया गया। नेहरू रिपोर्ट की मुख्य सिफ़ारिशें थीं – भारत को ब्रिटिश साम्राज्य के अन्तर्गत डोमिनियन स्टेटस प्रदान किया जाए। भारत के नागरिकों के मूल अधिकारों को लेखबद्ध किया जाए तथा वयस्क मताधिकार को भारत में लागू किया जाए। मई, 1930 में साइमन कमीशन ने अपनी रिपोर्ट में यह बताया कि भारतीयों को स्वशासन प्रदान किए जाने से अशान्ति फैलने का खतरा है। इस कमीशन ने साम्प्रदायिक प्रतिनिधित्व की व्यवस्था को पूर्ववत लागू रखे जाने की सिफ़ारिश की थी। कांग्रेस के लाहौर अधिवेशन में अध्यक्ष जवाहर लाल नेहरू ने 31 दिसम्बर, 1929 पूर्ण स्वराज को कांग्रेस का लक्ष्य घोषित किया तथा मार्च, 1930 में पूर्ण

स्वराज प्राप्ति के लिए गांधीजी के नेतृत्व में सविनय अवज्ञा आन्दोलन आरंभ किया गया।

13.6 पारिभाषिक शब्दावली

स्वराजीः स्वराज दल से सम्बद्ध व्यक्ति

अपरिवर्तनवादीः गांधीजी के अनुयायी जो कि बहिष्कार की नीति का 1922 के बाद भी पालन करना चाहते थे।

अन्तर्कलहः अन्दरूनी मतभेद

मुस्लिम बहुल राज्यः ऐसे राज्य जहां कि मुसलमानों का बहुमत हो

डोमिनियन स्टेटसः अधिराज्य पद (ब्रिटिश साम्राज्य का अंग रहते हुए स्वशासन का अधिकार)

स्टेट्यूटरीः वैधानिक

अल्टीमेटमः समय सीमाबद्ध चेतावनी

13.7 सन्दर्भ ग्रंथ

ताराचन्दः *भारतीय स्वतन्त्रता आन्दोलन का इतिहास* (भाग 4), नई दिल्ली, 1984

मजूमदार, आर0 सी0 (सम्पादक) – *स्ट्रगल फ़ॉर फ्रीडम*, बम्बई, 1969

चन्द्रा, बिपन – *नेशनलिज़्म एण्ड कोलोनियलिज़्म इन मॉडर्न इण्डिया*, नई दिल्ली, 1979

सिंह, अयोध्या – *भारत का मुक्ति संग्राम*, दिल्ली, 1977

आज़ाद, अबुल कलाम – *इण्डिया विन्स फ्रीडम*, बम्बई, 1959

सील, अनिल – *दि एमरजेन्स ऑफ़ इण्डियन नेशनलिज़्म*, कैम्ब्रिज, 1968

तेन्दुलकर, जी0 डी0 – *महात्मा*, भाग 2, बम्बई, 1965

नेहरू, जवाहर लाल – *एन आटोबायोग्राफ़ी*, लन्दन, 1936

सीतारमैया, पी0 – *हिस्ट्री ऑफ दि इण्डियन नेशनल कांग्रेस*, बम्बई, 1936

13.8 स्व मूल्यांकित प्रश्नों के उत्तर

1. (क) देखिए 13.3.4 अपरिवर्तनवादियों (नोचेन्जर्स) की गतिविधियां और उनका महत्व।
   (ख) देखिए 13.3.2. स्वराज दल की कार्य–प्रणाली।
2. (i) सी0 आर0 दास तथा मोतीलाल नेहरू।

(ii) 1930 में, सविनय अवज्ञा आन्दोलन प्रारम्भ होने से पूर्व।

1. (क) देखिए 13.4.1. साइमन कमीशन का गठन तथा उसका भारत में विरोध।
   (ख) देखिए 13.4.2 नेहरू रिपोर्ट।
2. (i) लाला लाजपत राय पर।

(ii) पण्डित जवाहर लाल नेहरू ने।

13.9 अभ्यास प्रश्न

1. असहयोग आन्दोलन के स्थगन के बाद कांग्रेस में हुए अन्तर्कलह पर प्रकाश डालिए।
2. स्वराज दल की चुनावी सफलता का आकलन कीजिए।
3. अपरिवर्तनवादियों (नो चेंजर्स) द्वारा किए गए सृजनात्मक कार्यों का आकलन कीजिए।
4. साइमन कमीशन के बहिष्कार के दौरान सरकार के दमन चक्र का वर्णन कीजिए।
5. कांग्रेस द्वारा पूर्ण स्वराज्य की घोषणा के महत्व पर प्रकाश डालिए।

इकाई चौदह : सविनय अवज्ञा आन्दोलन, नमक सत्याग्रह एवं गोलमेज़ सम्मेलन

14.1 प्रस्तावना

14.2 इकाई के उद्देश्य

14.3 सविनय अवज्ञा आन्दोलन अर्थात् नमक सत्याग्रह का विकास

14.3.1 कांग्रेस द्वारा पूर्ण स्वराज के लक्ष्य की घोषणा

14.3.2 नमक कानून तथा डांडी यात्रा

14.3.3 सविनय अवज्ञा आन्दोलन

14.3.4 गांधी–इर्विन समझौता

14.4 गोलमेज़ सभाएं

14.4.1 प्रथम गोल मेज़ सभा

14.4.2 द्वितीय गोल मेज़ सभा

14.4.3 साम्प्रदायिक पंचाट तथा पूना समझौता

14.4.4 तीसरी गोल मेज़ सभा

14.5 .सार संक्षेप

14.6 पारिभाषिक शब्दावली

14.7 सन्दर्भ ग्रंथ

14.8 स्व मूल्यांकन हेतु प्रश्नों के उत्तर

14.9 अभ्यास प्रश्न

14.1 प्रस्तावना

पिछली इकाई में हम सभी भारतीय राजनीतिक दलों द्वारा साइमन कमीशन के बहिष्कार की चर्चा कर चुके हैं। भारतीयों द्वारा डोमिनियन स्टेटस तथा पूर्ण स्वराज्य की मांग की ब्रिटिश भारतीय सरकार द्वारा सर्वथा उपेक्षा किए जाने पर कांग्रेस ने 26 जनवरी, 1930 को स्वतन्त्रता दिवस मनाया। दमनकारी एवं शोषक नमक कानून को तोड़ने के उद्देश्य से गांधीजी ने डांडी यात्रा कर सविनय अवज्ञा आन्दोलन आरम्भ किया।

ब्रिटिश भारतीय सरकार साइमन कमीशन के गठन में ही भारतीयों की भावनाओं और आकांक्षाओं की उपेक्षा कर चुकी थी, अब उसने और भी मुखर होकर भारत में उत्तरदायी सरकार स्थापित करने की दिशा में सार्थक प्रयास करने के स्थान पर विघटनकारी तत्वो को बढ़ावा देना प्रारम्भ कर दिया। 1930, 1931 तथा 1932 में आयोजित तीनों गोलमेज़ सभाओं में उसकी दुराशयता के स्पष्ट दर्शन हुए। इस इकाई में आपको ब्रिटिश भारतीय सरकार की चालों और कुचक्रों से अवगत कराया जाएगा।

14.2 इकाई के उद्देश्य

इस इकाई में 1929 में कांग्रेस की पूर्ण स्वराज्य की घोषणा, सविनय अवज्ञा आन्दोलन अर्थात् नमक सत्याग्रह और लन्दन में 1930, 31 तथा 32 में आयोजित तीनों गोल मेज़ सभाओं की चर्चा की जाएगी। इस इकाई को पढ़कर आप अवगत होंगेः

- सविनय अवज्ञा आन्दोलन अर्थात् नमक सत्याग्रह के परिप्रेक्ष्य में कांग्रेस की आकांक्षाओं, उसकी रणनीति तथा उसके देश–व्यापी प्रभाव के विषय में।
- सविनय अवज्ञा आन्दोलन के स्थगन तथा 1931 के गांधी–इर्विन समझौते के विषय में।
- तीनों गोल मेज़ सभाओं में उठाए गए मुद्दों तथा उनमें पारित महत्वपूर्ण प्रस्तावों के विषय में।
- 1935 के गवर्नमेन्ट ऑफ इण्डिया एक्ट के प्रावधानों पर सविनय अवज्ञा आन्दोलन तथा गोल मेज़ सभाओं की सिफ़ारिशों के प्रभाव के विषय में।

14.3 सविनय अवज्ञा आन्दोलन अर्थात् नमक सत्याग्रह का विकास

14.3.1 कांग्रेस द्वारा पूर्ण स्वराज के लक्ष्य की घोषणा

फ़रवरी, 1924 में केन्द्रीय विधान सभा में 1919 के एक्ट में सुधार करने के लिए एक गोलमेज़ सभा के आयोजन की मांग की गई थी परन्तु सरकार ने इस मांग को स्वीकार नहीं किया। मार्च, 1926 में कांग्रेस ने अपने एक प्रस्ताव में विधान सभा में स्वराज पार्टी के सदस्यों से इस मांग को फिर से उठाने के लिए कहा। मोतीलाल नेहरू ने दो बार इस विषय में प्रस्ताव रखे किन्तु सरकार ने इस पर कोई ध्यान नहीं दिया। साइमन कमीशन से व्याप्त असंतोष और डोमिनियन स्टेटस का वादा करके उसे पूरा न करना कांग्रेस के असंतोष का कारण था। गांधीजी स्वराज के लक्ष्य को भारत के लिए पर्याप्त मान रहे थे जब कि जवाहर लाल नेहरू तथा सुभाष चन्द्र बोस जैसे नवयुवक पूर्ण स्वतन्त्रता का लक्ष्य रखना चाहते थे।

23 दिसम्बर, 1929 को वाइसराय ने गांधीजी, मोतीलाल नेहरू, तेजबहादुर सप्रू, मोहम्मद अली जिन्ना तथा विठ्ठल भाई पटेल से भेंट कर राजनीतिक गतिरोध को दूर करने का असफल प्रयास किया। गांधीजी ने वाइसराय से यह कहा कि वो यह आश्वासन दें कि गोल मेज़ सभा भारत को डोमिनियन स्टेटस देने के उद्देश्य से आयोजित होगी। परन्तु वाइसराय इर्विन यह आश्वासन नहीं दे सका। सरकार ने यह स्पष्ट कर दिया कि भारत के राजनीतिक भविष्य का फैसला ब्रिटिश पार्लियामेन्ट करेगी न कि स्वयं भारतीय जनता। यह स्पष्ट हो गया था कि एक विदेशी शासक और परतन्त्र प्रजा के मध्य स्वतन्त्रता के मुद्दे पर कोई समझौता नहीं हो सकता। 29 दिसम्बर से 31 दिसम्बर, 1929 तक लाहौर में चले कांग्रेस के अधिवेशन में तत्कालीन अध्यक्ष जवाहर लाल नेहरू ने कांग्रेस का लक्ष्य पूर्ण स्वतन्त्रता घोषित कर दिया। कांग्रेस ने केन्द्रीय, प्रान्तीय विधान सभाओं तथा सरकार द्वारा आयोजित गोल मेज़ सभा के पूर्ण बहिष्कार का निर्णय लिया और 26 जनवरी, 1930 को स्वतन्त्रता दिवस के रूप में मनाया।

14.3.2 नमक कानून तथा डांडी यात्रा

ब्रिटिश सरकार ने नमक उद्योग तथा उसके व्यवसाय के लिए नमक कानून बनाया जिसमें नमक बनाने व बेचने का एकाधिकार सरकार का हो गया। इस व्यवसाय में पीढ़ियों से लगे लोग बेरोज़गार हो गए। सरकार ने बाज़ार में नमक को उसकी लागत से लगभग चालीस गुने मूल्य पर बेचा। महंगे नमक के कारण गरीब न तो स्वयं अपने लिए पर्याप्त मात्रा में उसे खरीद सकता था और न ही अपने मवेशियों को उनकी खुराक के लिए ज़रूरी मात्रा में नमक दे सकता था। खुराक में नमक की मात्रा कम होने से शरीर में आयोडीन की कमी के कारण मनुष्यों और जानवरों को घेंघा जैसे कई जानलेवा रोग हो जाते थे। गांधीजी इस नमक कानून को ब्रिटिश शासन के सबसे बड़े कलंकों में से एक मानते थे इसलिए उन्होंने इसे तोड़ना अपना कर्तव्य माना। दूसरी बात यह थी कि नमक वफ़ादारी का प्रतीक था और इस कानून के कारण भारतीय अंग्रेज़ों का नमक खाने के लिए विवश थे। इस कानून को तोड़कर और खुद नमक बनाकर भारतवासी अंग्रेजों के प्रति वफ़ादारी के बन्धन से मुक्ति प्राप्त कर सकते थे।

कांग्रेस पूर्ण स्वराज को अपना लक्ष्य घोषित कर चुकी थी। गांधीजी सत्याग्रह के माध्यम से इस लक्ष्य को प्राप्त करना चाहते थे और अपने आन्दोलन का प्रारम्भ वो नमक कानून को तोड़कर ही करना चाहते थे। आन्दोलन शुरू करने से पहले गांधीजी ने वाइसराय को लिखे पत्र में 11 सूत्री मांगें रखीं। इसमें रुपये की विनिमय दर में कमी, लगान में कमी, नमक पर सरकार के एकाधिकार की समाप्ति, सैनिक तथा प्रशासनिक व्यय में कमी, भारतीय उद्योग को संरक्षण तथा राजनीतिक बन्दिओं की रिहाई की मांगें शामिल थीं। सरकार द्वारा इन मांगों की पूर्ति न किए जाने पर आन्दोलन प्रारम्भ किया जाना था। सरकार द्वारा कोई प्रतिक्रिया न मिलने पर 2 मार्च, 1930 को गांधीजी ने वाइसराय को सत्याग्रह करने के अपने निर्णय से अवगत कराने के लिए एक पत्र लिखा। इस पत्र में उन्होंने सत्यागह के औचित्य पर प्रकाश डाला। वाइसराय ने सत्याग्रह के निर्णय को कानून का उल्लंघन तथा अशान्ति फैलाने वाला बताया। गांधीजी ने अपने वक्तव्य में कहा –

मैने घुटनों के बल झुक कर रोटी मांगी थी और मिला पत्थर। भारत एक विशाल कारागार की तरह है। मेरे कार्यक्रम के अनुसार न्याय प्रणाली और शान्ति एवं व्यवस्था का भंग होना स्वाभाविक है। कानून पर बहुत सी किताबें हैं लेकिन भारतीयों ने अब तक जो कानून जाना है वो है अंग्रेज शासकों की मर्जी। मैं कानून को नकारता हूँ और खुली हवा के अभाव में राष्ट्र का दम घोंटने वाली हम पर थोपी गई इस शान्ति की दुखदाई एकरसता को तोड़ना अपना पुनीत कर्तव्य समझता हूँ।

12 मार्च, 1930 को प्रातः साढ़े छह बजे गांधीजी ने अपने आश्रम के 78 अनुयायियों के साथ साबरमती आश्रम से अपनी पद यात्रा प्रारम्भ की, ऐसी यात्रा जो कि विश्व इतिहास में अनूठी थी। गांधीजी के विरोधियों ने उनका उपहास उड़ाया। सरकार ने इसको गांधीजी की सनक समझकर इस यात्रा को गम्भीरता से नहीं लिया। उनके शुभचिन्तकों ने चिन्ता और सन्देह व्यक्त किया। परन्तु रबीन्द्रनाथ टैगोर ने गांधीजी की डांडी यात्रा का समर्थन किया और उन्हें सन्देश दिया कि वो विरोधियों की चिन्ता न करें और सत्यमार्ग पर अकेले ही चलते रहें। इस सन्देश को उन्होंने अपने गीत *एकला चलो रे* के माध्यम से अमर कर दिया। जल्द ही विरोधियों का उपहास भय और क्रोध में परिवर्तित हो गया। मोतीलाल नेहरू जैसे आलोचक अब स्वयं नमक सत्याग्रही बन गए थे। उन्होंने अपना महल जैसा आनन्द भवन राष्ट्र को समर्पित कर दिया और वह खुद इलाहाबाद की सड़कों पर प्रतिबन्धित नमक बेचने लगे। 241 मील की पद

यात्रा के बाद 5 अप्रैल, 1930 को सूर्यास्त के समय गांधीजी डांडी के समुद्र तट पर पहुंचे। 6 अप्रैल, 1930 की सुबह समुद्र में स्नान कर गांधीजी ने मुठ्ठी भर नमक उठाकर नमक कानून तोड़ा और सविनय अवज्ञा आन्दोलन प्रारम्भ किया। श्रीमती सरोजिनी नायडू इस घटना की गवाह थीं। पूरे देश में उत्साह की लहर दौड़ पड़ी। हर जगह नमक कानून तोड़ा जाने लगा।

14.3.3 सविनय अवज्ञा आन्दोलन

नमक सत्याग्रह में एक कुशल सेनापति के समान रणनीति तैयार की गई थी। इसमें आश्चर्य, विभिन्न शक्तियों की सार्वभौमिक गतिशीलता, अनुशासन, संगठन और दुश्मन को चारो तरफ़ से घेर कर उस पर प्रहार करने की रणनीति सभी का समावेश था।

सरकार ने बड़े पैमाने पर गिरफ़्तारियां कीं, गैर कानूनी ढ़ग से निर्मित नमक को बड़ी मात्रा में ज़ब्त किया गया, पर्दानशीन महिलाओं तक की तलाशी ली गई, जन–सभाओं तथा जुलूसों पर प्रतिबन्ध लगा दिया गया। जवाहरलाल नेहरू को गिरफ़्तार कर लिया गया। विधान सभा के अध्यक्ष विठ्ठल भाई पटेल तथा नेशनलिस्ट पार्टी के अध्यक्ष मदनमोहन मालवीय ने त्यागपत्र दे दिए। खान अब्दुल गफ्फार खां को पेशावर में गिरफ़्तार कर लिया गया। विरोध प्रदर्शन के दौरान सैकड़ों आन्दोलनकारी मारे गए और उससे कहीं अधिक घायल हो गए। पेशावर में गढ़वाल रेजीमेन्ट ने निहत्थे आन्दोलनकारियों पर गोली चलाने से इंकार कर दिया जिसके कारण उनका कोर्टमार्शल हुआ। 1930 में 25 अप्रैल से 5 मई तक पेशावर आन्दोलनकारियों के हाथों में रहा। 1910 का दमनकारी प्रेस एक्ट फिर से लागू किया गया। 67 समाचार पत्र और 55 छापेखाने बन्द कर दए गए। गांधीजी ने इसकी तुलना में डायरशाही को भी फीका बताया। गांधीजी ने वाइसराय को सूरत में धरसाना के नमक उद्योग पर कब्ज़ा करने की योजना से अवगत कराया पर इस योजना के क्रियान्वित होने से पहले ही 4 मई, 1930 की मध्य रात्रि में उन्हें गिरफ़्तार कर यर्वदा की केन्द्रीय जेल भेज दिया गया। इस आन्दोलन में लगभग एक लाख गिरफ़्तारियां हुईं। धरसाना में शान्तिपूर्ण आन्दोलनकारियों पर पुलिस की ज़्यादतियों का मार्मिक विवरण *न्यू फ्रीमैन* के सम्वददाता वेब मिलर ने किया है। धरसाना में पुलिस के अत्याचार से 320 आन्दोलनकारी घायल हुए और 2 शहीद हुए। अब आन्दोलनकारियों ने नमक कानून का उल्लंघन करने के साथ–साथ विदेशी कपड़ों, ब्रिटिश बैंकों और बीमा कम्पनियों, जहाजरानी आदि का बहिष्कार किया। शराब की दुकानों पर महिला आन्दोलनकारियों ने धरने दिए ओर भारतीय सेना तथा भारतीय पुलिस से यह अपील की गई कि वो आन्दोलनकारियों को अपने बन्धु समझें। इस आन्दोलन में महिलाओं की भूमिका अत्यन्त सराहनीय रही। श्रीमती सरोजिनी नायडू ने सविनय अवज्ञा आन्दोलन के दौरान सत्याग्रह का नेतृत्व किया। उर्मिला देवी ने सविनय अवज्ञा आन्दोलन के दौरान 'देश सेविका संघ' और 'नारी सत्याग्रह समिति' जैसे राष्ट्रवादी महिला संघों की स्थापना की। 13 वर्ष की रानी गिडालू ने मणिपुर में सविनय अवज्ञा आन्दोलन के दौरान गांधीजी के आवाहन पर विदेशी शासन के विरुद्ध खिलाफ़त का झण्डा बुलंद किया। पर्दानशीन महिलाएं भी आन्दोलन में कूद पड़ीं। कस्तूरबा गांधी, मधू बेन पेटिट, श्रीमती जमुना लाल बजाज, श्रीमती स्वरूप रानी नेहरू, श्रीमती कमला नेहरू आदि ने विदेशी सामानों की दुकानों तथा मादक पदार्थों की दुकानों पर सफलतापूर्वक धरने दिए। कौंडा वैंकट पैया ने सविनय अवज्ञा आन्दोलन के दौरान गुंटूर जिले में नमक कानून तोड़ने के लिए तथा केलाप्पन ने मालाबार में नमक यात्रा (साल्ट मार्च) का नेतृत्व किया। आन्दोलन के प्रारम्भ होने के तीन महीने के अन्दर कांग्रेस के सभी प्रमुख नेता बन्दी बना लिए गए। अब सविनय अवज्ञा आन्दोलन खुलेआम होने के स्थान पर भूमिगत हो गया परन्तु इसका विदेश व्यापार पर व्यापक प्रभाव पड़ा। तीस करोड़ रुपयों का विदेशी सामान बम्बई नगर तथा उसके बन्दरगाह पर बिना बिका पड़ा रहा। भारत में कपड़े का आयात 31 प्रतिशत तथा धागे का आयात 45 प्रतिशत कम हो गया। सामान्य आयात एक तिहाई से भी कम हो गया। सिगरेटों का आयात तो पहले का छठवां हिस्सा ही रह गया, बम्बई में ब्रिटिश स्वामित्व के सोलह कपड़े के मिल बन्द करने पड़े, खादी के उत्पादन तथा उसकी बिक्री में अप्रत्याशित वृद्धि हुई। 'स्पिनर्स एसोसियेशन' ने 140000 कताई वाले तथा 11500 बुनकर तथा 1000 धुनियों को काम पर रखा। समस्त विश्व में सत्याग्रह की चर्चा हुई। भारत में नरमपंथ, चरमपंथ, मुस्लिम लीग, हिन्दू महासभा आदि अनेक दलों ने स्वशासन की मांग करना शुरू कर दिया। स्वराज,

होमरूल, डोमिनियन स्टेटस और स्वतन्त्रता की मांग अब आम हो गई। जिन्ना जैसे प्रबल गांधी विरोधी और गोल मेज़ सभा का स्वागत करने वाले भी अब ऑस्ट्रेलिया, न्यूज़ीलैण्ड जैसे देशों में स्थापित उत्तरदायी सरकार भारत में भी स्थापित करने की मांग करने लगे।

सविनय अवज्ञा आन्दोलन के दौरान आर्थिक मन्दी और भी अधिक अशान्ति का कारण बनी। कारखानों में हड़तालें हुईं और संयुक्त प्रान्त तथा गुजरात में किसानों ने लगान देने से इंकार कर दिया। कर्नाटक तथा कनारा में भी किसान आन्दोलन कर रहे थे। सरकार ने हज़ारों एकड़ ज़मीन ज़ब्त कर ली और अनेक राजस्व कर्मचारियों को बर्खास्त कर दिया। मध्य प्रान्त के आदिवासियों ने वन सत्याग्रह प्रारम्भ कर दिया। स्थिति दिनों–दिन खराब होती जा रही थी।

सविनय अवज्ञा आन्दोलन ने स्वतन्त्रता तथा राष्ट्रीय एकता, इन दो लक्ष्यों को प्रमुखता दी थी। राष्ट्रीय एकता की स्थापना के लिए कांग्रेस समरूपता की पक्षधर थी जब कि मुस्लिम लीग संघीय शासन की स्थापना की पक्षधर थी। इन मतभेदों के कारण मुस्लिम लीग ने सत्याग्रह में भाग नहीं लिया परन्तु अब्बास तैयबजी, मौलाना आज़ाद, रफ़ी अहमद किदवई, डॉक्टर अंसारी, खान अब्दुल गफ़्फ़ार खां और सैयद महमूद जैसे अनेक मुस्लिम नेता तथा जमैतुल उलेमा, अहरारुल इस्लाम, खुदाई खिदमतगार और नेशनलिस्ट मुस्लिम पार्टी जैसे मुस्लिम संघ तथा राजनीतिक दल कांग्रेस के साथ थे। खान अब्दुल गफ्फार खाँ नमक सत्याग्रह में लगभग 12000 मुसलमान जेल गए थे।

कांग्रेस ने 1930 की गोल मेज़ सभा के बहिष्कार का निर्णय लिया। गवर्नर जनरल लॉर्ड इर्विन ने आन्दोलन से पहले ही अक्टूबर, 1929 में डोमिनियन स्टेटस देने की दिशा में कार्य करने की योजना प्रस्तुत की थी और यह ब्रिटिश पार्लियामेन्ट की संस्तुति के बिना लागू नहीं की जा सकती थी लेकिन कांग्रेस उस पर तुरन्त अमल चाहती थी।

सरकार ने एक ओर जहां आन्दोलनकारियों का निर्ममता से दमन किया वहीं दूसरी ओर वह नरमपंथियों, मुसलमानों, ज़मींदारों आदि को रियायतें देकर अपने साथ मिलाने के लिए प्रयत्नशील हो गई। उत्तर–पश्चिम सीमा प्रान्त में अनेक स्थानों पर सरकार के विरुद्ध विद्रोह हुए। 23 अप्रैल, 1930 को खुदाई खिदमतगारों के जुलूस पर पुलिस ने गोलीबारी की। इर्विन ने 12 मई, 1930 के वक्तव्य में यह कहा कि मद्रास, बम्बई, कलकत्ता, चिटगांव, कराची, दिल्ली, शोलापुर, पेशावर आदि में कानून का उल्लंघन किया जा रहा है परन्तु आम तौर पर मुसलमान और श्रमिक वर्ग आन्दोलनकारियों के साथ नहीं हैं। गांधीजी को बन्दी बनाने के बाद भी आन्दोलन थमा नहीं। आन्दोलन की व्याप्ति तथा उसकी पैठ देखकर इर्विन को स्वीकार करना पड़ा कि अब केवल दमन से राजनीतिक असन्तोष को थाम पाना सम्भव नहीं है और सरकार को सुधार की प्रक्रिया जल्द आरम्भ करनी पड़ेगी। अब यह स्पष्ट हो गया कि सरकार जेल में बन्द गांधीजी से जब तक समझौते की बात नहीं करेगी तब तक स्थिति में सुधार नहीं आ सकता।

14.3.4 गांधी–इर्विन समझौता

26 जनवरी, 1931 को गांधीजी तथा उनके सहयोगियों को रिहा कर दिया गया। गांधीजी सम्मान के साथ शान्ति वार्ता के लिए तैयार थे। 17 फ़रवरी से 5 मार्च, 1931 तक गांधीजी तथा लॉर्ड इर्विन में वार्ता चली। 5 मार्च को गांधी–इर्विन समझौता हुआ जिसके अन्तर्गत

सविनय अवज्ञा आन्दोलन वापस ले लिया गया, स्वदेशी वस्तुओं के उत्पादन को प्रोत्साहित करना स्वीकार किया गया किन्तु विदेशी वस्तुओं के बहिष्कार को और शराब बन्दी के लिए धरना देने को राजनीतिक हथियार के रूप में प्रयोग किया जाना बन्द कर दिया गया। राजनीतिक बन्दी रिहा हुए, भारत में संघीय व्यवस्था का अनुमोदन कर दिया गया। सविनय अवज्ञा आन्दोलन के दौरान पारित अध्यादेशों को वापस ले लिया गया और राजनीतिक संगठनों पर लगी पाबन्दी हटा ली गई। हिंसा में लिप्त घटनाओं के अतिरिक्त सभी राजनीतिक बन्दियों को रिहा कर दिया गया। ज़ब्त की गई सम्पत्तियों को वापस कर दिया गया। गांधीजी द्वारा पुलिस की ज़्यादतियों पर जांच बैठाने की मांग को ठुकरा दिया गया। नमक कानून को भी रद्द नहीं किया गया, मात्र उसमें कुछ सुधार किए गए। कांग्रेस ने द्वितीय गोलमेज सभा में सुधार हेतु बातचीत में भागीदारी करने का निश्चय किया। 29 मार्च, 1931 को कराची में बुलाए गए सम्मेलन में कांग्रेस ने इस समझौते पर अपनी सहमति दे दी।

जवाहरलाल नेहरू इस समझौते पर अपनी सहमति जताते हुए भी इससे बहुत निराश हुए किन्तु वल्लभ भाई पटेल की दृष्टि में गांधीजी शेर की मांद में जाकर उसका मुकाबला कर कुछ भी खोने वाले नहीं थे।

वामपंथी इतिहासकारों ने गांधीजी द्वारा सविनय अवज्ञा आन्दोलन को वापस लिया जाना भारतीय उद्योगपतियों तथा बड़े व्यापारियों के दबाव में आकर लिया फैसला माना है। एक वर्ष तक चले आन्दोलन के दौरान आर्थिक परिस्थितियां बदल चुकी थीं। लगातार हड़तालों से भारतीय उद्योगपतियों को नुक्सान हो रहा था और विदेश व्यापार से जुड़े व्यापारी विदेशी सामान के बहिष्कार से परेशान थे। जहां यही वर्ग विदेशी व्यापार से दूर रहने की शपथ खा रहा था और इस आन्दोलन को संचालित करने में अपना आर्थिक सहयोग दे रहा था वहीं अब यह इस आन्दोलन को स्थगित किए जाने के पक्ष में होने लगा था और फिर विदेश व्यापार की ओर उन्मुख हो रहा था। मारवाड़ी व गुजराती व्यापारी तथा भारतीय मिल मालिक गांधीजी पर आन्दोलन को स्थगित करने के लिए दबाव डाल रहे थे। ज़मींदार वर्ग भी सविनय अवज्ञा आन्दोलन के अन्तर्गत होने वाले किसान आन्दोलनों से परेशान होकर इस आन्दोलन की समाप्ति चाहता था। इधर एक साल तक आन्दोलन कर आन्दोलनकारियों का उत्साह भी मन्द पड़ चुका था। इन परिस्थितियों में गांधीजी का सरकार से बिना किसी ठोस सुधार प्राप्त किए समझौता करना आश्चर्यजनक नहीं था। विठ्ठल भाई पटेल और सुभाषचन्द्र बोस ने इस निर्णय को जनता के साथ विश्वासघात मानते हुए कांग्रेस में गांधीजी की जगह युवा नेतृत्व की मांग की थी।

स्व मूल्यांकन हेतु प्रश्न

निम्नलिखित विषयों पर संक्षिप्त टिप्पणी लिखिए:

1. (क) डांडी यात्रा।

(ख) गांधी–इर्विन समझौता।

2. नीचे लिखे प्रश्नों के उत्तर दीजिए।

(i) नमक बनाने तथा उसको बेचने का एकाधिकार किसके पास था?

(ii) खुदाई खिदमतगार दल का नेता कौन था?

14.4 गोलमेज़ सभाएं

14.4.1 प्रथम गोल मेज़ सभा

1924 में स्वराज दल के सदस्यों ने केन्द्रीय विधान सभा में संवैधानिक सुधारों के लिए गोल मेज़ सभा बुलाने की मांग की थी। जून, 1930 में स्टेट्यूटरी कमीशन (साइमन कमीशन) की रिपोर्ट प्रकाशित हुई और वह राष्ट्रवादियों की आशंकाओं के अनुरूप ही भारतीयों को डोमिनियन स्टेटस दिए जाने के विरुद्ध निकली। इस रिपोर्ट में केन्द्र में उत्तरदायी सरकार की स्थापना की संस्तुति नहीं दी गई। इसमें प्रान्तों को स्वायत्तता देने की सिफ़ारिश तो की गई पर वित्तीय मामलों में सरकार के नियन्त्रण पर ज़ोर दिया गया। साम्प्रदायिक प्रतिनिधित्व की व्यवस्था को और अधिक विस्तार दिए जाने की भी सिफ़ारिश की गई। इर्विन तथा मैल्कम हैली ने सुधारों की ज़ोरदार सिफ़ारिश की। इर्विन ने यह सुझाव दिया कि गोल मेज़ सभा से पूर्व सरकार के उद्देश्यों की पार्लियामेन्ट में घोषणा की जाय और सरकार भारत में डोमिनियन स्टेटस की स्थापना में अपना सहयोग दे परन्तु ब्रिटिश राजनीतिज्ञ स्टेट्यूटरी कमीशन की सिफ़ारिशों को ही गोलमेज़ सभा में विचार–विमर्श का आधार बनाना चाहते थे।

1930 में इंग्लैण्ड में लेबर पार्टी की अल्पमत सरकार थी जिसे विरोधी पक्ष के सहयोग पर निर्भर करना पड़ता था। 12 नवम्बर, 1930 को प्रथम गोलमेज़ सभा का आरम्भ हुआ जिसमें ब्रिटिश पार्लियामेन्ट, ब्रिटिश भारत तथा भारतीय रियासतों के प्रतिनिधि सम्मिलित हुए। इसका उद्घाटन करते हुए सम्राट जॉर्ज पंचम ने भारतीयों को सुधार देने के साथ–साथ अल्पसंख्यकों के हितों की रक्षा की बात उठाई। कांग्रेस ने 1930 की गोल मेज़ सभा के बहिष्कार का निर्णय लिया। इस सभा में शामिल तेजबहादुर सप्रू, महाराजा बीकानेर, नवाब भोपाल तथा मुहम्मद अली जिन्ना ने संघीय व्यवस्था तथा स्वशासन की स्थापना पर ज़ोर दिया। अधीनस्थ रियासतों की स्थिति को लेकर भी सवाल उठाए गए किन्तु अल्पसंख्यकों के हितों की रक्षा को लेकर हिन्दू महासभा तथा मुस्लिम लीग के प्रतिनिधियों के मध्य भारी विवाद हुआ। मुसलमान हिन्दू बहुमत वाले देश में स्वशासन की व्यवस्था लागू किए जाने को अपने हित में नहीं

मान रहे थे। प्रथम गोलमेज़ सभा में ब्रिटिश भारत तथा भारतीय रियासतों को मिलाकर एक संघ की स्थापना का निर्णय लिया गया पर कुल मिलाकर यह कोई भी ठोस निर्णय लेने में असफल रही।

14.4.2 द्वितीय गोल मेज़ सभा

द्वितीय गोल मेज़ सभा 7 सितंबर, 1931 से लन्दन में हुई जिसमें कांग्रेस के एकमात्र प्रतिनिधि के रूप में गांधी जी शामिल हुए। द्वितीय गोल मेज़ सभा में कांग्रेस की भागीदारी से भारतवासियों को उससे बहुत अधिक आशाएं थीं। गांधीजी के नेतृत्व में कांग्रेस भारत में उत्तरदायी शासन की स्थापना की आशा कर रही थी। कांग्रेस संवैधानिक सुधारों का प्रारूप तैयार करने की प्रक्रिया में इस आशा के साथ सम्मिलित हुई थी कि भारत में संघीय व्यवस्था के अन्तर्गत स्वशासन स्थापित किया जाएगा और रक्षा, विदेश सम्बन्ध, अल्पसंख्यक विषयक मामले, भारतीय ऋण आदि विषयों में भारतीय हितों को सर्वोपरि रखा जाएगा।

गोलमेज़ सभा में जाने से पहले गांधीजी मुसलमानों के साथ स्थिति को स्पष्ट करना चाहते थे। अप्रैल, 1931 में 'ऑल इण्डिया मुस्लिम कॉन्फ्रेन्स' ने साम्प्रदायिक प्रतिनिधित्व के साथ–साथ मुसलमानों के लिए विशिष्ट अधिकारों तथा सुविधाओं की मांग की थी। कांग्रेस ने मुसलमानों तथा सिखों को सन्तुष्ट करके ही आगे बढ़ने का निश्चय किया। जिन्ना के 14 सूत्री मांगों में से केवल संघीय विधान सभा में मुसलमानों के लिए एक तिहाई स्थान की मांग को छोड़कर, सभी को इसने कराची अधिवेशन में स्वीकार कर लिया।

अब तक इंग्लैण्ड में लेबर पार्टी की सरकार गिर चुकी थी। भारतीयों को उत्तरदायी सरकार दिए जाने के पक्षधर भारत सचिव वेगवुड बेन त्यागपत्र दे चुके थे और उनके स्थान पर सैमुअल अनुदारवादी होरे भारत सचिव बन गए थे। प्रधानमन्त्री रैमज़े मैक्डोनाल्ड को अनुदारवादियों को सन्तुष्ट करके ही सरकार चलानी थी। द्वितीय गोलमेज़ सभा में हिन्दू–मुस्लिम मतभेद का मुद्दा ही छाया रहा। गांधीजी ने भारत के लिए पूर्ण स्वतन्त्रता की मांग रखी परन्तु मुसलमानों ने अपने लिए एक स्वतन्त्र राज्य की मांग की क्योंकि इसकी स्थापना के बिना उनके हितों की रक्षा नहीं की जा सकती थी। एंग्लो इण्डियन समुदाय, भारतीय ईसाई समुदाय, अनुसूचित जाति वर्ग, गैर–ब्राह्मण वर्ग तथा सिख भी अपनी–अपनी मांग लेकर अड़े हुए थे। गांधीजी को इस सभा में घोर अपमान और निराशा का सामना करना पड़ा। उन्होंने इस सभा को भारतीय स्वतन्त्रता की कब्रगाह कहा। विश्व–व्यापी आर्थिक मन्दी के इस दौर में अनुदारवादी किसी भी मूल्य पर भारतीयों को स्वशासन प्रदान कर अपने आर्थिक हितों की बलि नहीं चढ़ाना चाहते थे इसलिए साइमन कमीशन की संस्तुतियों पर अमल करने तक ही द्वितीय गोलमेज़ सभा सीमित रही। इसमें राजनीतिक व संवैधानिक सुधारों के स्थान पर साम्प्रदायिक समस्याओं पर चर्चा हुई और साम्प्रदायिक मांग रखने वाले दलों ने राष्ट्रीय हितों की उपेक्षा की।

इस सभा में दलित नेता डॉक्टर भीम राव अम्बेडकर ने दलितों के लिए पृथक निर्वाचक मण्डल की मांग की किन्तु महात्मा गांधी ने दलितों को हिन्दू समाज का अविभाज्य अंग मानते हुए उनको पृथक सम्प्रदाय के रूप में मानने से इंकार कर दिया और इसलिए उनके लिए पृथक निर्वाचक मण्डल की व्यवस्था किए जाने का भी उन्होंने विरोध किया।

निराश और दुखी होकर गांधीजी 29 दिसम्बर, 1931 को भारत लौटे। इधर भारत सरकार ने 1931 में 15 दमनकारी अध्यादेश जारी किए थे। अब भारत सरकार सुधार करने के लिए बिलकुल भी तत्पर नहीं थी और न ही भारतीयों को इस विषय में कोई आशा थी। खान अब्दुल गफ़्फ़ार खां को बन्दी बना लिया गया था। गवर्नर जनरल लॉर्ड विलिंगडन तथा भारत सचिव होरे ने कांग्रेस को ब्रिटिश साम्राज्य विरोधी घोषित कर उससे हर प्रकार का सम्बन्ध तोड़ दिया। 2 जनवरी से 4 जनवरी, 1932 के मध्य 5 अध्यादेश जारी किए गए। कांग्रेस तथा उससे सम्बन्धित सभी संगठनों पर प्रतिबन्ध लगा दिया गया। गांधीजी, सरदार पटेल, राजेन्द्र प्रसाद और जवाहर लाल नेहरू को बन्दी बना लिया गया।

14.4.3 साम्प्रदायिक पंचाट तथा पूना समझौता

10 अगस्त, 1932 को इंग्लैण्ड के प्रधानमन्त्री रैमज़े मैक्डोनाल्ड ने साम्प्रदायिक पंचाट की घोषणा की। यह पंचाट इस अवधारणा पर आधारित था कि भारत एक राष्ट्र नहीं अपितु विभिन्न राष्ट्रों का समूह है। इस पंचाट में

अंग्रेजी सरकार ने मुसलमानों, सिक्खों, दलितों, पिछड़ी जातियों, भारतीय इसाइयों, एंग्लो इण्डियनों, यूरोपियनों, व्यापारियों, उद्योगपतियों, ज़मींदारों, श्रमिकों और विश्वविद्यालयों को पृथक प्रतिनिधत्व दिया था।

गंधीजी इस समय जेल में थे। उन्होंने इस निर्णय को गांधीजी ने हिन्दू समाज को विभाजित करने की साज़िश बताया व इसके विरोध में 20 सितम्बर, 1932 को उन्होंने आमरण अनशन किया। सितम्बर, 1932 में गांधीजी तथा डॉक्टर अम्बेडकर के मध्य हुए पूना समझौते में साम्प्रदायिक पंचाट की दलितों को पृथक प्रतिनिधित्व की व्यवस्था को भंग कर सभी समुदायों के मतदाताओं द्वारा सुरक्षित स्थानों पर दलित प्रतिनिधि चुनने की व्यवस्था की गई। सरकार ने इस व्यवस्था को स्वीकार कर लिया।

14.4.4 तीसरी गोल मेज़ सभा

17 नवम्बर, 1932 से 24 दिसम्बर, 1932 तक तीसरी गोल मेज़ सभा का आयोजन हुआ। इसमें सरकार ने भारत के विभिन्न राजनीतिक दलों से विचार–विमर्श का महत्व नहीं दिया बल्कि सभी निर्णय स्वयं लेने का निश्चय किया गया। कांग्रेस ने इस सभा का बहिष्कार किया। मोहम्मद अली जिन्ना भी इसमें अनुपस्थित रहे और भारतीय शासकों ने खुद उपस्थित होने के स्थान पर अपने प्रतिनिधि भेजकर औपचारिकता पूरी कर ली। दो गोलमेज़ सभाओं अनुपस्थित सर जॉन साइमन इसमें उपस्थित थे। तेज बहादुर सप्रू ने प्रस्तावत संविधान तैयार करने में कांग्रेस की मांगों को महत्व देने का सुझाव दिया भारत सचिव सैमुअल होरे ने भारतीयों की आकांक्षाओं को ध्यान में रखकर ही संविधान के प्रारूप को तैयार करने का आश्वासन दिया परन्तु कुल मिलाकर इन तीनों गोलमेज़ सभाओं में साइमन कमीशन की संस्तुतियों पर ही अमल हुआ। 15 मार्च, 1933 को संविधान की रूपरेखा तैयार कर व्हाइट पेपर प्रकाशित किया गया। इसमें भारत में संघीय शासन की व्यवस्था की गई पर इसको लागू करने के लिए राज्यों को इसमें शामिल होने की शर्त भी थी। प्रान्तीय स्वायत्तता की स्थापना इसकी बड़ी उपलब्धि थी। इसमें केन्द्रीय तथा प्रान्तीय विधान सभाओं में उग्रवादियों पर नियन्त्रण रखने की व्यवस्था की गई थी। लॉर्ड लिनिलिथगो की अध्यक्षता में संयुक्त संसदीय समिति अक्टूबर, 1934 में पार्लियामेन्ट के समक्ष अपनी रिपोर्ट प्रस्तुत की। 19 दिसम्बर, 1934 को इसके आधार पर एक बिल प्रस्तुत किया गया जिसे दोनों सदनों ने बहुमत से पारित कर दिया और इसी के आधार पर 4 अगस्त, 1935 को गवर्नमेन्ट ऑफ इण्डिया एक्ट पारित हुआ।

स्वमूल्यांकन हेतु प्रश्न

निम्नलिखित विषयों पर संक्षिप्त टिप्पणी लिखिए:

1. (क) दूसरी गोलमेज़ सभा में गाधीजी की असफलता।

(ख) पूना समझौता।

2. नीचे लिखे प्रश्नों के उत्तर दीजिए।

(i) तीनों गोल मेज़ सभाओं के समय इंग्लैण्ड का प्रधानमन्त्री कौन था?

(ii) गोल मेज़ सभाओं के आयोजन के बाद भारत के संविधान की रूपरेखा से सम्बद्ध व्हाइट पेपर कब प्रकाशित हुआ था?

14.5 सार संक्षेप

साइमन कमीशन से व्याप्त असंतोष और डोमिनियन स्टेटस का वादा करके उसे पूरा न करना कांग्रेस के असंतोष का प्रमुख कारण था। सरकार ने यह स्पष्ट कर दिया कि भारत के राजनीतिक भविष्य का फैसला ब्रिटिश पार्लियामेन्ट करेगी न कि स्वयं भारतीय जनता। दिसम्बर, 1929 में लाहौर में हुऐ कांग्रेस के अधिवेशन में तत्कालीन अध्यक्ष जवाहर लाल नेहरू ने कांग्रेस का लक्ष्य पूर्ण स्वतन्त्रता घोषित कर दिया। गांधीजी ने पूर्ण स्वराज्य की प्राप्ति के उद्देश्य से साबरमती आश्रम से डांडी के समुद्र तट तक पद यात्रा कर दमनकारी नमक कानून तोड़कर 6 अप्रैल, 1930 को सविनय अवज्ञा आन्दोलन प्रारम्भ किया। इस आन्दोलन में महिलाओं की तथा उत्तर–पश्चिम सीमा प्रान्त में खान अब्दुल गफ्फ़ार खां की सराहनीय भूमिका रही। विदेशी व्यापार को इस आन्दोलन से भारी क्षति पहुंची और स्वदेशी उत्पादन में वृद्धि हुई। मार्च, 1931 के गांधी–इर्विन समझौते से सविनय अवज्ञा आन्दोलन स्थगित कर

दिया गया और गांधीजी कांग्रेस के प्रतिनिधि के रूप में दूसरी गोलमेज़ सभा में भाग लेने के लिए 1931 में लन्दन गए परन्तु उन्हें निराशा ही हाथ लगी। साम्प्रदायिकता की समस्या का कोई हल नहीं निकला।

1930, 1931 तथा 1932 में आयोजित तीन गोल मेज़ सभाओं में मूलतः साइमन कमीशन की संस्तुतियों पर ही अमल किया गया। फिर भी कुल मिलाकर सरकार को सुधार करने पड़े। 1935 के एक्ट में केन्द्र में उत्तरदायी सरकार की स्थापना नहीं की गई किन्तु प्रान्तों में उत्तरदायी सरकार की स्थापना कर दी गई।

14.6 पारिभाषिक शब्दावली

नमक कानूनः नमक कानून के अन्तर्गत नमक बनाने और उसको बेचने का एकाधिकार सरकार का था।

एकरसः नीरस, अपरिवर्तनीय।

एकला चलो रेः अकेले ही चलो।

खुदाई खिदमतगारः खान अब्दुल गफ़्फ़ार खां के अनुयायी जो अहिंसात्मक आन्दोलन कर भारत के लिए पूर्ण स्वराज्य प्राप्त करना चाहते थे।

आर्थिक मन्दीः 1929 से 1931 तक पूरे विश्व में आर्थिक मन्दी का दौर चला जिसके कारण गरीबी, भुखमरी और बेरोज़गारी फैल गई।

शेर की मांद में घुसनाः खुद दुश्मन के घर में घुसकर उस पर प्रहार करने का साहस करना।

अल्प संख्यकः ऐसे समुदाय जिनका कुल आबादी में कम भाग हो।

14.7 सन्दर्भ ग्रंथ

ताराचन्दः *भारतीय स्वतन्त्रता आन्दोलन का इतिहास* (भाग 4), नई दिल्ली, 1984

मजूमदार, आर0 सी0 (सम्पादक) – *स्ट्रगल फ़ॉर फ्रीडम*, बम्बई, 1969

चन्द्रा, बिपन – *नेशनलिज़्म एण्ड कोलोनियलिज़्म इन मॉडर्न इण्डिया*, नई दिल्ली, 1979

सिंह, अयोध्या – *भारत का मुक्ति संग्राम*, दिल्ली, 1977

आज़ाद, अबुल कलाम – *इण्डिया विन्स फ्रीडम*, बम्बई, 1959

सील, अनिल – *दि एमरजेन्स ऑफ़ इण्डियन नेशनलिज़्म*, कैम्ब्रिज, 1968

तेन्दुलकर, जी0 डी0 – *महात्मा*, भाग 2 तथा 3, बम्बई, 1965

नेहरू, जवाहर लाल – *एन आटोबायोग्राफ़ी*, लन्दन, 1936

सीतारमैया, पी0 – *हिस्ट्री ऑफ दि इण्डियन नेशनल कांग्रेस*, बम्बई, 1936

काश्यप, सुभाष – *भारत का सांविधानिक विकास और संविधान*, दिल्ली, 1997

14.8 स्व मूल्यांकित प्रश्नों के उत्तर

1. (क) देखिए 14.3.2 नमक कानून तथा डांडी यात्रा।
   (ख) देखिए 14.3.4 गांधी–इर्विन समझौता।
2. (i) नमक बनाने तथा उसको बेचने का एकाधिकार सरकार के पास था।

(ii) खान अब्दुल गफ़्फ़ार खां।

1. (क) देखिए 14.4.2 द्वितीय गोल मेज़ सभा।

(ख) देखिए 14.4.3 साम्प्रदायिक पंचाट तथा पूना समझौता।

2. (i) रैमज़े मैक्डोनाल्ड।

(ii) 15 मार्च, 1933 को।

14.9 अभ्यास प्रश्न

1. नमक कानून को अन्याय के प्रतीक के रूप में क्यों देखा जाता था?
2. प्रथम गोलमेज़ सभा का कांग्रेस ने बहिष्कार क्यों किया?
3. 'साम्प्रदायिक पंचाट हिन्दू समुदाय को विभाजित करने का एक षडयन्त्र था।' क्या आप इस कथन से सहमत हैं?
4. आर्थिक मन्दी ने भारत की अर्थव्यवस्था को किस प्रकार प्रभावित किया?

इकाई पन्द्रह : प्रत्यक्ष कार्यवाही दिवस, व्यक्तिगत सत्याग्रह एवं भारत छोड़ो आन्दोलन

15.1 प्रस्तावना

15.2 इकाई के उद्देश्य

15.3 व्यक्तिगत सत्याग्रह

15.3.1 व्यक्तिगत सत्याग्रह की पृष्ठभूमि

15.3.2 व्यक्तिगत सत्याग्रह का विकास

15.3.3 व्यक्तिगत सत्याग्रह का विरोध

15.4 क्रिप्स प्रस्ताव तथा भारत छोड़ो आन्दोलन

15.4.1 क्रिप्स प्रस्ताव

15.4.2 भारत छोड़ो आन्दोलन

15.5 प्रत्यक्ष कार्यवाही दिवस

15.5.1 प्रत्यक्ष कार्यवाही दिवस की पृष्ठभूमि

3.5.2 प्रत्यक्ष कार्यवाही दिवस के दुष्परिणाम

15.6 सार संक्षेप

15.7 पारिभाषिक शब्दावली

15.8 सन्दर्भ ग्रंथ

15.9 स्व मूल्यांकित प्रश्नों के उत्तर

15.10 अभ्यास प्रश्न

15.1 प्रस्तावना

1939 में द्वितीय विश्वयुद्ध में भारतीय राजनीतिक दलों से बिना विचार–विमर्श किए भारत को युद्ध में शामिल कर लिया गया था। इस निर्णय का विरोध करने के लिए 1940 में गांधीजी के निर्देशन में व्यक्तिगत सत्याग्रह प्रारम्भ किया गया जिसमें आन्दोलनकारी बिना शान्ति भंग किए अपना विरोध प्रदर्शन कर खुद को गिरफ़्तार करा लेते थे। परन्तु 1942 में भारत पर जापानी आक्रमण की सम्भावना प्रबल होने तथा क्रिप्स मिशन के असफल होने के बाद परिस्थितियां बदल गईं और गांधीजी के नेतृत्व में कांग्रेस ने अगस्त, 1942 में भारत को स्वतन्त्र कराने के उद्देश्य से भारत छोड़ो आन्दोलन प्रारम्भ किया। इस इकाई में आपको स्वतन्त्रता प्राप्ति हेतु भारतीयों की बढ़ती हुई महत्वाकांक्षाओं तथा पाकिस्तान की स्थापना के लिए अनुकूल वातावरण के विकसित होने की परिस्थितियों से अगवत कराया जाएगा।

पिछली इकाइयों में अंग्रेज़ों की फूट डालकर शासन करने की नीति तथा हिन्दू व मुस्लिम साम्प्रदायिकता के विकास की चर्चा की जा चुकी है। 16 अगस्त, 1946 को पाकिस्तान की स्थापना की मांग को लेकर मुस्लिम लीग द्वारा प्रत्यक्ष कार्यवाही दिवस अंग्रेज़ों की साम्प्रदायिक विघटन की नीति, हिन्दू–मुस्लिम पारस्परिक अविश्वास तथा मुस्लिम लीग की हठधर्मिता का परिणाम थी।

15.2 इकाई के उद्देश्य

इस इकाई में आपको एक ओर द्वितीय विश्वयुद्ध के प्रथम तीन वर्षों में हुई भारत की राजनीतिक गतिविधियों की मुख्यतः 1940, 1941 के व्यक्तिगत सत्याग्रह, 1942 के क्रिप्स मिशन तथा भारत छोड़ो आन्दोलन की और दूसरी ओर अगस्त, 1946 में पाकिस्तान की मांग को लेकर मुस्लिम लीग द्वारा प्रत्यक्ष कार्यवाही दिवस की जानकारी दी जाएगी। इस इकाई को पढ़कर आप जानेंगेः

- व्यक्तिगत सत्याग्रह के उद्देश्य तथा उसकी उपलब्धियां।
- क्रिप्स प्रस्ताव की परिस्थितियों, उसके मन्तव्यों तथा उस पर भारतीय राजनीतिक दलों की प्रतिक्रिया।
- भारत छोड़ो आन्दोलन की राष्ट्रीय आन्दोलन में महत्ता।
- प्रत्यक्ष कार्यवाही दिवस की पाकिस्तान की स्थापना में भूमिका।

15.3 व्यक्तिगत सत्याग्रह

15.3.1 व्यक्तिगत सत्याग्रह की पृष्ठभूमि

1939 में द्वितीय विश्व युद्ध प्रारम्भ होने से पहले ही ब्रिटिश सरकार ने यह तय कर लिया था कि वह भारत के राजनीतिक दलों से बिना विचार–विमर्श किए ही भारत को युद्ध में शामिल कर लेगी। कांग्रेस ने इस विषय में अपना विरोध पहले ही जता दिया था। ब्रिटिश भारतीय सरकार कांग्रेस के सम्भावित विरोध के दमन के लिए पहले से ही तैयारी कर रही थी। 1 सितम्बर, 1939 को विश्वयुद्ध प्रारम्भ हो गया। तुरन्त भारत के राजनीतिक दलों से बिना पूछे वाइसराय ने भारत को भी युद्ध में शामिल किए जाने की घोषणा कर दी। युद्धकालीन संकट को देखते हुए गवर्नर जनरल को भारत रक्षा अध्यादेश द्वारा अपरिमित शक्तियां प्रदान की गईं और एक प्रकार से प्रान्तों पर भी उसका कठोर नियन्त्रण स्थापित हो गया। 14 सितम्बर को कांग्रेस कार्यकारिणी ने स्पष्ट कर दिया कि वह किसी भी साम्राज्यवादी शक्ति का युद्ध में साथ नहीं देगी। कांग्रेस ने यह भी स्पष्ट किया कि युद्ध में भारतीय सहयोग प्राप्त करने के लिए ब्रिटिश सरकार को पहले सुधार करने पड़ेंगे और भारत को स्वतन्त्रता प्रदान करने की निश्चित तिथि भी घोषित करनी पड़ेगी। सरकार ने भारत को भविष्य में डोमिनियन स्टेटस दिए जाने का अपना पुराना वादा फिर से दोहरा दिया और रियायत के तौर पर भारतीयों की एक युद्ध सलाहकार समिति के गठन का प्रस्ताव रख दिया। कांग्रेस वर्किंग कमेटी ने अपना विरोध जताते हुए अक्टूबर, 1939 में अपने दल के मन्त्रिमण्डलों से त्यागपत्र देने के लिए कहा। फ़रवरी, 1940 में रामगढ़ में हुई बैठक में कांग्रस ने इंग्लैण्ड पर यह आरोप लगाया कि वह साम्राज्यवाद के पोषण हेतु युद्ध में भाग ले रहा है और इस कारण भारत युद्ध में उसका साथ नहीं देगा। जून, 1940 में जर्मनी ने फ़्रांस पर अधिकार कर लिया और इससे पूर्व ही इटली भी जर्मनी के साथ युद्ध में शामिल हो गया। कांग्रेस ने भारत

में एक अस्थायी राष्ट्रीय सरकार स्थापित किए जाने तथा भविष्य में भारत को स्वतन्त्र किए जाने की घोषणा की शर्त पर युद्ध में सहयोग करने का प्रस्ताव रखा परन्तु सरकार ने इसको ठुकरा दिया। सरकार किसी भी मूल्य पर भारतीयों को स्वतन्त्रता नहीं प्रदान करना चाहती थी और हर बार वह साम्प्रदायिक विवाद को उठाकर सुधार करने से बचने का बहाना ढूंढ़ लेती थी। इंग्लैण्ड के नए प्रधानमन्त्री विंसटन चर्चिल तथा नए भारत सचिव एल0 एस0 एमरी भारत को सुधार दिए जााने के खिलाफ़ थे। कांग्रेस ब्रिटिश शासन के प्रति विरोध करने के लिए आन्दोलन की तैयारी करने लगी। अगस्त प्रस्ताव में लॉर्ड लिनलिथगो ने घोषणा की –

1. युद्ध के बाद भारत के संविधान निर्माण के लिए संविधान सभा गठित की जाएगी।
2. वाइसराय की कार्यकारिणी परिषद में मनोनीत भारतीय सदस्यों को शामिल कर उसका विस्तार किया जाएगा।
3. युद्ध सलाहकार समिति में ब्रिटिश भारत तथा भारतीय रियासतों के प्रतिनिधियों को शामिल किया जाएगा।

लार्ड लिनलिथगो के 1940 के 'अगस्त प्रस्ताव' में युद्ध के बाद सुधार दिए जाने की बात कही गई थी जबकि कांग्रेस तुरन्त सुधार चाहती थी अतः कांग्रेस ने विश्वयुद्ध की परिस्थितियों में शासन व्यवस्था में बिना बाधा डाले हुए सरकार की हठधर्मिता का विरोध करने का निश्चय किया।

15.3.2 व्यक्तिगत सत्याग्रह का विकास

15 सितम्बर, 1940 को 'ऑल इण्डिया कांग्रेस वर्किंग कमेटी' ने गांधीजी को कांग्रेस की कमान सम्भालने की प्रार्थना की। गांधीजी ने इस समय सविनय अवज्ञा आन्दोलन किया जाना उचित नहीं समझा क्योंकि इससे सरकार की उलझनें बढ़ जातीं। उन्होंने व्यक्तिगत सत्याग्रह को वरीयता दी क्योंकि इससे सरकार के कार्य में कोई बाधा नहीं पड़ती और अपने विरोध का सन्देश भी सरकार तक पहुंच जाता। 27 सितम्बर, 1940 को गांधीजी ने वाइसराय से भेंट कर एक बार फिर राजनीतिक गतिरोध को खत्म करने का प्रयास किया परन्तु वाइसराय ने युद्ध के समाप्त होने से पहले कोई भी ठोस सुधार दिया जाना असम्भव बताया। अक्टूबर, 1940 के प्रथम सप्ताह के *हरिजन* के अंकों में गांधीजी ने सरकार द्वारा सुधार करने की सदाशयता पर सवाल उठाए। 11 अक्टूबर, 1940 को कांग्रेस अध्यक्ष मौलाना आज़ाद ने भारत की स्वतन्त्रता प्राप्ति के लिए गांधीजी की प्रेरणा से व्यक्तिगत सत्याग्रह की घोषणा की। 17 अक्टूबर 1940 को व्याक्तिगत आन्दोलन प्रारम्भ हुआ। व्यक्तिगत सत्याग्रह को कानूनी दायरे के भीतर ही चलाने की व्यवस्था की गई थी। यह एक जन–आन्दोलन न होकर अपने अधिकारों के प्रति सरकार को सचेत करने के लिए मात्र एक प्रतीकात्मक विरोध था। गांधीजी के निर्देशन में ही इस व्यक्तिगत सत्याग्रह का संचालन किया जाना था। शान्ति भंग करने का सत्याग्रहियों का कोई इरादा नहीं था। वो अपना सत्याग्रह प्रारम्भ करने से पूर्व ही पुलिस को सत्याग्रह के स्थान, उसके समय तथा अपने बारे में सूचना दे देते थे और पुलिस को चुपचाप बिना कोई विरोध किए खुद को गिरफ्तार करने देते थे। सरकार ने बड़ी संख्या में व्यक्तिगत सत्याग्रहियों को गिरफ्तार किया। व्यक्तिगत सत्याग्रह के अन्तर्गत खुद को गिरफ्तार कराने वाले पहले सत्याग्रही विनोबा भावे थे जिन्हें 21 अक्टूबर, 1940 को गिरफ़्तार किया गया। विनोबा जी ने गिरफ़्तार होने से पहले अपने भाषण में कहा कि भारत को उसकी मर्ज़ी के बगैर युद्ध में शामिल कर लिया गया है। इस सत्याग्रह के पहले चरण में विनोबा जी के बाद जवाहर लाल नेहरू ने खुद को गिरफ़्तार कराया। व्यक्तिगत सत्याग्रह के दूसरे चरण में 400 सत्याग्रहियों ने गिरफ़्तारियां दीं जिनमें चक्रवर्ती राजगोपालाचारी, मौलाना आज़ाद तथा सरदार पटेल प्रमुख थे। व्यक्तिगत सत्याग्रह का तीसरा चरण जनवरी, 1941 से अप्रैल, 1941 तक चला जिसमें 2200 सत्याग्रहियों को जेल भेजा गया। व्यक्तिगत सत्याग्रह के चौथे चरण में रबीन्द्रनाथ टैगोर ने ब्रिटिश निरंकुश एवं दमनकारी शासन की कटु आलोचना की और इस आन्दोलन को एक नैतिक विरोध की संज्ञा दी। इस चौथे चरण में 20000 आन्दोलनकारियों ने खुद को गिरफ़्तार कराया। कांग्रेस से बाहर रहते हुए सर तेजबहादुर सप्रू ने भारत सचिव एमरी से इस दमनकारी नीति का परित्याग करने का अनुरोध किया परन्तु एमरी ने 22 अप्रैल, 1941 को हाउस ऑफ कॉमन्स में कांग्रेस पर यह आरेप लगाया कि वह भारतीयों को स्वशासन प्रदान किए जाने के मार्ग में बाधाएं खड़ी कर रही है। गांधीजी ने एमरी के वक्तव्य को भारतीय बुद्धिमत्ता का अपमान बताया और सरकार को भारतीय राजनीतिक दलों में फूट डालने का दोषी बताते हुए उसे कांग्रेंस तथा मुस्लिम लीग के आपसी विवाद में टांग अड़ाने से बाज़ आने को कहा।

15.3.3 व्यक्तिगत सत्याग्रह का विरोध

रूस पर जर्मन विजय से विश्वयुद्ध में भारतीय सहयोग की और अधिक महत्ता हो गई थी। जनवरी, 1941 में संयुक्त राज्य अमेरिका के राष्ट्रपति रूजवेल्ट द्वारा चार स्वतन्त्रताओं की घोषणा की थी और 14 अगस्त, 1941 को अट्लांटिक चार्टर की घोषणा की गई थी जिनमें साम्राज्य विस्तार की नीति को नकारा गया और प्रत्येक राष्ट्र द्वारा अपनी शासन प्रणाली को चुनने के अधिकार को मान्यता दी गई थी। परन्तु भारत सचिव एमरी ने यह स्पष्ट कर दिया था कि अटलांटिक चार्टर भारत पर लागू नहीं हो सकता। 1941 के अन्त तक 25000 व्यक्तिगत सत्याग्रही जेलों में बन्द थे। अब तक जापान भी जर्मनी और इटली के साथ युद्ध में शामिल हो चुका था। कांग्रेस में एक बड़ा वर्ग गांधीजी की कानून की हद में रहते हुए सत्याग्रह करने की नीति का विरोध करने लगा था। 15 दिसम्बर 1941 को गांधीजी ने कांग्रेस के नेतृत्व से किनारा कर लिया और सरकार ने अनेक व्यक्तिगत सत्याग्रहियों को मुक्त कर दिया। इस प्रकार व्यक्तिगत सत्याग्रह दिसम्बर 1941 में स्वतः समाप्त हो गया।

स्व मूल्यांकन हेतु प्रश्न

निम्नलिखित विषयों पर संक्षिप्त टिप्पणी लिखिए:

1. (क) कांग्रेस द्वारा व्यक्तिगत सत्याग्रह प्रारम्भ किए जाने का औचित्य।

(ख) सरकार को सुधार देने के लिए बाध्य करने में व्यक्तिगत सत्याग्रह की असफलता।

2. नीचे लिखे प्रश्नों के उत्तर दीजिए।

(i) व्यक्तिगत सत्याग्रह के अन्तर्गत पहली गिरफ़्तारी किसने दी?

(ii) क्या व्यक्तिगत सत्याग्रहियों ने कानून व्यवस्था में बाधा पहुंचाई?

15.4 क्रिप्स प्रस्ताव तथा भारत छोड़ो आन्दोलन

15.4.1 क्रिप्स प्रस्ताव

ब्रिटिश सरकार विश्वयुद्ध के दौरान भारतीयों का सहयोग चाहती थी। अगस्त, 1940 में लॉर्ड लिनलिथगो ने युद्ध के बाद संवैधानिक सुधार का प्रस्ताव रखा जिसे कांग्रेस ने अस्वीकार कर दिया। 7 दिसम्बर, 1941 को जापान के युद्ध में शामिल होने के बाद दक्षिण–पूर्वी एशिया में युद्ध का विस्तार हो गया और रंगून पर जापानी अधिकार के बाद भारत पर जापानी आक्रमण का संकट खड़ा हो गया। अब सरकार हर मूल्य पर युद्ध में भारतीय सहयोग की इच्छुक थी। संयुक्त राज्य अमेरिका भी अब युद्ध में शामिल हो चुका था। विश्वयुद्ध में शामिल होने से पहले ही संयुक्त राज्य अमेरिका के राष्ट्रपति रूज़वेल्ट ने 6 जनवरी, 1941 को चार स्वतन्त्रताओं की घोषणा की थी। इनमें अभिव्यक्ति, अपने ढ़ंग से धार्मिक उपासना करने, दरिद्रता और भय से स्वतन्त्रता शामिल थीं। रूजवेल्ट व ब्रिटिश प्रधानमंत्री चर्चिल ने 14 अगस्त, 1941 को अट्लांटिक चार्टर की घोषणा की। इसमें साम्राज्य विस्तार की नीति को नकारा गया था और प्रत्येक राष्ट्र द्वारा अपनी शासन प्रणाली को चुनने के अधिकार को मान्यता दी गई थी। अब अमेरिका और चीन जैसे राष्ट्र भारत में सुधार के लिए ब्रिटिश सरकार पर दबाव डाल रहे थे। दिसम्बर, 1941 में कांग्रेस वर्किंग कमेटी ने बारदोली में हुई बैठक में विश्वयुद्ध में सहयोग देने की अपनी यह शर्त रखी कि भारत को एक लोकतान्त्रिक स्वतन्त्र शक्ति के रूप में मान्यता दी जाय। जनवरी, 1942 में 'ऑल इण्डिया कांग्रेस कमेटी ने इस प्रस्ताव पर अपनी स्वीकृति दे दी। सर तेजबहादुर सप्रू सहित 12 प्रमुख राजनीतिज्ञों ने इंग्लैण्ड के प्रधानमन्त्री विन्सटन चर्चिल से अनुरोध किया कि वह भारत में तुरन्त वाइसराय की कार्यकारी परिषद को राष्ट्रीय सरकार में परिवर्तित कराने तथा प्रान्तीय स्वायत्तता को पुनर्स्थापित कराने की व्यवस्था करें। चीन के राष्ट्रपति च्यांग काइ शेक ने फ़रवरी, 1942 में भारत का दौरा कर जवाहर लाल नेहरू, कांग्रेस के तत्कालीन अध्यक्ष मौलाना आज़ाद तथा गांधीजी से भेंट करके भारत की स्वतन्त्रता की मांग का ज़ोरदार समर्थन किया और ग्रेट ब्रिटेन से यह अपील की कि वह यथा शीघ्र भारत को स्वशासन प्रदान कर दे। उन्होंने राष्ट्रपति रूज़वेल्ट को भेजे सन्देश में कहा कि यदि हम भारत को सुधार नहीं देते हैं तो हम उसे हमारे हमारे दुश्मनों के साथ मिलने की खुली छूट दे देंगे। इन परिस्थितियों में सुधार के लिए किंचित भी सहमत न होते हुए इंग्लैण्ड के प्रधानमन्त्री विन्सटन चर्चिल को नए सुधारों का प्रस्ताव लेकर मार्च, 1942 में सर स्टैफ़र्ड क्रिप्स के नेतृत्व में क्रिप्स मिशन को भारत भेजना पड़ा।

क्रिप्स मिशन में प्रस्तावित सुधार 1940 के अगस्त प्रस्ताव से अधिक व्यापक थे। अगस्त, 1940 के लिनलिथगो के प्रस्ताव में कांग्रेस की पूर्ण स्वराज की मांग को अस्वीकार कर दिया था जबकि क्रिप्स मिशन में युद्ध के बाद भारत को डोमिनियन स्टेटस देने व संविधान निर्माण के लिए संविधान परिषद की बात की गई थी। ब्रिटिश सरकार ने कांग्रेस की यह मांग मानने से इंकार कर दिया कि वास्तविक शक्ति तत्काल भारत को सौंपी जाए। इस प्रस्ताव में सुधारों को युद्ध के बाद लागू करने की बात की गई थी। कांग्रेस अटलांटिक चार्टर के अनुसार भारत के लिए स्वतन्त्रता चाहती थी जबकि क्रिप्स मिशन इसके लिए तैयार नहीं था। इन प्रस्तावों में पाकिस्तान की स्थापना की कोई बात नहीं थी जो कि मुस्लिम लीग की प्रमुख मांग थी। मिशन में सुधारों को लागू किए जाने की एक बड़ी शर्त थी और वह यह थी कि इन सुधारों को तभी लागू किया जा सकता था जबकि सभी राजनीतिक दल के सर्वसम्मति से इन्हें स्वीकार करें। प्रस्तावों को सर्वसम्मति से सभी पार्टियों द्वारा स्वीकार करने पर ही लागू करने की शर्त मुस्लिम लीग को स्वीकार्य नहीं थी। कांग्रेस, मुस्लिम लीग का पारस्परिक विरोध, सर्व–सम्मति से प्रस्तावों का माना जाना असंभव बना रहा था। सभी राजनीतिक दलों ने इस मिशन के प्रस्तावों को खारिज कर दिया। इसे 'पोस्ट–डेटेड चैक' की संज्ञा दी गई। गांधीजी ने क्रिप्स से कहा कि यदि उनके पास यही प्रस्ताव हैं तो बेहतर होगा कि वह लौटती उड़ान से स्वदेश लौट जाएं। क्रिप्स ने कांग्रेस पर राजनीतिक गतिरोध उत्पन्न करने का तथा अल्पसंख्यकों पर बहुसंख्यकों की मर्ज़ी थोपने की कोशिश करने का आरोप लगाया। जवाहर लाल नेहरू के क्रिप्स के साथ मैत्रीपूर्ण सम्बन्ध थे उन्होंने उसके ब्रिटिश साम्राज्यवाद का मोहरा बनने पर दुख प्रकट करते हुए उसे शैतानों की वकालत करने वाला कहा। क्रिप्स मिशन अपने लक्ष्य में असफल रहा परन्तु वास्तव में ब्रिटिश सरकार चीन तथा अमेरिका को सन्तुष्ट करने के लिए सुधार का दिखावा कर रही थी। भारतीयों को सत्ता सौंपने का उसका कोई इरादा नहीं था और वह अपने तात्कालिक लक्ष्य अर्थात् अपने सहयोगी राष्ट्रों के समक्ष भारत में सुधार करने की पहल करने का श्रेय लेने में काफ़ी हद तक सफल रहा।

15.4.2 भारत छोड़ो आन्दोलन

क्रिप्स मिशन की असफलता और भारत पर जापानी आक्रमण के संकट के कारण भारतीयों में भय और आक्रोश का संचार हुआ। 1942 के प्रारम्भ में जापान ने भारतीय बन्दरगाहों पर गोलीबारी की। अब कांग्रेस की दृष्टि में भारत में ब्रिटिश शासन भारत की सुरक्षा में अक्षम हो गया था। जापान की भारत से कोई शत्रुता नहीं थी बल्कि उसके भारत से एक हज़ार वर्ष से भी पुराने मधुर सम्बन्ध थे, वह तो भारत पर केवल इसलिए हमला करना चाहता था क्योंकि उस पर अंग्रेज़ों का अधिकार था। इस तरह भारत में ब्रिटिश शासन खुद भारत के लिए खतरा बनता जा रहा था। कांग्रेस का विचार था कि जापान के आक्रमण की संभावना को रोकने के लिए अंग्रेजों का भारत छोड़ना आवश्यक था इन परिस्थितियों में भारत में ब्रिटिश शासन के बने रहने का कोई औचित्य नहीं रह जाता था। इलाहाबाद में 29 अप्रैल से 2 मई, 1942 तक चली अखिल भारतीय कांग्रेस कमेटी की बैठक में गांधीजी ने यह सुझाव दिया कि अंग्रेज़ों को भारत छोड़ने के लिए कहा जाए और जापान द्वारा भारत पर आक्रमण किए जाने की स्थिति में अहिंसात्मक आन्दोलन द्वारा उन्हें भी भारत छोड़ने के लिए बाध्य किया जाए। कांग्रेस कमेटी ने उनका सुझाव स्वीकृत कर लिया और एक बार फिर कांग्रेस के नेतृत्व का दायित्व गांधीजी के कन्धों पर आ गया। अपने पत्र *हरिजन* में गांधीजी ने स्पष्ट किया कि वह जापान के सहयोग लेकर अंग्रेज़ों को भारत से नहीं हटाना चाहते हैं। उन्होंने अपने आन्दोलन को न्याय संगत ठहराने के उद्देश्य से रूज़वेल्ट तथा च्यांग काइ शेक को स्पष्टीकरण के पत्र लिखे। 8 अगस्त, 1942 को कांग्रेस ने बम्बई में भारत छोड़ो आन्दोलन की घोषणा की। गांधीजी ने कांग्रेस के प्रतिनिधियों को सम्बोधित करते हुए 8 अगस्त, 1942 की रात्रि में दिए गए व्याख्यान में कहा –

अगर हो सके तो तत्काल, इसी रात, प्रभात से पहले मैं स्वाधीनता चाहता हूँ। आज दुनिया में झूठ और मक्कारी का बोलबाला है। आप मेरी बात पर भरोसा कर सकते हैं कि मैं मंत्रिमंडल या ऐसी दूसरी वस्तुओं के लिए वायसराय से सौदा करने वाला नहीं हूँ। मैं पूर्ण स्वाधीनता से कम किसी चीज़ से संतुष्ट होने वाला नहीं हूँ। अब मैं आपको एक छोटा सा मंत्र दे रहा हूँ। आप इसे अपने दिलों में संजोकर रख लें और हर एक सांस में जाप करें। वह मंत्र है – 'करो या मरो'। हम या तो भारत को स्वतन्त्र कराएंगे या इस प्रयास में मारे जाएंगे; मगर हम अपनी पराधीनता को

देखते रहने के लिए जीवित नहीं रहेंगे।

गांधीजी ने आन्दोलन में हिन्दू–मुस्लिम एकता और अहिंसा पर बल दिया। उन्होंने सरकारी कर्मचारियों, सैनिकों और छात्रों को आन्दोलन में सम्मिलित होने के लिए प्रेरित किया। भारत छोड़ो आन्दोलन 9 अगस्त से प्रारम्भ होना था परन्तु इससे पहले की रात को ही गांधीजी सहित कांग्रेस के प्रमुख नेताओं को बंदी बना लिया गया। बिना प्रमुख नेताओं के ही यह आन्दोलन प्रारम्भ हुआ। इसमें संगठन और अनुशासन का अभाव था। कुशल नेतृत्व के अभाव में एक प्रकार से यह दिशाहीन हो गया था। इस आन्दोलन में छात्रों ने महत्वपूर्ण भूमिका निभाई। हजारों स्थानों पर जुलूस निकाले गए, हड़तालें हुई और गिरफ़्तारियां दी गईं। आन्दोलन का नेतृत्व युवाओं के हाथ में आ गया। जय प्रकाश नारायण, राममनोहर लोहिया, अच्युत पटवर्धन और अरुणा आसफ़अली ने आन्दोलन को क्रांतिकारी स्वरूप प्रदान किया। आन्दोलन की प्रकृति अहिंसक नहीं रही। अनेक स्थानों पर रेलवे स्टेशनों, रेल की पटरियो तथा पुलों को क्षति पहुंचाई गई, पोस्ट ऑफिस सहित 749 सरकारी इमारतों, 525 सार्वजनिक भवनों, 208 पुलिस थानों आदि पर हमले किए गए। बिहार तथा संयुक्त प्रान्त के पूर्वी भाग में स्थिति नियन्त्रण से बाहर हो गई। संयुक्त प्रान्त के बलिया जिले में जेल तोड़ कर बन्दियों को मुक्त कर दिया गया और कुछ दिन समानान्तर सरकार के रूप में वहां पंचायती राज रहा। बंगाल के मिदनापुर जिले के तामलोक में भी समानान्तर सरकार की स्थापना की गई। बम्बई प्रान्त में सतारा में सबसे अधिक समय तक समानान्तर सरकार चली। मध्य प्रान्त में अष्टी तथा चिमूर इस आन्दोलन से प्रभावित रहे तथा मद्रास प्रान्त में रेनुगुन्टा व बेज़वाडा के मध्य 130 मील रेल की पटरियां उखाड़ दी गईं। सरकार द्वारा कांग्रेस समितियों पर प्रतिबन्ध लगा दिया गया। प्रेस की स्वतन्त्रता पर आघात किया गया। सरकार विरोधी सामग्री छापने वाले पत्रों के प्रकाशन पर रोक लगा दी गई। पुलिस तथा सेना ने क्रूरता पूर्वक इस आन्दोलन का दमन किया। बन्दूकों और मशीनगनों से गोलीबारी, लाठी चार्ज, गिरफ़्तारियों, संपत्तियों का जब्त किया जाना, घरों को नष्ट किया जाना, भारी जुर्माना लगाना, कोड़े लगाना, स्त्रियों का अपमान करना आदि ऐसे कार्य थे जिनके कारण 1942 के अन्त तक व्यवहारिक दृष्टि से इस आन्दोलन का दमन कर दिया गया। गृह विभाग के आंकड़ों के अनुसार इस आन्दोलन में पुलिस ने 601 बार गोलीबारी की तथा इसमें 763 लोग मारे गए। पहली बार जन–आन्दोलन के दमन में सरकार ने सेना का प्रयोग किया था।

इस आन्दोलन को कम्यूनिस्टों तथा मुस्लिम लीग का सहयोग नहीं मिला। मुस्लिम लीग ने भारत छोड़ो आन्दोलन के जवाब में पाकिस्तान की मांग को लेकर 'डिवाइड एण्ड क्विट' आन्दोलन शुरू किया। मित्र राष्ट्रों ने भी इसे धुरी–शक्तियों के हाथ मजबूत करने का षड़यंत्र बताया परन्तु अमेरिका अभी भी भारतीय स्वतन्त्रता संग्राम के साथ सहानुभूति रख रहा था। भारत छोड़ो आन्दोलन भारत को स्वतन्त्र करने के लक्ष्य को पूरा न कर सका फिर भी इसे पूर्ण रूपेण असफल नहीं कहा जा सकता। ब्रिटिश भारतीय सरकार को ठोस सुधारों की पहल करनी पड़ी। 5 वर्ष के बाद भारत की स्वतन्त्रता दिए जाने में निश्चित रूप से इसका योगदान था। यह भारतीय स्वतन्त्रता संग्राम का अंतिम जन–आन्दोलन था।

स्वमूल्यांकन हेतु प्रश्न

निम्नलिखित विषयों पर संक्षिप्त टिप्पणी लिखिए:

1. (क) राष्ट्रपति रूज़वेल्ट तथा च्यांग काइ शेक का भारत में सुधार के लिए ब्रिटिश सरकार पर दबाव।

(ख) गांधीजी द्वारा भारत छोड़ो आन्दोलन की घोषणा।

2. नीचे लिखे प्रश्नों के उत्तर दीजिए।

(i) भारत में सुधार लागू करने के लिए राजनीतिक दलों के समक्ष क्रिप्स मिशन में क्या शर्त रखी गई थी?

(ii) उस स्थान का नाम बताइए जहां भारत छोड़ो आन्दोलन के दौरान समानान्तर सरकार सबसे लम्बी अवधि तक चली थी।

15.5 प्रत्यक्ष कार्यवाही दिवस

15.5.1 प्रत्यक्ष कार्यवाही दिवस की पृष्ठभूमि

1937 तक साम्प्रदायिक भावना मुख्य रूप से शहरों में सीमित थी। 1937 में कांग्रेस–मुस्लिम लीग गठबन्धन

टूटने से पूरे देश में हिन्दू–मुस्लिम तनाव बढ़ गया। 1937 के चुनाव में असफल मुस्लिम लीग तथा हिन्दू महा सभा ने साम्प्रदायिक तनाव बढ़ाने का प्रयास किया। सरकार ने फूट डालो और राज करो के अन्तर्गत मुस्लिम लीग को मुस्लिम समुदाय का एकमात्र प्रतिनिधि मान लिया था। 1940 में मुहम्मद अली जिन्ना के नेतृत्व में मुस्लिम लीग ने पाकिस्तान की स्थापना की मांग की गई थी। जब कांग्रेस ने अगस्त 1942 में भारत छोड़ो आन्दोलन प्रारम्भ किया तो मुस्लिम लीग ने इसके जवाब में पाकिस्तान की मांग को लेकर 'डिवाइड एण्ड क्विट' आन्दोलन शुरू किया। विश्वयुद्ध के दौरान हिन्दू–मुस्लिम सम्बन्धों में लगातार वैमनस्य रहा। 1945 की शिमला कॉन्फ्रेन्स में भी पाकिस्तान की मांग को लेकर गतिरोध बना रहा। 1946 के कैबिनेट मिशन में विभाजन को रोकने का अन्तिम प्रयास किया गया और इसके लिए भारत को एक बड़े हिन्दू बहुमत वाले क्षेत्र तथा दो छोटे मुस्लिम बहुमत वाले मण्डलों में बांटने का प्रस्ताव किया। कैबिनेट मिशन की सिफ़ारिशों के आधार पर जुलाई 1946 में संविधान सभा के चुनावों में देश को तीन मण्डलों में विभाजित किया गया था। प्रथम मण्डल में मद्रास, बम्बई, उड़ीसा, संयुक्त प्रान्त, मध्य प्रान्त और बिहार थे। इसमें कांग्रेस को 162 सामान्य तथा 2 मुस्लिम स्थानों पर विजय मिली, मुस्लिम लीग को 19 स्थान मिले। दूसरे मण्डल में पंजाब, उत्तर–पश्चिम सीमा प्रान्त, सिंध तथा बलूचिस्तान थे। इसमें कांग्रेस को 7 सामान्य तथा 2 मुस्लिम स्थान मिले और मुस्लिम लीग को 19 स्थान मिले। तीसरे मण्डल में जिसमें बंगाल तथा आसाम थे, उसमें कांग्रेस को 32 और मुस्लिम लीग को 35 स्थान मिले। 292 सीटों पर चुनाव हुआ जिसमें कांग्रेस को 201 तथा मुस्लिम लीग को 73 स्थान मिले। कांग्रेस ने सामान्य स्थानों में 9 को छोड़कर सब पर विजय प्राप्त की और मुस्लिम लीग ने 5 को छोड़कर मुसलमानों के लिए आरक्षित सभी स्थानों पर विजय प्राप्त की। वाइसराय वेवेल ने एक कार्यवाहक सरकार को 4 जुलाई, 1946 को शपथ दिला दी थी किन्तु वह विभिन्न राजनीतिक दलों की एक लोकप्रिय सरकार का गठन करना चाहता था। 14 सदस्यों के मन्त्रिमण्डल में 6 स्थान कांग्रेस को तथा 5 स्थान मुस्लिम लीग को मिलने थे। शेष 3 अन्य अल्प संख्यकों के लिए रखे गए थे जिनकी नियुक्ति वाइसराय को करनी थी। जवाहर लाल नेहरू ने कांग्रेस की ओर से वाइसराय को संवैधानिक प्रमुख के रूप में कार्य करने की शर्त पर वाइसराय का निमन्त्रण स्वीकार कर लिया परन्तु मुस्लिम लीग ने यह निमन्त्रण पहले स्वीकार करके फिर इसे अस्वीकार कर दिया। जवाहर लाल नेहरू ने जिन्ना को अन्तरिम सरकार में शामिल होने का अनुरोध किया, दोनों नेता बम्बई में 15 अगस्त, 1946 को मिले किन्तु उनकी बातचीत का कोई हल नहीं निकला।

16 अगस्त, 1946 को मुस्लिम लीग ने भारतीय मुसलमानों की पाकिस्तान की मांग को स्वीकार न किए जाने को अंग्रेज़ सरकार का अन्याय और कांग्रेस की साज़िश बताया। मुहम्मद अली जिन्ना द्वारा इस दिन भारतीय मुसलमानों के साथ होने वाले अन्याय के विरोध में प्रत्यक्ष कार्यवाही दिवस की घोषणा की गई। प्रत्यक्ष कार्यवाही दिवस की व्याख्या करते हुए 'ऑल इण्डिया जमैतुल उलमा–ए–इस्लाम' के अध्यक्ष शब्बीर अहमद उस्मानी ने कहा–

वाइसराय तथा कैबिनेट मिशन कांग्रेस के साथ मिलकर अपने पुराने वादे से पीछे हट रहे हैं। इसके कारण भारत के 10 करोड़ मुसमानों को साहस कर के सीधी कार्यवाही के लिए आगे आना पड़ रहा है ताकि दुनिया को पता चल जाए कि अपने लक्ष्य को पाने के लिए मुसलमान किस हद तक बलिदान दे सकते हैं और अपनी बात से मुकरने वाले उनके विरोधियों को वो अपनी गतिविधियों के माध्यम से एक सबक सिखाना चाहते हैं।

साम्प्रदायिक वैमनस्य, असहिष्णुता तथा संकुचित दृष्टिकोण ने घृणा, अलगाव तथा अनियन्त्रित आक्रोश को बढ़ावा दिया और भारत के एकीकरण के प्रयास को सदियों पीछे ढकेल दिया।

15.5.2 प्रत्यक्ष कार्यवाही दिवस के दुष्परिणाम

16 अगस्त, 1946 के इस प्रत्यक्ष कार्यवाही दिवस पर विरोध हेतु सभाओं का आयोजन हुआ। मुसलमानों ने सविनय अवज्ञा आन्दोलन तथा द्वितीय विश्वयुद्ध के दौरान सरकार को पूर्ण सहयोग दिया था और सरकार उनके द्वारा उठाई गई पाकिस्तान की मांग को अस्वीकार करके यह चाहती थी कि वो कांग्रेस के नेतृत्व वाली अन्तरिम सरकार में शामिल हो जाएं। शब्बीर अहमद उस्मानी ने इसे मुसलमानों के लिए आर या पार का धर्मयुद्ध कहा। या तो मुसलमान इसमें विजयी होकर ग़ाज़ी कहलाएंगे या इसमें लड़ते–लड़ते मरकर शहीद हो जाएंगे। मुस्लिम लीग के नेतृत्व वाली बंगाल की सरकार के प्रधानमन्त्री शहीद सुहरावर्दी ने इस दिन अवकाश की घोषणा कर दी जिसके

कारण और भी अधिक लोग जमा हो गए। इस प्रत्यक्ष कार्यवाही दिवस पर कलकत्ते में हड़ताल रही और फिर साम्प्रदायिक दंगे भड़क उठे। अराजकतावादी तत्वों ने स्थिति को और बिगाड़ दिया। चार दिनों तक कलकत्ते में विनाशलीला चलती रही और पुलिस बिलकुल नाकाम तथा उदासीन रही। सेना बुलाए जाने बाद 20 अगस्त को स्थिति नियन्त्रण में आ पाई। कलकत्ते के दंगे में लगभग 5000 लोग मारे गए और 15000 घायल हुए। सम्पत्ति के नुक्सान का तो आकलन करना भी कठिन था। साम्प्रदायिक दंगों की आग टिपेरा तथा नोआखाली जिलों भी फैल गई। बिहार में छपरा और पटना में भी साम्प्रदायिक दंगे हुए। संयुक्त प्रान्त में गढ़मुक्तेश्वर में दंगे हुए जिसमें लगभग 10000 लोग मारे गए। पंजाब में लाहौर, अमृतसर, मुल्तान और रावलपिण्डी में तथा सिंध में कराची में भयंकर साम्प्रदायिक दंगे हुए। कांग्रेस ने बंगाल के दंगों के लिए सुहरावर्दी की सरकार तथा मुस्लिम लीग को ज़िम्मेदार ठहराया। जिन्ना ने इसके लिए कांग्रेस को दोषी ठहराया। कांग्रेस पर आरोप लगाया गया कि सरकार की दृष्टि में मुस्लिम लीग को गिराने सरकार द्वारा भारत विभाजन न करने के अपने फैसले पर पुनर्विचार न किए जाने के उद्देश्य से उसने दंगे भड़काए थे।

अगस्त, 1946 से अक्टूबर 1946 तक स्थिति अत्यन्त तनावपूर्ण रही। 13 अक्टूबर, 1946 को मुस्लिम लीग ने अन्तरिम सरकार में शामिल होने का निर्णय लिया किन्तु उसकी पाकिस्तान स्थापित किए जाने की मांग पूर्ववत बनी रही। भारत के विभाजन तथा पाकिस्तान की स्थापना की चर्चा अन्य इकाई में की जाएगी।

स्वमूल्यांकन हेतु प्रश्न

निम्नलिखित विषयों पर संक्षिप्त टिप्पणी लिखिए:

1. (क) मुस्लिम लीग द्वारा पाकिस्तान की मांग।

(ख) प्रत्यक्ष कार्यवाही दिवस के कारण साम्प्रदायिक दंगे।

2. नीचे लिखे प्रश्नों के उत्तर दीजिए।

(i) प्रत्यक्ष कार्यवाही दिवस किस दिन घोषित किया गया?

(ii) अगस्त 1946 में बंगाल का प्रधानमन्त्री कौन था?

15.6 सार संक्षेप

1 सितम्बर, 1939 को प्रारम्भ हुए विश्वयुद्ध में भारत के राजनीतिक दलों से बिना पूछे वाइसराय ने भारत को भी युद्ध में शामिल किए जाने की घोषणा कर दी। अक्टूबर, 1939 में इसके विरोध में कांग्रेस मन्त्रिमण्डलों ने त्यागपत्र दे दिया। 1940 का व्यक्तिगत सत्याग्रह एक जन–आन्दोलन न होकर अपने अधिकारों के प्रति सरकार को सचेत करने के लिए मात्र एक प्रतीकात्मक विरोध था।

दिसम्बर, 1941 में जापान के युद्ध में शामिल होने के बाद भारत पर जापानी आक्रमण का संकट खड़ा हो गया। अब सरकार हर मूल्य पर युद्ध में भारतीय सहयोग की इच्छुक थी। मार्च, 1942 में सर स्टैफ़र्ड क्रिप्स के नेतृत्व में क्रिप्स मिशन को भारत भेजा गया। मिशन में सुधारों को लागू किए जाने की एक बड़ी शर्त यह थी कि इन सुधारों को तभी लागू किया जा सकता था जबकि सभी राजनीतिक दल के सर्वसम्मति से इन्हें स्वीकार करें। सभी राजनीतिक दलों ने इस मिशन के प्रस्तावों को खारिज कर दिया।

क्रिप्स मिशन की असफलता और भारत पर जापानी आक्रमण के परिप्रेक्ष्य में 8 अगस्त, 1942 को कांग्रेस ने भारत छोड़ो आन्दोलन की घोषणा की। गांधीजी सहित कांग्रेस के प्रमुख नेताओं को बंदी बना लिया गया। इस आन्दोलन में छात्रों ने महत्वपूर्ण भूमिका निभाई। जय प्रकाश नारायण, राममनोहर लोहिया, अच्युत पटवर्धन और अरुणा आसफ़अली ने आन्दोलन को क्रांतिकारी स्वरूप प्रदान किया। आन्दोलन की प्रकृति अहिंसक नहीं रही। पुलिस तथा सेना ने क्रूरता पूर्वक इस आन्दोलन का दमन किया। इस आन्दोलन का कम्यूनिस्टों तथा मुस्लिम लीग ने विरोध किया।

1940 में मुहम्मद अली जिन्ना के नेतृत्व में मुस्लिम लीग ने पाकिस्तान की स्थापना की मांग की गई थी। 16 अगस्त, 1946 को मुस्लिम लीग ने भारतीय मुसलमानों की पाकिस्तान की मांग को लेकर प्रत्यक्ष कार्यवाही दिवस की घोषणा की। कलकत्ते से प्रारम्भ हुए साम्प्रदायिक दंगों की आग बंगाल, बिहार, संयुक्त प्रान्त, पंजाब तथा सिंध

तक फैल गई। प्रत्यक्ष कार्यवाही दिवस ने पाकिस्तान की स्थापना की पृष्ठभूमि तैयार कर दी।

15.7 पारिभाषिक शब्दावली

हठधर्मिताः ज़िद।

सर्वसम्मतिः सबकी राय से लिया गया निर्णय अर्थात् ऐसा निर्णय जिस पर सभी सहमत हों।

पोस्ट डेटेड चैकः ऐसा आश्वासन जिसका क्रियान्वयन बहुत बाद में हो।

समानान्तर सरकारः सरकार से हटकर अपनी शासन व्यवस्था स्थापित करना।

डिवाइड एण्ड क्विटः पहले विभाजित करो फिर देश छोड़ो अर्थात् अंग्रेज़ भारत छोड़ने से पहले भारत का विभाजन कर दें।

ग़ाज़ीः विधर्मियों का नाश करने वाला।

15.8 सन्दर्भ ग्रंथ

ताराचन्दः *भारतीय स्वतन्त्रता आन्दोलन का इतिहास* (भाग 4), नई दिल्ली, 1984

मजूमदार, आर0 सी0 (सम्पादक) – *स्ट्रगल फ़ॉर फ्रीडम*, बम्बई, 1969

चन्द्रा, बिपन – *आधुनिक भारत में साम्प्रदायिकता*, दिल्ली, 1998

सिंह, अयोध्या – *भारत का मुक्ति संग्राम*, दिल्ली, 1977

आज़ाद, अबुल कलाम – *इण्डिया विन्स फ्रीडम*, बम्बई, 1959

सील, अनिल – *दि एमरजेन्स ऑफ़ इण्डियन नेशनलिज़्म*, कैम्ब्रिज, 1968

तेन्दुलकर, जी0 डी0 – *महात्मा*, भाग 2, बम्बई, 1965

नेहरू, जवाहर लाल – *एन आटोबायोग्राफ़ी*, लन्दन, 1936

सीतारमैया, पी0 – *हिस्ट्री ऑफ दि इण्डियन नेशनल कांग्रेस*, बम्बई, 1936

हचिन्स, एल0 – *स्पॉन्टेनियस रिवोल्यूशन*, दिल्ली, 1971

माथुर, वाई0 बी0 – *क्विट इण्डिया मूवमेन्ट*, दिल्ली, 1979

15.9 स्व मूल्यांकित प्रश्नों के उत्तर

1. (क) देखिए 15.3.2 व्यक्तिगत सत्याग्रह का विकास।
   (ख) देखिए 15.3.3 व्यक्तिगत सत्याग्रह का विरोध।
2. (i) विनोबा भावे ने।
   (ii) व्यक्तिगत सत्याग्रह कानून के दायरे में रहकर चलाया गया।
1. (क) देखिए 15.4.1 क्रिप्स प्रस्ताव।
   (ख) देखिए 15.4.2 भारत छोड़ो आन्दोलन।
2. (i) सभी राजनीतिक दल प्रस्तावों को सर्वसम्मति से स्वीकार करें।

(ii) बम्बई प्रान्त के सतारा में।

1. (क) देखिए 15.5.1 प्रत्यक्ष कार्यवाही दिवस की पृष्ठभूमि।
   (ख) देखिए 15.5.2 प्रत्यक्ष कार्यवाही दिवस के दुष्परिणाम।

2.(i) 16 अगस्त 1946 को।

(ii) बंगाल के प्रधानमन्त्री शहीद सुहरावर्दी थे।

15.10 अभ्यास प्रश्न

1. व्यक्तिगत सत्याग्रह में विनोबा भावे की भूमिका का आकलन कीजिए।
2. क्रिप्स प्रस्ताव की पृष्ठभूमि पर प्रकाश डालिए।
3. 'डिवाइड एण्ड क्विट' आन्दोलन क्यों प्रारम्भ किया गया?
4. भारत छोड़ो आन्दोलन का दमन करने के लिए सरकार ने क्या कदम उठाए?
5. प्रत्यक्ष कार्यवाही दिवस के दूरगामी पणिाम क्या हुए?

इकाई सोलह –वेवेल योजना तथा शिमला सम्मेलन

16.1 प्रस्तावना

16.2 इकाई के उद्देश्य

16.3 वेवल योजना की पृष्ठभूमि

16.3.1 भारत छोड़ो आन्दोलन और उसका प्रभाव

16.3.2 क्रिप्स मिशन और उसकी असफलता

16.3.3 भारत में भयानक अकाल

16.3.4 द्वितीय विश्व युद्ध और उसकी भयानकता

16.3.5 अंतर्राष्ट्रीय दबाव

16.3.6 वैधानिक गतिरोध समाप्त करना

16.3.7 इंग्लैण्ड में होने वाले चुनाव

16.4 वेवेल योजना

16.4.1 वाइसराय के रूप में लॉर्ड वेवेल का भारत आगमन

16.4.2 सी0 आर0 फ़ार्मूला

16.4.3 जिन्ना द्वारा सी0 आर0 फ़ार्मूला खारिज किया जाना

16.4.4 एमरी–वेवेल योजना

16.5 शिमला कॉन्फ्रेन्स

16.5.1 शिमला कॉन्फ्रेन्स से पूर्व राजनीतिक कटुता एवं गतिरोध समाप्त करने के प्रयास

16.5.2 शिमला कॉन्फ्रेन्स की कार्यवाही

16.5.3 शिमला सम्मेलन का भंग किया जाना

16.6 सार संक्षेप

16.7 पारिभाषिक शब्दावली

16.8 सन्दर्भ ग्रंथ

16.9 स्व मूल्यांकित प्रश्नों के उत्तर

16.10 अभ्यास प्रश्न

16.1 प्रस्तावना

पिछली इकाई में यह चर्चा की जा चुकी है कि द्वितीय विश्वयुद्ध की समाप्ति से पूर्व ही औपनिवेशिक साम्राज्यों का युग अब बीत चुका था। 1945 में भारत सचिव एमरी तथा गवर्नर जनरल वेवेल ने भारत की स्वतन्त्रता की योजना प्रस्तुत की। अब तक मुस्लिम लीग द्वारा पाकिस्तान की स्थापना की मांग ज़ोर पकड़ चुकी थी। एक ओर सरकार भारत विभाजन को रोकने का प्रयास कर रही थी तो दूसरी ओर वह मुस्लिम लीग को भारतीय मुसलमानों का एक मात्र प्रतिनिधि राजनीतिक दल स्वीकार कर रही थी। इस इकाई में 1945 की वेवेल योजना तथा उसी वर्ष आयोजित शिमला सम्मेलन के प्रावधानों तथा उनकी अव्यावहारिकता से आपको अवगत कराया जाएगा।

16.2 इकाई के उद्देश्य

इस इकाई में आपको द्वितीय विश्वयुद्ध के अन्तिम चरण के तथा उसके तुरन्त बाद के भारतीय राजनीतिक गतिरोध तथा उसके निवारण के असफल प्रयासों की जानकारी दी जाएगी। इस काल में ब्रिटिश सरकार ने विश्वयुद्ध के बाद बदली हुई अन्तर्राष्ट्रीय परिस्थितियों के कारण भारतीयों को सत्ता सौंपने का मन बना लिया था परन्तु साथ ही भारत के विभाजन के लिए अनुकूल वातावरण भी विकसित कर दिया था। इस इकाई को पढ़कर आप जानेंगेः

- द्वितीय विश्वयुद्ध के दौरान तथा उसके ठीक बाद कांग्रेस–मुस्लिम लीग विवाद तथा इस विवाद को सुलझाने के प्रयासों के विषय में।
- क्रिप्स मिशन की असफलता के बाद ब्रिटिश सरकार द्वारा वेवेल योजना के रूप में भारत में सुधार की प्रक्रिया फिर से प्रारम्भ किए जाने के विषय में।
- शिमला कॉन्फ्रेन्स में उठाए गए मुद्दों तथा विवादों के विषय में।

16.3 वेवल योजना की पृष्ठभूमि

लॉर्ड वेवल अक्टूबर, 1943 ई0 में भारत के गवर्नर – जनरल बनकर भारत आये। आते ही, उन्होंने भारत के राजनैतिक एवं वैधानिक गतिरोध समाप्त करने के प्रयास करने प्रारंभ कर दिये। क्योंकि, तत्कालीन परिस्थितियाँ अंग्रेजों के विरूद्ध होती जा रहीं थी। भारत का राजनैतिक वातावरण अत्यधिक गर्माया हुआ था तथा अंतर्राष्ट्रीय राजनैतिक दबाव भी इंग्लैण्ड पर अत्यधिक बना हुआ था।

16.3.1 भारत छोड़ो आन्दोलन और उसका प्रभाव

9 अगस्त, 1942 ई0 से भारत छोड़ो आंदोलन प्रारंभ हुआ। इस आंदोलन सारे देश को आंदोलित कर दिया था। भारत छोड़ो आंदोलन तीव्रता के साथ सारे देश में फैल गया था। देश में पहली बार महानगरों से लेकर गांवों तक राजनैतिक जागृति का अद्भुत दृश्य देखने को मिला। सारा देश तन कर आजादी के संघर्ष में कूद चुका था। आंदोलनकारियों ने सरकारी प्रतीकों और अंग्रेजी सत्ता के चिन्हों को जमींदोज कर दिया था। पुलिस थानों, डाकघरों, रेल्वे स्टेशनों, प्रशासनिक भवनों आदि आंदोलनकारियों के निशाने बने। साथ ही, रेल्वे लाईनों, पुलों, टेलीफोन एवं तार की लाइनों तथा यातायात के अन्य साधनों को ध्वस्त करने के प्रयास किये गये।

भारत की आम जनता की इस प्रतिक्रिया से अंग्रेजी सरकार सकते में आ गयी। उसे कुछ सूझ नहीं रहा था, इस खुली बगावत को कुचलने के लिए अंग्रेजी सरकार ने कठोरतम् दमन चक्र चलाया और सारे देश में एक प्रकार से पुलिस राज्य की स्थापना कर दी गयी थी। स्वयं गवर्नर जनरल ने स्वीकार किया कि, हम 1857 की क्रांति के बाद सबसे महान् खुली जन बगावत का सामना कर रहे है। भारत छोड़ो आंदोलन ने सारे देश को राजनैतिक रूप से जागृत कर दिया था। अब अंग्रेजों को लगने लगा था कि, भारतीयों को शांत करने के लिए प्रयास करने पड़ेगे। इन्हीं प्रयासों के तारतम्य में वेवल योजना और शिमला सम्मेलन थे।

16.3.2 क्रिप्स मिशन और उसकी असफलता

वेवल योजना और शिमला सम्मेलन की पृष्ठभूमि में 'क्रिप्स मिशन' और उसकी असफलता भी थी। भारतीयों का द्वितीय विश्व युद्ध में सहयोग लेने और राजनैतिक गतिरोध को तोड़ने के उद्देश्य से भारत में एक संवैधानिक आयोग 23 मार्च, 1942 ई0 को भेजा। इस आयोग के अध्यक्ष प्रधानमंत्री चर्चिल के युद्ध मंत्रीमण्डल के सदस्य सर स्टेफर्ड क्रिप्स थे और उन्हीं के नाम से इसे 'क्रिप्स मिशन' के नाम से जाना गया। क्रिप्स मिशन के प्रमुख प्रावधानों में स्वशासन (डोमिनियन स्टेट्स), संवैधानिक सभा का गठन तथा कॉमनवेल्थ से पृथक होने का अधिकार सम्मिलित था।

क्रिप्स के प्रस्तावों पर लगातार 15 दिनों तक गंभीर चर्चा होती रही और अंत में प्रतिरक्षा संबंधी विषयों पर कांग्रेस से बात नहीं बनी और क्रिप्स मिशन के प्रस्तावों को भारतीयों ने ठुकरा दिया। बहुत से भारतीय नेताओं ने इन प्रस्तावों को देर से उठाया गया कदम बताया और गांधीजी ने तो क्रिप्स के प्रस्तावों को 'उत्तसरतिथीय चौक' की संज्ञा' तक दे डाली थी। इस प्रकार भारत का राजनैतिक गतिरोध को तोड़ने का एक और प्रयास असफल हो गया। अब अंग्रेजी सरकार ने 'क्रिप्स मिशन' की असफलता के बाद राजनैतिक गतिरोध को तोड़ने के उद्देश्य से वेवेल योजना प्रस्तुत की और शिमला सम्मेलन के द्वारा राजनैतिक सहमति बनाने के प्रयास किये।

16.3.3 भारत में भयानक अकाल

द्वितीय विश्व युद्ध के दौरान भारत में भयानक अकाल पड़ा। अकाल का यह दौर 1943 – 1944 ई0 तक चला। इस दौरान लाखों लोग मारे गये। अंग्रेजी सरकार ने अकाल की भयानकता को कम करने के कोई प्रयास नहीं किये। इससे भारतीयों में भारी असंतोष व्याप्त हो गया। उधर द्वितीय विश्व युद्ध के कारण मंहगाई भी अत्यधिक बढ़ गयी थी। इससे लोगों की परेशानियाँ और अधिक बढ़ गयीं थी। बढ़ते असंतोष को संतुलित करना आवश्यक था। अतः भारतीयों का ध्यान आकर्षित करने और उन्हें यह बताने की कि, हम उनके लिए आवश्यक कदम उठा रहे है को दिखाने के लिए वेवल योजना को जनता के समक्ष रखा।

16.3.4 द्वितीय विश्व युद्ध और उसकी भयानकता

वेवल योजना के मूल में द्वितीय विश्व युद्ध और उसकी भयानकता भी थी। 1 सितम्बर, 1939 ई0 से प्रारंभ द्वितीय विश्व युद्ध 1945 ई0 तक भयानक रूप के चुका था। द्वितीय विश्व युद्ध ने इंग्लैण्ड और उसके मित्र देशों की अर्थव्यवस्था को चकनाचूर कर दिया था। साथ ही, इंग्लैण्ड और उसके मित्र देशों की जनता भी युद्ध से त्रस्त हो चुकी थी। उधर सेना भी लगातार युद्ध करते – करते परेशान हो गयी थी। द्वितीय विश्व युद्ध का इतना अधिक वर्षों तक चलना निश्चित रूप से परेशानी का सबब बनने लगा था। हालाँकि, 1943 ई0 में इटली और 1945 ई0 में जर्मनी परास्त हो चुके थे। किन्तु, जापान अभी भी मैंदान में डटा हुआ था और वह अंग्रेजों के भारतीय सम्राज्य के लिए लगातार खतरा बनता जा रहा था। अंग्रेजों को लग रहा था कि, जापान से अभी एक – दो वर्षों तक और चलेगा। लॉर्ड वेवल, जो स्वयं सेनापति रह चुका था ने अंग्रेजी सरकार को समझाया कि, भारत की समस्या सुलझाना आवश्यक है नहीं तो गम्भीर समस्या खड़ी हो जायेगी।

वेवल ने इसी मंशा से भारत का राजनीतिक गतिरोध दूर करने का प्रयास करना प्रारंभ किया। इसके पीछे ब्रिटिश सरकार और वेवेल की सोची समझी रणनीति थी। वे द्वितीय विश्व युद्ध में भारतीय राजनीतिक दलों का सहयोग चाहते थे। उनका सोचना था कि, यदि किसी बिन्दु पर एक राय बन जाती है, तो भारत में चल रहा राजनीतिक गतिरोध समाप्त हो जायेगा और भारत में राजनीतिक शांति स्थापित हो जायेगी। इसका लाभ ब्रिटिश सरकार द्वितीय विश्व युद्ध में ले सकती थी। इसी कारण वेवेल ने अपनी योजना के अंतर्गत शिमला सम्मेलन आयोजित किया और राजनैतिक एकराय बनाने का प्रयास भी हुआ।

16.3.5 अंतर्राष्ट्रीय दबाव

अंग्रेजी सरकार पर लगातार अंतर्राष्ट्रीय दबाव बन रहा था कि, वह भारत की समस्या को सुलझाये। जापान के एशिया में बढ़ते कदमों से इंग्लैण्ड और उसके मित्र देशों में खलबली मची हुई थी कि, कहीं जापान भारत पर कब्जा न कर ले। इंग्लैण्ड के मित्र देश उस पर भारी दबाव बना रहे थे कि, वह भारतीयों से सकारात्मक वार्ता करे

और कोई सकारात्मक कदम उठाये। जिससे विश्व युद्ध में भारतीयों का सक्रिय सहयोग मिल सके। अमरीका, रूस, चीन आदि देशों ने इंग्लैण्ड पर भारी दबाव बना रखा था। इसी दबाव के चलते वेवल योजना प्रस्तुत की गयी।

16.3.6 वैधानिक गतिरोध समाप्त करना

लार्ड वेवल ने भारत का वायसराय (गवर्नर जनरल) बनने के बाद वैधानिक गतिरोध समाप्त करने की मंशा से नवीन रचनात्मक तथा सकारात्मक कदम उठाने का प्रयास किया। लार्ड वेवल की स्पष्ट धारणा थी कि, भारत में लगातार बढ़ता वैधानिक गतिरोध इंग्लैण्ड के भारतीय साम्राज्य के हित में नहीं है। साथ ही, वह यह भी जानता था कि, वैधानिक गतिरोध ब्रिटिश साम्राज्य के हित में भी नहीं है। क्योंकि तत्कालीन परिस्थितियाँ लगातार ब्रिटिश साम्राज्य के लिए समस्या खड़ी करती जा रही थी। 1935 के अधिनियम के बाद से वैधानिक गतिरोधों ने नया रूप धारण कर लिया था। इसका प्रमुख कारण 1935 के अधिनियम के प्रावधान ही थे, संघीय योजना लागू होने से पहले ही खत्म हो गयी।

अंग्रेजों ने बड़े सोच – विचार के साथ संघीय योजना बनायी थी। उनका उद्देश्य सभी राजनीतिक इकाईयों को एक सूत्र में पिरोना था, किन्तु संघीय योजना के प्रारूप में ही इसकी असफलता छिपी हुई थी, देशी रियासतों को अत्यधिक महत्व देने के कारण योजना की अकाल मृत्यु हो गयी। इससे ब्रिटिश शासन की अत्यधिक किरकिरी हुई। 1935 के अधिनियम की प्रांतीय स्वायत्तता भी मात्र एक समझाइस ही थी, क्योंकि इसमें प्रांतीय गवर्नर को अत्यधिक शक्तियाँ प्रदान की गयी थी। 1935 के अधिनियम ने भारतीयों को अत्यधिक असंतुष्ट कर दिया था। इससे भारतीय संतुष्ट होने की अपेक्षा लगातार असंतुष्ट होने लगे थे। उसके बाद द्वितीय विश्व युद्ध तथा कांग्रेसी मंत्री मण्डल के त्याग पत्र ने वैधानिक गतिरोध को बड़ा दिया।

ब्रिटिश शासन वैधानिक गतिरोध को तोड़ने के प्रयास जारी रखे और इसी तारतम्य में वायसराय लिनलिथगों (1938 – 43 ई0) ने अगस्त 1940 ई0 से 'अगस्त प्रस्ताव' (ऑगस्ट ऑफर) द्वारा वैधानिक गतिरोध तोड़ने का प्रयास किया। भारतीयों को मनाने के लिए अनेक प्रावधान रखे। जिनमें सर्वाधिक महत्वपूर्ण भारत का संविधान भारतीयों द्वारा ही बनाना तथा प्रादेशिक स्वशासन (डोमिनियन स्टेट्स) का उल्लेख किया गया था। किन्तु, लिनलिथगों का अगस्त प्रस्ताव भी वैधानिक गतिरोध को नहीं तोड़ सका। फिर भी लगातार बढ़ते दवाब से मुक्त होने के लिए ब्रिटिश सरकार ने लगातार प्रयास करने जारी रखे। 1942 ई0 में क्रिप्स को वैधानिक गतिरोध तोड़ने के लिए भेजा गया किन्तु क्रिप्स मिशन भी असफल रहा।

1943 ई0 को ब्रिटिश सरकार ने लार्ड वेवल को भारत का वायसराय नियुक्त किया तथा ब्रिटिश सरकार ने वेवल को भारत का वैधानिक गतिरोध तोड़ने के उद्देश्य से भारत भेजा था। ब्रिटिश ने आशा की कि वेवल भारतीय नेताओं को समझाकर वैधानिक गतिरोध तोड़ने में सफल होंगे तथा लंबे समय से चली आ रही खींचतान अंततः समाप्त हो जायेगी। वेवल ने भी वायसराय बनते ही भारत में आते ही घोषणा की वे भारतीयों के लिए सौंगातों का समुन्दर लेकर आये हैं। वस्तुतः स्वयं वेवल भी वैधानिक गतिरोध को तोड़ने की इच्छा रखते थे। कार्यभार संभालते हुए ही वेवल ने ऐसे संकेत दिये कि वे भारत का वैधानिक गतिरोध समाप्त करने की इच्छा रखते है। अपनी इच्छा के अनुसार वेवल ने प्रयास किये और 1945 में एक योजना प्रस्तुत की। जिसे 'वेवल योजना' के नाम से जाना जाता है। लॉर्ड वेवल भारत के विभिन्न विचारधारा वाले राजनीतिक दलों को एक मंच पर लाने का प्रयास कर रहे थे। उनकी मंशा थी कि, भारत के राजनीतिक दल विचार – विमर्श के लिए पहले एक मंत्र पर तो आये, तब कहीं जाकर कोई आमराय विकसित की जा सकती है।

16.3.7 इंग्लैण्ड में होने वाले चुनाव

ब्रिटेन में होने वाले चुनाव 'वेवल योजना' की पृष्ठभूमि का प्रमुख कारण था। ब्रिटेन में चुनाव होने वाले थे और चुनावों में 'श्रमिक दल' (लेबर पार्टी) की विजय की संभावनाएँ लगातार बनती जा रही थी। ब्रिटिश जनता का झुकाव लगातार श्रमिक दल की ओर बढ़ता जा रहा था, जिससे सत्तारूढ़ दल (अनुदार दल) में घबराहट पैंदा होने लगी थी। सत्तारूढ़ दल को लगने लगा था कि, भारत नीति के बारे में श्रमिक दल ब्रिटिश जनता को अधिक प्रभावित कर रहा है। उधर श्रमिक दल भी जोर शोर से चर्चिल की भारत नीति की अत्यधिक आलोचना कर रहा था

तथा चर्चिल की भारतीय समस्याओं को सुलझाने वाले नीतियों की घोर निन्दा कर रही थी। ऐसे समय में जब ब्रिटेन का राजनीतिक वातावरण चर्चिल के विरूद्ध हो रहा था, तब चर्चिल और उनकी सरकार ने भारतीय समस्याओं का तर्कसंगत हल निकालने के लिए उपाय करना आवश्यक समझा।

ब्रिटेन में चुनाव अभियानों के दौरान श्रमिक दल के नेता लगातार यह कह रहे थे कि, वे भारतीयों के हित में काम करेगें। श्रमिक दल के नेता ग्रीनबुड, बैविन एवं लॉस्की ने चुनावों में ब्रिटेन की आम जनता के सामने कहा कि यदि हमारी सरकार बनती है तो, हम भारत में जारी राजनीतिक गतिरोध को समाप्त कर देंगे। श्रमिक दल के इन दावों से चर्चिल के अनुदारदल की स्थिति खराब होती जा रही थी। अनुदार दल के नेता आम जनता को उचित जबाव नहीं दे पा रहे थे। अनुदार दल के नेता चर्चिल अब यह बताना चाहते थे कि, हमारी सरकार भारतीयों के हित में काम करने का प्रयास कर रही है। हम भारतीयों की समरूाओं को सुलझाने में प्रयत्नशील है।

ब्रिटेन की जनता को चर्चिल यह बताना चाह रहे थे कि, हम भारतीयों की समस्यायें श्रमिक दल की अपेक्षा अधिक अच्छी तरह सुलझा सकते हैं और हम इसके लिए लगातार प्रयास भी कर रहे है और इसी प्रयास में हम लगातार भारतीय नेताओं से वार्ताकर रहे हैं तथा उनके सामने नये – नये विकल्प भी प्रस्तुत कर रहे हैं हमारे प्रयास भारत और भारतीयों के हित में ही तो है। चर्चिल की इन बातों का विशेष प्रभाव ब्रिटेन की जनता पर नहीं पड़ा और ब्रिटिश जनता चर्चिल के प्रयासों को सार्थक नहीं मान रही थी। उधर श्रमिक दल के नेताओं के प्रभावशाली वक्तव्य ब्रिटेन की जनता को खासे प्रभावित कर रहे थे।

ब्रिटेन की जनता श्रमिक दल के भारत संबंधी भावी विचारों से बहुत अधिक प्रभावित हो रही थी। श्रमिक दल के नेता ऐटली भारत संबंधी अपने विचारों के कारण अधिक विश्वसनीय होते जा रहे थे। ऐटली ने घोषणा की कि, यदि उनकी सरकार सत्ता में आती है, तो शीघ्रातिशीघ्र हम भारत को आजाद कर देगें। ऐटली की इस प्रभावशाली घोषणा से अनुदार दल में हलचल मच गयी। अनुदार दल नही चाहता था कि, भारतीयों की समस्याओं को सुलझाने का श्रेय श्रमिक दल को जाये। इसी कारण चर्चिल ने बड़ी ही चपलता से वेवल को भारतीयों की समस्याओं को सुलझाने के लिए निर्देशित किया। वेवल ने भारत आते ही आशावादी वक्तव्य देने प्रारंभ कर दिये तथा ऐसा वातावरण निर्मित करने का प्रयास किया कि, अंग्रेजी सरकार भारतीयों की सच्ची हितैषी तथा भारतीयों के हित में कार्य करना चाहती है।

16.4 वेवेल योजना

16.4.1 वाइसराय के रूप में लॉर्ड वेवेल का भारत आगमन

भारत में साम्प्रदायिक गतिरोध अप्रत्यक्ष रूप से अंग्रेज़ों की फूट डाल कर शासन करने की नीति का परिणाम था। अंग्रेज़ किसी भी मूल्य पर भारतीयों को सत्ता हस्तांतरित नहीं करना चाहते थे और जब भी भारतीय अपने अधिकारों तथा संवैधानिक व राजनीतिक सुधारों के लिए आन्दोलन करते थे तो अंग्रेज़ शासक साम्प्रदायिकता का मुद्दा उठाकर सुधार देने से बचने का प्रयास करते थे। द्वितीय विश्वयुद्ध के प्रारम्भ से ही ब्रिटिश सरकार भारतीयों को डोमिनियन स्टेटस देने का अपना संकल्प दोहरा रही थी परन्तु उसके अनुसार इसके क्रियान्वयन के लिए भारत की एकता आवश्यक थी जो कि विभिन्न वर्गों, समुदायों और विचारधाराओं के आपसी मतभेदों के कारण कभी भी स्थापित नहीं हो पा रही थी। अतः ब्रिटिश सरकार भारतीयों को ही सुधारों के कार्यान्वयन में बाधा डालने के लिए दोषी ठहरा रही थी।

लॉर्ड लिनलिथगो का साढ़े सात वर्ष का दमनकारी एवं विवादास्पद शासन अक्टूबर, 1943 में समाप्त हुआ और भारतीय सेना के पूर्व अध्यक्ष रह चुके लॉर्ड वेवेल भारत के नए वाइसराय बने। अब तक विश्वयुद्ध में मित्र राज्यों का पलड़ा भारी होने लगा था। रूसी सेना जर्मन सेना को अपने क्षेत्र से खदेड़ रही थी और मित्र राज्यों की सेना इटली में सफलतापूर्वक घुसने लगी थी। अफ़्रीका में ब्रिटिश तथा अमेरिकन सेना को सफलता मिल रही थी और जापान दक्षिण तथा उत्तर प्रशान्त सागरीय क्षेत्र में पराजय का सामना कर रहा था। अब मित्र राज्यों के दिग्गजों रूज़वेल्ट, स्टालिन और चर्चिल के सामने मुख्य मुद्दा युद्ध में विजय प्राप्त करने के स्थान पर युद्ध के बाद भविष्य की योजनाओं का था। विश्वयुद्ध में अमेरिका और रूस महाशक्ति बन कर उभरे थे और ब्रिटेन की महत्ता पहले की

तुलना में कम हो गई थी और उसका राजनीतिक कद छोटा हो गया था। अब यह निश्चित हो चुका था कि वह विश्व की सबसे बड़ी साम्राज्यवादी शक्ति के रूप में स्वयं को प्रतिष्ठित नहीं रख सकेगा। भारत पर बल पूर्वक अपना निरंकुश शासन बनाए रखना अब अंग्रेज़ों के लिए असम्भव हो गया था अतः उन्हें सत्ता हस्तान्तरण की प्रक्रिया की शुरूआत तो करनी ही थी। विसंटन चर्चिल जैसे अनुदारवादी ब्रिटिश प्रधानमन्त्री को भी अब भारत में सुधार करने के लिए तैयार होना पड़ रहा था और लॉर्ड वेवेल के रूप में उन्हें सुधारों का फिर से प्रस्ताव प्रस्तुत करने के लिए एक सुपात्र मिल गया था। 17 फ़रवरी, 1944 को लॉर्ड वेवेल ने केन्द्रीय विधान सभा को पहली बार सम्बोधित करते हुए मित्र राज्यों की विश्वयुद्ध में निरन्तर मिलने वाली सफलता का उल्लेख किया और यह आशा की कि युद्ध शीघ्र ही मित्र राज्यों की विजय के साथ समाप्त होगा परन्तु उसने भविष्य की तैयारियों के लिए अपनी चिन्ता जताई। वेवेल ने क्रिप्स प्रस्ताव के डोमिनियन स्टेटस विषयक मसौदे को सरकार द्वारा लागू करने की प्रतिबद्धता को दोहराया। क्रिप्स प्रस्ताव के अन्तर्गत संविधान निर्माण, अल्पसंख्यकों तथा भारतीय रियासतों के अधिकार विषयक सिफ़ारिशों की स्थिति भी यथावत् थी। वेवेल ने यह स्पष्ट किया कि हिज़ मैजेस्टी की सरकार भविष्य में भारतीयों को ही भारत की सत्ता सौंप देने के लिए कृतसंकल्प है।

16.4.2 सी0 आर0 फ़ार्मूला

1937 में कांग्रेस–मुस्लिम लीग बंधन टूटने के बाद दोनों राजनीतिक दलों के मध्य सहयोग का दौर पूरी तरह से समाप्त हो गया था। एक दूसरे के प्रति वैमनस्य और अविश्वास ने कांग्रेस और मुस्लिम लीग के बीच कभी न पटने वाली खाई पैदा कर दी थी। 1939 में द्वितीय विश्वयुद्ध प्रारम्भ होते ही ब्रिटिश सरकार द्वारा भारतीय राजनीतिक दलों से बिना विचार–विमर्श किए भारत को युद्ध में शामिल करने के विरोध में जब कांग्रेस के प्रान्तीय मन्त्रिमण्डलों ने त्यागपत्र दिया तो मुस्लिम लीग ने मुक्ति दिवस मनाया। अगस्त, 1940 में मुस्लिम लीग ने पाकिस्तान की स्थापना की मांग की। जब मार्च, 1942 में क्रिप्स मिशन भारत आया तो पाकिस्तान की स्थापना की मांग को अस्वीकार किए जाने पर मुस्लिम लीग ने उसका बहिष्कार किया। जब अगस्त, 1942 में कांग्रेस ने भारत छोड़ो आन्दोलन प्रारम्भ किया तो मुस्लिम लीग ने 'डिवाइड एण्ड क्विट' आन्दोलन किया। इस प्रकार कांग्रेस–मुस्लिम लीग विवाद ने ब्रिटिश सरकार को यह मौका दे दिया कि भारत में वह कोई भी ठोस सुधार न करे और इसका दोष भारत में व्याप्त राजनीतिक गतिरोध पर मढ़ दे। कांग्रस के वरिष्ठ नेता चक्रवर्ती राजगोपालाचारी ने मार्च, 1944 में कांग्रेस तथा मुस्लिम लीग के मध्य राजनीतिक गतिरोध को दूर करने के लिए एक योजना बनाई थी जिसको सी0 आर फ़ार्मूला (सूत्र) के नाम से जाना जाता है। इसी के आधार पर गांधीजी ने मोहम्मद अली जिन्ना से पत्र–व्यवहार किया था। सितम्बर, 1944 में गांधीजी तथा जिन्ना ने सी0 आर0 फ़ार्मूले पर विचार किया था। इस फ़ार्मूले के मुख्य बिन्दु थे –

6. मुस्लिम लीग भारतीयों की स्वतन्त्रता की मांग का समर्थन करेगी तथा देश के स्वतन्त्र होने तक अन्तरिम सरकार के गठन में कांग्रेस का सहयोग करेगी।
7. विश्वयुद्ध समाप्त हो जाने के बाद एक कमीशन की नियुक्ति की जाएगी जो उत्तर पश्चिम तथा पूर्व में मुस्लिम बहुमत के जिलों में सभी निवासियों का विभाजन के विषय पर वयस्क मताधिकार के आधार पर जनमत कराया जाएगा।
8. जनमत से पूर्व सभी राजनीतिक दलों को अपनी बात रखने का अवसर दिया जाएगा।
9. यदि जनमत विभाजन के पक्ष में होता है तो आपसी तालमेल से सुरक्षा, व्यापार तथा संचार की व्यवस्था की जाएगी।
10. विभाजन की स्थिति में आबादी का हस्तान्तरण स्वैच्छिक होगा।
11. इन शर्तों की बाध्यता तभी होगी जब ब्रिटेन भारत सरकार को पूरी तरह सत्ता हस्तान्तरित कर देगा।

16.4.3 जिन्ना द्वारा सी0 आर0 फ़ार्मूला खारिज किया जाना

गांधीजी से विचार–विमर्श करने के बाद जिन्ना ने इस फ़ामूर्ले को इन बिन्दुओं पर खारिज कर दिया –

1. जिन्ना मुस्लिम लीग के अध्यक्ष थे जब कि गांधीजी किसी राजनीतिक दल का प्रतिनिधित्व नहीं कर रहे थे।
2. जिन्ना की शर्त थी कि वह तभी बातचीत करेंगे जब कि गांधीजी पाकिस्तान की अवधारणा को स्वीकार कर

लें।

3. गांधीजी चाहते थे कि केन्द्र में एक ऐसी शक्ति हो जो कि दोनों दलों को स्वीकार्य हो जब कि जिन्ना पहले पूरी तरह से विभाजन चाहते थे और फिर इन दो राष्ट्रों के मध्य विदेश सम्बन्ध के अन्तर्गत समझौते किए जा सकते थे।
4. जिन्ना को इस फ़ामूर्ले का दूसरा बिन्दु स्वीकार्य नहीं था जिसमें कि मुस्लिम बहुमत के जिलों के सभी निवासियों को वयस्क मताधिकार के आधार पर जनमत में भाग लेना था। इस विषय में जिन्ना मुसलमानों के जनमत के भी पक्ष में नहीं थे क्योंकि उनकी दृष्टि में भारत में मुस्लिम लीग ही मुसलमानों का प्रतिनिधित्व करती थी और अन्य समुदायों को मुस्लिम बहुमत वाले क्षेत्रों में पाकिस्तान के विषय में निर्णय लेने का कोई अधिकार नहीं था।
5. गांधीजी एक परिवार के सदस्यों के मध्य बटवारे की नीति अपनाना चाहते थे जब कि जिन्ना मुसलमानों के लिए एक पूर्ण सम्प्रभुता प्राप्त राष्ट्र चाहते थे।
6. जिन्ना मुस्लिम बहुमत वाले सभी 6 प्रान्तों, पंजाब, उत्तर–पश्चिम सीमा प्रान्त, सिंध, बलूचिस्तान, बंगाल और आसाम को मिला कर पाकिस्तान बनाना चाहते थे।
7. जिन्ना चाहते थे कि पाकिस्तान के पश्चिमी तथा पूर्वी भाग को जोड़ने के लिए भारत के बीच से गलियारा दिया जाए।

इस प्रकार सी0 आर0 फ़ामूर्ला खारिज कर दिया गया और कांग्रेस तथा मुस्लिम लीग की राहें एक दूसरे से अलग हो गईं। इंग्लैण्ड में लेबर पार्टी ने चर्चिल की अनुदारवादी सरकार की इस कारण भर्त्सना की कि वह भारत के राजनीतिक गतिरोध को दूर नहीं कर पा रही है और उसे सावधान किया कि यदि उसकी सरकार भारतीयों को सन्तुष्ट नहीं कर पाई तो आगामी चुनाव में उसकी पराजय सुनिश्चित है।

16.4.4 एमरी–वेवेल योजना

द्वितीय विश्वयुद्ध में मित्र राज्यों की जीत सुनिश्चित हो जाने के बाद अमेरिका ने भारत में राजनीतिक समस्या के समाधान के लिए ब्रिटिश सरकार पर दबाव डालना प्रारम्भ कर दिया। इसी परिप्रेक्ष्य में लॉर्ड वेवेल भारत सचिव से विचार–विमर्श करने के लिए मई, 1945 में लन्दन गए। एक गोल मेज़ सभा का आयोजन निश्चित किया गया। अप्रैल, 1945 तक यूरोप में युद्ध लगभग समाप्त हो गया था लेकिन एशिया में युद्ध अभी जारी था। अभी भी एशिया के एक बड़े भाग पर जापान का कब्ज़ा था। अमेरिका के लिए जापान की पराजय का महत्व जर्मनी की पराजय से भी अधिक था। जापान का बर्मा, सिंगापुर तथा इण्डोनेशिया पर अधिकार था। इन क्षेत्रों जापान के विरुद्ध अभियान में भारत की सहायता जापान की पराजय में एक महत्वपूर्ण भूमिका निभा सकती थी।

संयुक्त राज्य अमेरिका के राष्ट्रपति रूज़वेल्ट ने इंग्लैण्ड के प्रधानमन्त्री विसंटन चर्चिल से विचार–विमर्श करने के बाद जारी अपने वक्तव्य (अटलान्टिक चार्टर) में कहा था कि युद्ध समाप्त होने के बाद सभी देशों को आत्म–निर्णय के सिद्धान्त के आधार पर अपना भविष्य निर्धारित करने का अधिकार होगा। परन्तु चर्चिल ने यह स्पष्ट किया कि भारत अटलान्टिक चार्टर की हद में नहीं आता है। डम्बार्टन ओक्स की अगस्त, 1944 में हुई मित्र राज्यों के राजनयज्ञों की बैठक में यू0 एन0 ओ0 की नींव रखी गई। इन प्रस्तावों पर 25 अप्रैल से 26 जून 1945 तक सैनफ़्रांसिसको सम्मेलन में विचार–विमर्श हुआ जिसमें रूस के विदेश मन्त्री मोलोटोव ने सभा में स्वतन्त्र भारत के प्रतिनिधि की उपस्थिति की कामना की। उसने सभी परतन्त्र राष्ट्रों को शीघ्रातिशीघ्र स्वतन्त्र किए जाने की आवश्यकता पर बल दिया।

कांग्रेस अध्यक्ष मौलाना आज़ाद ने वक्तव्य दिया कि यदि भारत को स्वतन्त्रता का आश्वासन दिया जाता है तो वह स्वच्छा से युद्ध में भाग लेगा और अनिवार्य सैनिक भर्ती का समर्थन करेगा। कांग्रेस ने 1940 में ही यह घोषित कर दिया था कि भारत की राजनीतिक समस्याओं का जैसे ही समाधान कर दिया जाएगा, वह युद्ध में पूर्ण उत्साह और निष्ठा के साथ भाग लेगा। 1944 में गांधीजी ने अपनी 1942 की पूर्ण स्वतन्त्रता की मांग का परित्याग कर दिया। देसाई–लियाक़त अली समझौते में कार्यकारी परिषद में हिन्दू और मुसलमान सदस्यों की बराबर संख्या किये जाने

का फ़ैसला भी कांग्रेस की समझौतावादी प्रवृत्ति का सूचक था। इन परिस्थितियों में सरकार फिर से सुधार पर बातचीत करने को तत्पर थी।

14 जून, 1945 को भारत सचिव एल0 एस0 एमरी ने हाउस ऑफ कॉमन्स में घोषणा की कि युद्ध में अपनी भूमिका निश्चित करने के लिए भारत को एक स्वतन्त्र राष्ट्र के समान अधिकार दिया जाएगा। एमरी ने कहा कि वह कांग्रेस तथा मुस्लिम लीग से सरकार गठित किए जाने के विषय में वार्तालाप कर रहे हैं और कांग्रेस को किसी को भी अपना प्रतिनिधि नियुक्त करने का अधिकार है, चाहे वह जवाहर लाल नेहरू हों या मौलाना आज़ाद हों। लॉर्ड वेवेल ने भारत में भारत सचिव एमरी की योजनाओं को दोहराया।

एमरी तथा वेवेल के वक्तव्यों में प्रस्तावित योजना को उनके नाम से 'एमरी–वेवेल योजना' अथवा केवल 'वेवेल योजना' के नाम से जाना जाता है। इस योजना के निम्न मुख्य बिन्दु थे –

1. साम्प्रदायिक मुद्दे को सुलझाने का प्रयास किया जाएगा क्योंकि राजनीतिक एवं संवैधानिक सुधार में यही सबसे बड़ी बाधा है।
2. वाइसराय की कार्यकारी परिषद में सभी प्रमुख समुदायों का सन्तुलित प्रतिनिधित्व होगा। (इस निर्णय का आधार देसाई–लियाक़त अली फ़ार्मूला था)।
3. कार्यकारी परिषद के गठन के विषय में वाइसराय भारत के प्रमुख राजनीतिक दलों के प्रमुख नेताओं तथा विभिन्न प्रान्तों के मुख्य मन्त्री रह चुके नेताओं का सम्मेलन आयोजित करेंगे और इस सम्मेलन से कार्यकारी परिषद के लिए व्यक्तियों के नाम आमन्त्रित कर इंग्लैण्ड के सम्राट को संस्तुत करेंगे।
4. कार्यकारी परिषद के सदस्यों की संस्तुति का दायित्व वाइसराय के पास सुरक्षित रहेगा और उसे किसी का भी नाम सम्राट को संस्तुत करने का अधिकार होगा।
5. वाइसराय तथा वार मेम्बर के रूप में सेनाध्यक्ष को छोड़कर कार्यकारी परिषद के सभी सदस्य भारतीय होंगे। सेनाध्यक्ष कार्यकारी परिषद का सदस्य तब तक होगा जब तक कि भारत की सुरक्षा का दायित्व ब्रिटिश भारतीय सरकार का रहेगा।
6. सीमा तथा आदिवासी मामलों के अतिरिक्त सभी वैदेशिक मामलों का निबटारा भारतीय मन्त्री करेंगे।
7. वाइसराय की कार्यकारी परिषद में सवर्ण हिन्दू तथा मुसलमान सदस्यों की संख्या बराबर होगी (इस निर्णय का आधार देसाई–लियाक़त अली फ़ार्मूला था)।
8. नई कार्यकारी परिषद 1935 के गवर्नमेन्ट एक्ट ऑफ इण्डिया के अन्तर्गत कार्य करेगी। वाइसराय ने यह आश्वासन दिया कि वह अपनी अभिभावी शक्तियों का अनुचित प्रयोग नहीं करेंगे।
9. ब्रिटिश सरकार ने ब्रिटिश हितों की देखभाल के लिए भारत में अपना हाईकमिश्नर नियुक्त करने का प्रस्ताव रखा।

इस प्रकार वेवेल योजना में भारतीयों को स्वशासन दिए जाने की दिशा में सार्थक प्रयास किया गया परन्तु अंग्रेज़ों की फूट डाल कर शासन करने की नीति का परित्याग अभी भी नहीं किया गया। हिन्दू–मुस्लिम, दलित हिन्दू–सवर्ण हिन्दू आदि के भेदों को अभी भी महत्ता दी जा रही थी। गांधीजी इस भेदभाव से बहुत दुखी थे और उन्होंने वाइसराय को अपनी आपत्ति प्रेषित भी की थी। इससे भविष्य में समस्याओं के निवारण के स्थान पर नई समस्याएं उभरने की सम्भावना बढ़ गई थी परन्तु फिर भी कांग्रेस ने वेवेल योजना के अगले चरण शिमला कॉन्फ्रेन्स में भाग लेने का निश्चय किया।

स्व मूल्यांकन हेतु प्रश्न

निम्नलिखित विषयों पर संक्षिप्त टिप्पणी लिखिए:

1. (क) सी0 आर0 फ़ार्मूला।

(ख) वेवेल योजना के मुख्य प्रस्ताव।

2. नीचे लिखे प्रश्नों के उत्तर दीजिए।

(i) लॉर्ड वेवेल वाइसराय बनकर भारत कब आया?

(ii) जून, 1945 में भारत सचिव कौन था?

16.5 शिमला कॉन्फ्रेन्स

16.5.1 शिमला कॉन्फ्रेन्स से पूर्व राजनीतिक कटुता एवं गतिरोध समाप्त करने के प्रयास

वेवेल योजना की घोषणा के तुरन्त बाद राजनीतिक सद्भाव विकसित करने के उद्देश्य से 14 जून, 1945 को कांग्रेस कार्यकारिणी समिति के सभी बन्दी सदस्यों को रिहा कर दिया गया। गवर्नर जनरल वेवेल ने सुधारों की चर्चा करने के लिए प्रमुख राजनीतिक व धार्मिक दलों को शिमला कॉन्फ्रेन्स में 25 जून, 1945 को आमन्त्रित किया। गांधीजी चूंकि अब किसी राजनीतिक संगठन से सम्बद्ध नहीं थे इसलिए उन्हें कांग्रेस के सलाहकार के रूप में आमन्त्रित किया गया परन्तु शिमला पहुंच कर भी वह सम्मेलन में शामिल नहीं हुए। हिन्दू महा सभा को इस सम्मेलन में आमन्त्रित नहीं किया गया। नेशनलिस्ट पार्टी के नेता और विधान सभा में यूरोपियन समुदाय के नेता, अनुसूचित जाति तथा सिखों के एक–एक प्रतिनिधि इस सम्मेलन में शामिल हुए। शिमला कॉन्फ्रेन्स से पहले कांग्रेस के अध्यक्ष मौलाना आज़ाद से भेंट कर लॉर्ड वेवेल ने कांग्रेस द्वारा युद्ध में भारत की सहभागिता के लिए अपनी स्वीकृति दिए जाने का अनुरोध किया और कांग्रेस–मुस्लिम लीग में आपसी समझौते पर ज़ोर दिया। सरकार की ओर से वाइसराय ने यह आश्वासन दिया कि वह किसी दल का पक्ष न लेकर बिलकुल तटस्थ रहेगी।

वेवेल योजना में और क्रिप्स प्रस्ताव में कोई बुनियादी अन्तर नहीं था। अन्तर था तो यह कि क्रिप्स प्रस्ताव तब प्रस्तुत किए गए थे जब कि युद्ध अपनी पराकाष्ठा पर था और अंग्रेज़ों को भारतीय सहयोग की नितान्त आवश्यकता थी और अब जबकि मित्र राष्ट्र युद्ध को अन्तिम रूप से जीतने ही वाले थे तब ब्रिटिश सरकार ने भारत में नवीन राजनीतिक वातावरण बनाने की पहल की थी। मौलाना आज़ाद लॉर्ड वेवेल के प्रस्ताव को स्वीकार करना चाहते थे। उन्होंने अपनी बात कांग्रेस की कार्यकारिणी समिति के समक्ष रखी। 24 जून, 1945 को कांग्रेस की कार्यकारिणी समिति ने मौलाना आज़ाद का प्रस्ताव स्वीकार कर लिया।

16.5.2 शिमला कॉन्फ्रेन्स की कार्यवाही

शिमला कॉन्फ्रेन्स के प्रारम्भ में ही सरकार का मुस्लिम लीग के प्रति रुझान स्पष्ट हो गया। कांग्रेस के प्रतिनिधियों को मध्य में बैठे हुए वाइसराय के बाईं ओर बिठाया गया जो कि संसदीय परम्परा में विरोधी पक्ष का स्थान होता है जब कि मुस्लिम लीग की प्रतिनिधियों को दाईं ओर बिठाया गया जो कि संसदीय परम्परा में सत्ता पक्ष का स्थान होता है। सभा के प्रारम्भ में ही कांग्रेस तथा मुस्लिम लीग के मतभेद खुलकर सामने आने लगे। मौलाना आज़ाद ने स्पष्ट किया कि कांग्रेस एक राष्ट्रवादी धर्मनिर्पेक्ष दल था और उसे केवल सवर्ण हिन्दुओं का संगठन कहलाना या बनना स्वीकार नहीं था। सम्मेलन के दूसरे दिन अल्पसंख्यकों के प्रतिनिधित्व, युद्ध में किए जा रहे कार्यों का पूर्ण समर्थन तथा पुनर्गठित वैधानिक परिषद का गवर्नमेन्ट ऑफ इण्डिया एक्ट 1935 के अन्तर्गत जारी रहने पर सहमति हुई परन्तु कार्यकारी परिषद के गठन पर मतभेद हो गया। मोहम्मद अली जिन्ना के अनुसार कांग्रेस सवर्ण हिन्दुओं में जिसे चाहे नामांकित कर सकती थी परन्तु मुस्लिम सदस्यों को नामांकित करने का अधिकार केवल मुस्लिम लीग को ही मिलना चाहिए था। कांग्रेस ने जिन्ना की इस मांग को अस्वीकार किया। सम्मेलन से पूर्व ही वाइसराय तथा भारत सचिव ने यह स्वीकार किया था कि कांग्रेस जिसको चाहे उसे अपनी ओर से कार्यकारी परिषद के लिए नामांकित कर सकती थी। अब यह कांग्रेस का अधिकार था कि वह जिसे चाहे नामांकित करे, वह चाहे हिन्दू हो या मुसलमान या सिख, ईसाई हो या पारसी। इस समय कांग्रेस के अध्यक्ष मौलाना आज़ाद थे और खान अब्दुल गफ्फ़ार खां कांग्रेस प्रतिनिधि मण्डल के विशिष्ट सदस्य थे। वाइसराय की दृष्टि में भी यह मुस्लिम लीग की हठधर्मिता थी और उसको मुसलमानों का एकमात्र प्रतिनिधि कहलाने का कोई अधिकार नहीं बनता था। पंजाब में उसके सहयोग के बिना यूनियनिस्ट पार्टी की मुस्लिम बहुमत की सरकार बनी थी और मुस्लिम बहुल उत्तर–पश्चिम सीमा प्रान्त में कांग्रेस की सरकार थी। वाइसराय की दृष्टि में मुस्लिम लीग से इतर मुस्लिम राजनीतिक दलों को भी कार्यकारी परिषद में अपना प्रतिनिधि नामांकित करने का अधिकार होना वाहिए था।

वाइसराय ने विभिन्न दलों को आपस में विचार–विमर्श करने का अनुरोध किया। कांग्रेस की ओर से गोविन्द बल्लभ पन्त को जिन्ना से बातचीत के लिए नियुक्त किया गया परन्तु उसका कोई नतीजा नहीं निकला। जिन्ना की दृष्टि में कार्यकारी परिषद का प्रस्तावित रूप में गठन भविष्य में पाकिस्तान की स्थापना के मार्ग में बाधक सिद्ध होता और इससे मुसलमानों का अहित होता। जिन्ना की मुस्लिम प्रतिनिधित्व के एकाधिकार की मांग को अस्वीकार किए जाने के बाद उन्होंने यह मांग रखी कि प्रस्तावित कार्यकारी परिषद में मुस्लिम हितों से सम्बन्धित विषयों पर निर्णय कमसे कम मुस्लिम सदस्यों के दो तिहाई बहुमत के आधार पर लिया जाना चाहिए। उन्होंने साम्प्रदायिक वीटो की मांग की। मुस्लिम लीग के विरोध को सरकार द्वारा अत्यधिक महत्व दिया गया। इन परिस्थितियों में शिमला सम्मेलन का असफल होना अवश्यम्भावी हो गया। मौलाना आज़ाद अपनी पुस्तक *इण्डिया विन्स फ्रीडम* में लिखते हैं –

यह पहली बार हुआ कि वार्ता भारत और ब्रिटेन के मध्य राजनीतिक मुद्दों पर असहमति के कारण नहीं बल्कि विभिन्न भारतीय राजनीतिक दलों के मध्य साम्प्रदायिक मुद्दे पर मतभेद के कारण असफल हुई हो।

16.5.3 शिमला सम्मेलन का भंग किया जाना

शिमला सम्मेलन असफल रहा। लॉर्ड वेवेल ने 14 जुलाई, 1945 को शिमला कॉन्फ्रेन्स बिना किसी नतीजे के भंग कर दी। इस सम्मेलन की असफलता के लिए सबसे बड़ी ज़िम्मेदारी जिन्ना और मुस्लिम लीग को दी जाती है। मुस्लिम लीग के ख़लीकुलज़मां ने इसकी असफलता के लिए कांग्रेस को दोषी माना था। वेवेल का अचानक सम्मेलन को समाप्त कर देना उचित नहीं था। अगर वाइसराय दृढ़ रहता तो जिन्ना को झुकना पड़ता जिन की असहमति पर सम्मेलन को भंग करके एक प्रकार से ब्रिटिश सरकार ने यह स्पष्ट कर दिया कि बिना मुस्लिम लीग की सहमति के भारत के भविष्य पर कोई निर्णय नहीं लिया जा सकता। जिन्ना ने स्पष्ट कर दिया कि मुसलमान अल्प संख्यक नहीं बल्कि एक अलग राष्ट्र हैं। सरकार ने मुस्लिम लीग को समस्त भारत के मुसलमानों का एकमात्र प्रतिनिधि राजनीतिक दल स्वीकार करके एक बार फिर डिवाइड एण्ड रूल की नीति को अपनाया। इस सम्मेलन की असफलता के पीछे इंग्लैण्ड के प्रधानमन्त्री विन्सटन चर्चिल की भारत में सुधार न करने की अनिच्छा का भी अप्रत्यक्ष रूप से हाथ था। इस दुर्भाग्यपूर्ण नीति ने भारत के विभाजन और पाकिस्तान की स्थापना का मार्ग प्रशस्त कर दिया और असहाय, बेबस भारत को साम्प्रदायिकता का विषपान करने के लिए विवश कर दिया।

स्वमूल्यांकन हेतु प्रश्न

निम्नलिखित विषयों पर संक्षिप्त टिप्पणी लिखिए:

1. (क) शिमला सम्मेलन में मोहम्मद अली जिन्ना की मांगे।

(ख) शिमला सम्मेलन में कांग्रेस का दृष्टिकोण।

2. नीचे लिखे प्रश्नों के उत्तर दीजिए।

(i) शिमला सम्मेलन कब प्रारम्भ हुआ?

(ii) शिमला सम्मेलन के समय इंग्लैण्ड का प्रधानमन्त्री कौन था?

16.6 सार संक्षेप

अक्टूबर, 1943 में लॉर्ड वेवेल भारत के नए वाइसराय बने। औपनिवेशिक साम्राज्य के लिए प्रतिकूल परिस्थितियों के कारण अंग्रेज़ों को भारत में सत्ता हस्तान्तरण की प्रक्रिया की शुरूआत करने के लिए बाध्य होना पड़ा। वेवेल ने क्रिप्स प्रस्ताव के डोमिनियन स्टेटस विषयक मसौदे को सरकार द्वारा लागू करने की प्रतिबद्धता को दोहराया। चक्रवर्ती राजगोपालाचारी की मार्च, 1944 की योजना में भारत के उत्तर पश्चिम तथा पूर्व में मुस्लिम बहुल जिलों में जनमत के आधार पर विभाजन के निर्णय का प्रस्ताव था पर जिन्ना ने इसको ठुकरा दिया।

14 जून, 1945 को भारत सचिव एल0 एस0 एमरी ने हाउस ऑफ कॉमन्स में घोषणा की कि युद्ध में अपनी भूमिका निश्चित करने के लिए भारत को एक स्वतन्त्र राष्ट्र के समान अधिकार दिया जाएगा। 14 जून, 1945 को भारत की स्वतन्त्रता हेतु 'एमरी–वेवेल योजना' अथवा 'वेवेल योजना' में साम्प्रदायिक मुद्दे को सुलझाने का प्रयास कर भारत में अन्तरिम सरकार के गठन का प्रस्ताव रख गया था। इस उद्देश्य से 25 जून, 1945 को शिमला सम्मेलन का आयोजन हुआ। सम्मेलन में जिन्ना ने वाइसराय की कार्यकारी परिषद में मुस्लिम प्रतिनिधियों को नामांकित करने

का एकाधिकार मुस्लिम लीग के लिए मांगा जिसका कांग्रेस ने विरोध किया।
शिमला सम्मेलन असफल रहा। लॉर्ड वेवेल ने 14 जुलाई, 1945 को शिमला कॉन्फ्रेन्स बिना किसी नतीजे के भंग कर दी। सम्मेलन की असफलता ने भारत के विभाजन और पाकिस्तान की स्थापना का मार्ग प्रशस्त कर दिया।

16.7 पारिभाषिक शब्दावली

सी0 आर0 फ़ार्मूला: चक्रवर्ती राजगोपालाचारी द्वारा कांग्रेस–मुस्लिम लीग गतिरोध दूर करने के लिए प्रस्तावित सूत्र।
जनमत: किसी क्षेत्र में किसी विशिष्ट मुद्दे पर वयस्क मताधिकार के द्वारा जनता की राय जानना।
वार मेम्बर: द्वितीय विश्वयुद्ध के दौरान वाइसराय की कार्यकारी परिषद में भारत का सेनाध्यक्ष वार मेम्बर के रूप में सम्मिलित था।
बुनियादी: आधारभूत
साम्प्रदायिक वीटो: किसी सम्प्रदाय विशेष के विषय में निर्णय लेने के लिए उस सम्प्रदाय को उस निर्णय को स्वीकार अथवा अस्वीकार करने का अधिकार।

16.8 सन्दर्भ ग्रंथ

ताराचन्दः *भारतीय स्वतन्त्रता आन्दोलन का इतिहास* (भाग 4), नई दिल्ली, 1984
मजूमदार, आर0 सी0 (सम्पादक) – *स्ट्रगल फ़ॉर फ्रीडम*, बॉम्बे, 1969
सिंह, अयोध्या – *भारत का मुक्ति संग्राम*, दिल्ली, 1977
आज़ाद, अबुल कलाम – *इण्डिया विन्स फ्रीडम*, बम्बई, 1959
सीतारमैया, पी0 – *हिस्ट्री ऑफ दि इण्डियन नेशनल कांग्रेस*, बम्बई, 1936
काश्यप, सुभाष – *भारत का सांविधानिक विकास और संविधान*, दिल्ली, 1997
चन्द्रा, बिपन – *आधुनिक भारत में साम्प्रदायिकता*, दिल्ली, 1998
हसन, मुशीरुल – *इण्डिया पार्टीशन्डः दि अदर फ़ेस ऑफ फ्रीडम*, नई दिल्ली, 1995
आनन्द शर्मा– *राष्ट्रीय आंदोलनःराष्ट्रवाद का गांधी युगःदो*,उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय,हल्द्वानी,2014

16.9 स्व मूल्यांकित प्रश्नों के उत्तर

1. (क) देखिए 16.3.2 सी0 आर0 फ़ार्मूला।
   (ख) देखिए 16.3.4 एमरी–वेवेल योजना।
2. (i) अक्टूबर, 1943 में।
   (ii) एल0 एस0 एमरी।

1. (क) देखिए 16.4.2 शिमला कॉन्फ़्रेन्स की कार्यवाही।
   (ख) देखिए 16.4.2 शिमला कॉन्फ़्रेन्स की कार्यवाही।
2. (i) 25 जून, 1945 को।
   (ii) विन्सटन चर्चिल।

16.10 अभ्यास प्रश्न

1. क्या लॉर्ड वेवेल भारत में संवैधानिक सुधारों को लागू करने के प्रति वास्तव में उत्सुक था?
2. मोहम्मद अली जिन्ना के नेतृत्व में मुस्लिम लीग ने सी0 आर0 फ़ामूर्ला क्यों खारिज किया?
3. शिमला सम्मेलन से पहले भारत के विभिन्न राजनीतिक दलों में पारस्परिक कटुता के कारणों पर प्रकाश डालिए।
4. क्या शिमला सम्मेलन सफल रहा?
5. मुस्लिम लीग की ओर से शिमला सम्मेलन में मुहम्मद अली जिन्ना की क्या मांगे थीं?